मधुकर

पाक्षिक पत्र

वर्ष ३] १ जनवरी १९४३ से १६ मई १९४३ तक [अङ्क ७ से १६

बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण-अंक

प्रान्त निर्माण किस लिए ?

"प्रान्त-निर्माण मैं इसलिये करना चाहता हूँ कि हम अपने आपको बुन्देलखण्डी तो कहते हैं, मगर जब कोई पूछता है कि तुम्हारा बुन्देलखण्ड है कहाँ तो हम नहीं बता सकते, लाजवाब हो जाते हैं। हमारा बुन्देलखण्ड है, हम बुन्देलखण्डी हैं, किन्तु बुन्देलखण्ड नहीं है। इस समय हमारी हालत कृष्ण भगवान सरीखी है। हम त्रिभंगीलाल हैं। हम तीन भागों में बँटे हैं। एक ऊपर का टेढ़ा भाग यू० पी० में है। बीच का सीधा भाग बुन्देलखण्डी राज्य है और कमर से नीचे पैरों तक का टेढ़ा भाग सी० पी० में चला गया है। आखिर हम लोगों का देश तो होना ही चाहिए ताकि हम लोग यह कह सकें कि हम बुन्देलखण्डी हैं और हमारा यह बुन्देलखण्ड है।...हम भारतीय हैं। भारत हमारा है, किन्तु बुन्देलखण्डी हम अवश्य हैं। भारतीय होकर हम बुन्देलखण्डी नहीं मिट सकते। इसलिये बुन्देलखण्ड का निर्माण करना हमारा कर्तव्य है।

मेरी आप लोगों से यही विनय है कि आप लोग भरसक प्रयत्न करें कि प्रान्त बन जाय। जितना समूह-बल होगा, उतना ही बल अधिक होगा।......जो कुछ भी बलिदान आप लोगों को करना पड़े, प्रान्त बनाने के लिए करें। इसमें आपका ही कल्याण है।

मुझे यह मालूम हुआ है कि बहुत से लोग यह सोचते हैं कि मैं बुन्देलखण्ड को हड़प लेना चाहता हूँ और बुन्देलखण्ड का राजा बनना चाहता हूँ। मैं आप लोगों की गलतफ़हमी को दूर कर देना चाहता हूँ। सेवा-संघ के आप लोग जैसे मेम्बर हैं, मुझे भी उसी तरह एक मेम्बर समझिये और मुझ से जो कुछ बन पड़ेगा, आप लोगों के साथ मैं भी देश-सेवा करूंगा। —ओरछेश

इस अङ्क का मूल्य १॥)

श्रीवीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद, टीकमगढ़ (सी. आई.)

विषय-सूची

(शेष टाइटिल के पृष्ठ ३-४ पर)

सम्पादकीय

प्रान्त निर्माण

हमारी निजी भावना

रघुपुर के बाज़ार से पहाड़ी की ओर ऊपर देखा तो मन में कुछ भय का संचार होने लगा। मैंने अपने साहित्यिक पथ-प्रदर्शक से कहा:—

"भई! यह तो बहुत मुश्किल है। अपने बूते का काम नहीं!"

उन्होंने उत्तर दिया, "आधी दूर चलने पर चाय मिल जायगी। वहाँ Half way House (अर्द्ध पथ विश्राम स्थल) है और चाय की दूकान, चलो तो सही।"

चढ़ने में कुछ कठिनाई अवश्य हुई, पर मार्ग में चाय पीकर ताज़गी आ गई और नवीन स्फूर्ति के साथ शेष चढ़ाई भी पूरी करली।

प्रान्त निर्माण के आन्दोलन के सञ्चालन के विषय में हृदय में वैसी ही आशङ्का है। चर्चा चला देना भर अपना काम है, नेतृत्व की न योग्यता है, न इच्छा और विवाद-ग्रस्त राजनैतिक प्रश्नों से हमें कोई सरोकार भी नहीं। हम यह भलीभाँति जानते हैं कि अन्ततोगत्वा यह लड़ाई राजनैतिक क्षेत्र पर ही लड़नी होगी, जो अपने अधिकार तथा शक्ति के बाहर की चीज है। "कूचा ही वो नया है, वो रंग दूसरा है" पर चर्चा चलाने का कार्य भी हमारे लिये आजकल की परिस्थिति में कठिन है, और हमारे मनमें अनेक आशङ्काएँ हैं।

जब हमने अपनी आशङ्का इस यज्ञ के वर्तमान यजमान के सम्मुख प्रकट की तो उन्होंने कहा:—

"पहाड़ पर चढ़ने वाला पग-पग पर ऊपर की ओर थोड़े ही देखता है, वह तो आगे की ओर बढ़ता ही चला जाता है और अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच ही जाता है।

हम भ्रम में नहीं हैं

पाठकों को हम साफ़-साफ़ बतला देना चाहते हैं कि प्रान्त निर्माण के विषय में हमें किसी प्रकार का भ्रम नहीं है। चट्टानों से परिपूर्ण नदी में नाव खेना शायद उतना मुश्किल न होगा जितना इन बीसियों टुकड़ों में विभाजित प्रदेश में प्रान्तीय चेतना का जाग्रत करना। अभी इस आन्दोलन का श्रीगणेश ही हुआ है कि अनेकों गम्भीर प्रश्न सामने उपस्थित हो गये हैं।

सैकड़ों वर्षों से इस प्रान्त के भिन्न-भिन्न भू-खण्डों पर अनियंत्रित शासन करने के अभ्यस्त जो लोग हो गये हैं वे क्या कभी अपने निकट के स्वार्थों का बलिदान कर सकेंगे?

हिन्दुस्तान की उस मेधा फूट की—जो सैकड़ों-सहस्रों वर्षों से यहाँ पनप रही है—बेलि क्या कभी निर्बीज हो सकेगी? क्या युग-युग से संत्रस्त निर्जीव प्राय जनता की नसों में रक्त का संचार हो सकेगा?

क्या सरकार उन कठोर सूत्रों को, जिनके द्वारा वह कठपुतली का नाच नचाती रहती है, कभी स्वयं ही तोड़ सकेगी?

और सबसे अधिक आवश्यक प्रश्न

यह है कि क्या इस प्रान्त के कार्य-कर्ताओं में परस्पर सहयोग की वह भावना (टीम स्पिरट) और निग्रह (डिसीप्लिन) का माद्दा मौजूद है, जो किसी काम को धुर तक पहुँचाने के लिये नितान्त आवश्यक है?

आन्दोलन की प्रारम्भिक अवस्था

अभी यह आन्दोलन प्रारम्भिक अवस्था में ही है। थोड़े से आदमियों की इसमें रुचि है और अल्प संख्यक पत्रों ने इसका साथ भी दिया है। जो कार्य करने के लिए पड़ा हुआ है, उसका

सहस्रांश भी अभी नहीं हो पाया। पर कौन कह सकता है कि यह आन्दोलन कभी जनता का आन्दोलन नहीं बन सकता?

एक आक्षेप

कई भाइयों ने आक्षेप किया है—"यह आन्दोलन तो दो-चार राज्याश्रित बुद्धिजीवी व्यक्तियों द्वारा संचालित हो रहा है।"

हम निस्सङ्कोच यह स्वीकार करेंगे कि इस आक्षेप में सत्य का अंश है, पर यह आन्दोलन उन्हीं हाथों में बराबर बना रहेगा, जिनमें अब है, ऐसी भ्रमात्मक धारणा उसके वर्तमान संचालकों के मनमें कभी नहीं उठी। न उनकी ऐसी आकांक्षा ही है कि प्रारम्भ करने वाले ही अन्त तक उसका नियंत्रण करते रहें। वैसे भी किसी केन्द्रीय स्थल से और अधिक स्वाधीन वायुमंडल में इस आंदोलन का चलना अनिवार्य है।

आँधी का किसने नियंत्रण किया है?

कुछ बुद्धिमान महानुभावों का कथन है कि इस आन्दोलन को ब्रिटिश-भारत से उठाया जाना चाहिये था। तत्पश्चात् राज्य के निवासी इसमें पड़ते। सार्वजनिक आन्दोलनों को, जिनका संबंध लाखों व्यक्तियों के जीवन से होता है, इस प्रकार नियंत्रित नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार आँधियाँ रेगिस्तान में चाहे जहां से उठ खड़ी होती हैं—कोई उन्हें स्थान विशेष से उठाने थोड़े ही जाता है—उसी प्रकार जब कोई विचार अनेक मस्तिष्कों में चक्कर काटता है तो वह अपने लिए एक विशेष प्रकार का उपयुक्त वायुमंडल तय्यार कर लेता है और फिर चाहे जहाँ से वह उठ खड़ा होता है। हां, इसमें सन्देह नहीं कि निरन्तर चिन्तन करने वाले व्यक्ति द्वारा आन्दोलनों को बड़ी भारी प्रेरणा और सहायता मिल सकती है।

मानव स्वभाव पर अविश्वास क्यों?

चूंकि इस आन्दोलन का प्रारम्भ ओरछा राज्य से हुआ है और श्रीमान ओरछेश के एक भाषण से इसे प्रेरणा मिली है, इसलिये कुछ महानुभाव इसे आशङ्का की दृष्टि से देखते हैं। वे इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई नरेश इतना दूरदर्शी और निःस्वार्थ भी हो सकता है कि इस प्रकार के लोकोपयोगी महान् यज्ञ का सूत्रपात कर सके। मानव-स्वभाव पर इस अत्यन्त व्यापक अविश्वास के विषय में हम क्या कहें? समय ही आगे चल कर सारी आशङ्काओं को दूर करेगा। निरन्तर त्याग और कठोर साधना ही सारे प्रश्नों का उत्तर देंगे और स्वेच्छापूर्वक स्वार्थों का बलिदान ही अविश्वासियों को विश्वास दिला सकेगा। हमें तो "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" भगवान् के इस उपदेश के अनुसार काम करते जाना चाहिये।

निर्णायक कौन?

प्रान्त-निर्माण के विषय में हमारे कितने ही बन्धुओं ने अनेकों प्रश्न किये हैं। नवीन प्रान्त में राजा महाराजाओं की स्थिति क्या होगी? जनता के अधिकार कितने विस्तृत होंगे? आर्थिक दृष्टि से प्रान्त स्वावलम्बी भी होगा? ब्रिटिश सरकार का रुख इस विषय में क्या है? सामन्तशाही का दृष्टिकोण क्या होगा?

इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर तो सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की जनता के प्रतिनिधि ही दे सकते हैं। राजा महाराजा भी-जहां तक इससे उनका सम्बन्ध है, जवाब दे सकते हैं, और ब्रिटिश अधिकारी भी आगे चल कर देंगे ही। प्रारम्भिक संचालकों से इन प्रश्नों के उत्तर की आशा करना अनुचित है। जनबल ही इनका अन्तिम निर्णायक होगा।

विरोधी सज्जनों से कुछ प्रश्न

लगा लेती की बात हमें पसन्द नहीं। यहाँ तो खुली हुई बाजी है, और विरोधी महानुभावों से हम दो टूक बात कहना चाहते हैं। हमारे सवाल ये हैं:—

(१) यदि एक बोली और एक सी संस्कृति के उपासक लाखों व्यक्ति मिल कर अपने आर्थिक सामाजिक तथा राजनैतिक प्रश्न सामूहिक सम्मि-

लित शक्ति द्वारा हल करना चाहते हों तो इसमें आपको क्या आपत्ति है ?

(२) यदि बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों की बारह लाख जनता के अधिकार पड़ोस के झाँसी, सागर, जब्बलपुर इत्यादि के नागरिकों के समान होते हों तो इसमें आपको क्या ऐतराज़ है ?

(३) क्या यह आप उचित समझते हैं कि चौबीस घंटे के पड़ोसियों के अधिकारों और कर्तव्यों में इतना फर्क रहे ? प्रगतिशील झाँसी, सागर और जब्बलपुर को प्रतिक्रियावादी पड़ोसियों से क्या कुछ भी हानि न पहुँचेगी ?

(४) यदि ओरछा, दतिया अथवा छतरपुर का नागरिक भावी भारत की सेवा के लिये उतनी ही सुविधाएँ चाहता है जितनी आगरे या लखनऊ का निवासी, तो आप उसकी इस न्यायोचित माँग का विरोध किस आधार पर कर सकते हैं ?

(५) इन बारह लाख आदमियों के भविष्य के विषय में आपने क्या सोच रक्खा है ?

(६) यदि आपका यह खयाल है कि यह आन्दोलन असामयिक है—वक्त के पहले प्रारंभ हो गया है—तो क्या आप कृपा कर कोई तारीख या शुभ मुहुर्त निश्चित कर देंगे कि उस दिन इसका विधिवत् प्रारम्भ होना चाहिये ? इसके साथ क्या आप यह भी गारण्टी कर सकेंगे कि उस वक्त हमारा पक्ष अवश्य ही सुना जायगा ? यदि हम अभी इस आन्दोलन को स्थगित कर दें तो इस शिथिलता से प्रान्त की जो भावी हानि होगी उसकी पूर्ति कौन करेगा ?

(७) यदि बुन्देलखण्ड नाम से आपको घृणा है तो क्या आप कृपा कर दूसरा नाम बतलावेंगे ? जहाँ तक हमारा व्यक्तिगत सम्बन्ध है, नाम से हमारा कोई झगड़ा नहीं। विन्ध्यखण्ड, विंध्य प्रदेश इत्यादि कोई भी नाम हमें स्वीकार होगा।

इन प्रश्नों के उत्तर आने पर मामला बहुत कुछ स्पष्ट हो जायगा।

हमारा निजी दृष्टिकोण

'मधुकर' के पाठक इस विषय में हमारे दृष्टिकोण से बहुत कुछ परिचित हो चुके हैं। 'बुन्देलखण्ड है कहाँ ?' तथा 'सन् २००० का बुन्देलखण्ड' शीर्षक लेखों में हमारी कल्पना का एक अंश मिल सकता है। फिर भी दो-चार बातें और भी स्पष्टतापूर्वक कहनी हैं।

हमारे लिये मनुष्य सर्वोपरि है

भगवान् वेद व्यास ने शान्तिपर्व में कहा है—

'गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि
न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्'

अर्थात् "यह रहस्य ज्ञान या भेद की बात तुमको बताता हूँ कि मनुष्य से बढ़कर यहाँ अन्य कुछ नहीं है।"

जब हमसे सवाल किया जाता है कि "आप प्रान्त-निर्माण का समर्थन क्यों करते हैं ?" तो हमारा उत्तर यही है कि बिना प्रान्त-निर्माण के इस प्रदेश के मनुष्यों की उन्नति असम्भव है।

प्रान्त का मानव समाज ही हमारे लिये सर्वोच्च स्थान रखता है। शासन-प्रणाली, कौंसिल, प्रजामंडल, परिषद् इत्यादि सबके ऊपर मनुष्य है। आज इस भूखण्ड के साधारण नागरिक अपनी प्रगति के प्रायः सभी मार्गों को रुका हुआ पाते हैं। नीचे दरवाज़े वाले मकानों में जिस तरह बार-बार सिर फूटता है उसी प्रकार देशी राज्यों की जनता की उच्च आकाक्षाएँ निरन्तर कुण्ठित ही होती रहती हैं। यदि शेष बुन्देलखण्ड के ४०-५० लाख आदमी, यह सोचकर कि चलो हमें बारह लाख आदमियों से क्या लेना-देना है, उन्हें उनके दुर्भाग्य पर छोड़ देंगे तो इसका दुष्परिणाम उन्हें खुद भी भुगतना पड़ेगा।

हम प्रान्त-निर्माण क्यों चाहते हैं ?

यहाँ का साधारण नागरिक बढ़ते-बढ़ते प्रजामंडल का सदस्य बन सकता है, जो प्रभाव और उपयोगिता की दृष्टि से कोई ऊँची पोज़ीशन नहीं है। अगर आगरे ज़िले का एक ग्रामीण

युक्तप्रान्त में मन्त्री बन सकता है तो इस भूखण्ड का आदमी राजनैतिक खिलौनों से ही क्यों खेलता रहे ?

जब हम देखते हैं कि इस शस्य श्यामला भूमि के ३०-४० हज़ार किसान हर साल चैत में फसल काटने के लिए बाहर जा रहे हैं तो हमारा मस्तिष्क लज्जा से झुक जाता है। हम प्रान्त-निर्माण इन चैतुओं के लिए चाहते हैं। हम प्रान्त-निर्माण चाहते हैं माताओं के लिए—गो माताओं के लिये और माँ-बहनों के लिए भी, जिनकी इस प्रान्त में अत्यन्त उपेक्षा और दुर्दशा है।

हम प्रान्त-निर्माण चाहते हैं तेरह-तेरह रुपये पर क्लार्की करने वाले युवकों के लिए, जो न अपना पेट भर सकते हैं, न अपने घर वालों का।

जब कोई अन्य प्रान्तवासी शोषक पूँजीपति या अफसर यहाँ की पराधीन जनता पर कटाक्ष करता है तो यहाँ का अपमानित मानव झुँझला जाता है। उसकी इस झुँझलाहट को दूर करने के लिए और उसके अपमान का परिमार्जन करने के लिए ही हम प्रान्त-निर्माण चाहते हैं।

हम प्रान्त-निर्माण चाहते हैं उन मज़दूरों के लिये, जो दो-ढाई आने रोज़ पर दिन-दिन भर काम करते हैं, जिनके मन में न कोई हर्ष है और जिनके तन पर न कोई कपड़ा तथा जो महुआ तथा कोदों से अपनी उदरपूर्ति करते हैं।

छोटे-छोटे बीसियों डिब्बों में बन्द इन मानव नामधारी प्राणियों की मुक्ति के लिये, जिनकी गति "पानी में मीन पियासी" की तरह की है, हम प्रान्त-निर्माण चाहते हैं।

जो अन्य प्रान्तवासी बुन्देलखंड प्रान्त-निर्माण का विरोध करते हैं वे नदी के उन तैराकों की तरह हैं जो दूसरों से यह कहते हैं कि हम तो विस्तृत नदी के सन्तरण का आनन्द उठाते हैं, तुम गज भर चौड़े कुंए में तैरते रहो !

वैसे तो समस्त संसार ही पारस्परिक सम्बन्धों से एक बन गया है, फिर भारत को तो स्वयं प्रकृति ने ही अखण्ड बना दिया है। यदि इस अखण्ड भारत का कोई भी भूमिखण्ड पीड़ित, कुण्ठित और अवनत रहता है, तो उसका कुष्परिणाम समस्त पितृभूमि को भोगना पड़ेगा। लूला लँगड़ा बुन्देलखण्ड भारत के पैरों में बेड़ियों का काम देगा। इस लज्जाजनक दुर्भाग्य से बचने और बचाने के लिए ही हम प्रान्त-निर्माण चाहते हैं।

प्रकृति के लिए भी

बुन्देलखण्डी वन-प्रदेश में अब भी सैकड़ों स्थल ऐसे विद्यमान हैं जहाँ तपोवनों का निर्माण हो सकता है। हम उन भावी तपोवनों के निर्माण के लिए प्रान्त-निर्माण चाहते हैं।

हमारे वन जिस शीघ्रता के साथ काटे जा रहे हैं उसे देख कर यह निश्चित-सा जान पड़ता है कि यह प्रदेश बीस-पचीस वर्ष में ही रेगिस्तान बन जायगा। उन जलती हुई लू-लपटों से यहाँ की तथा आस-पास के प्रदेशों की जनता को बचाने के लिये हम प्रान्त-निर्माण चाहते हैं।

आज बुन्देलखण्ड की प्रकृति, यहाँ के पशु-पक्षी, नदी-नद, वन-उपवन, पर्वत, वृक्ष इत्यादि सजीव बन कर अपना यथोचित गौरव पाने के लिये उत्कण्ठित है, यहाँ का कण-कण अनुप्राणित होकर सैकड़ों वर्षों की मूकता को छोड़ देना चाहता है। कहाँ हैं वे लेखक और कवि जो उन्हें वाणी प्रदान कर सकें।

विदेशी अथवा अन्तर्प्रान्तीय विद्वानों द्वारा प्रशंसित इसी बुन्देलखण्ड के खजुराहो, चँदेरी तथा देवगढ़ के पत्थर-पत्थर आज बोलने के लिये उत्सुक हैं, पर इसी जनपद की निर्जीव जनता उन्हें निर्जीव समझे हुए हैं !

क्षणिक निराशा

अपने पाठकों से यह बात हम छिपाना नहीं चाहते कि कभी-कभी तो सहयोग की भावना की कमी देखकर हमें अत्यन्त निराश होना पड़ता है, और इसी वर्ष में दो अवसर ऐसे आ चुके हैं जब हमने उद्विग्नता के वशीभूत होकर इस प्रान्त को अन्तिम प्रणाम करने की बात सोची है। पीप में दाँत देने वाले गिद्धों का बीभत्स व्यापार

देख कर हमारी अहिंसा-प्रवृत्ति को कभी-कभी बड़ा ज़बरदस्त धक्का लगा है। जिन्हें इस स्वर्ण अवसर से लाभ उठाने के लिये अपने सब भेद-भावों को भुला देना चाहिये वे ही आज अनियंत्रित अवस्था में इधर-उधर भटक रहे हैं! जब हम देखते हैं कि यहाँ के अन्नजल से पालित पोषित अन्य जनपदों के निवासी "मरे को मर जाने दो, घी की चुपड़ी खाने दो" के सिद्धान्त का अनुसरण कर रहे हैं तो माथा लज्जा से अवनत हो जाता है।

क्रियात्मक कल्पना शक्ति की आवश्यकता

एमर्सन ने एक निबन्ध में लिखा था "Without a vision people perish" कल्पना शक्ति के अभाव में मानव समाज का विनाश हो जाता है। आज हम बुन्देलखण्ड के वर्तमान निवासियों की जो दुर्दशा देखते हैं, विशेषतः राज्यों के निवासियों की—उसका मूल कारण यही है कि यहाँ के निवासियों के मस्तिष्क में क्रियात्मक कल्पना शक्ति का अभाव जड़ जमा बैठा था। वे आशा खो बैठे थे और किसी ने उन्हें यह नहीं बतलाया था कि भविष्य में वे अपने व्यक्तित्व का तथा अपने जनपद का निर्माण और कल्याण किस प्रकार कर सकते हैं।

जैसे निराश बीमार धीरे-धीरे अस्वस्थता की ओर अग्रसर होता जाता है वैसे ही इस जनपद की अवस्था निरन्तर खराब ही होती रही है।

पर अब भी कुछ नहीं बिगड़ा

जब जाग जाय तभी सवेरा हुआ समझना चाहिये। राष्ट्रों का जीवन आशा पर निर्भर है। जब तक माता वेत्रवती में जल विद्यमान है, दशार्ण का गम्भीर स्वर इस जनपद के प्राचीन नाम तथा गौरव को घोषित कर रहा है, जब तक केन अपने तट पर सौन्दर्य्य बिखेरती हुई बह रही है, और जमड़ार तथा जामनेर का कलकल निनाद सुनाई दे रहा है और जब तक पितृ तुल्य विन्ध्याचल इस जनपद को दृढ़ता का पाठ पढ़ाने के लिये उपस्थित है तब तक हम लोगों को निराश होने की आवश्यकता नहीं।

स्वप्नों को लिपिबद्ध कीजिये

क्या ही अच्छा हो यदि इस प्रान्त के निवासी इस जनपद के भविष्य के विषय में अपने स्वप्नों को लिपिबद्ध कर दें और नित्य प्रति उस कल्पित चित्र को अपनी आँखों के सम्मुख रक्खें; और सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि उन स्वप्नों को चरितार्थ करने के लिये प्रयत्न भी करें।

जनता जनार्दन की जागृति

लाखों बुन्देलखण्डियों का उद्धार न दो चार नरेश ही कर सकते हैं। और न दस-बीस पूँजीपति और न वह इने-गिने लीडरों के बूते का काम है। यद्यपि आज की परिस्थिति में इनका भी अपने-अपने स्थान पर महत्त्व है तथापि जब तक इस जनपद का साधारण मानव जाग्रत नहीं होता, जब तक उसकी नस-नस में बिजली का संचार नहीं होता तब तक यह जनपद भावी राष्ट्र के पैरों में बेड़ियों का ही काम देगा। मेढ़ें चाहे राजनैतिक विभाग की लाठी से हाँकी जावें, चाहे सामन्तशाही के डंडे से अथवा नेताओं की छड़ियों से, वे मेढ़ें ही रहेंगी। मूल प्रश्न है साधारण जनता को निर्भय तथा स्वावलम्बी बनाने का। उसके हल होते ही शेष प्रश्नों के हल होने में विलम्ब न लगेगा।

निमंत्रण

बुन्देलखण्ड के प्रान्त-निर्माण के प्रश्न को हम केवल राजनैतिक नेताओं के थकेथकाये मस्तिष्कों और कार्य-व्यस्त हाथों पर ही नहीं छोड़ना चाहते। लेखकों तथा कवियों, विचारकों और विद्वानों, अर्थ-शास्त्रियों तथा औद्योगिक कार्यकर्ताओं को भी इस यज्ञ में अपनी श्रद्धापूर्ण आहुति डालने के लिये हम विनम्रतापूर्वक निमंत्रण देते हैं।

हम जल्दी में नहीं

आन्ध्र प्रान्त का आन्दोलन तीस वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ था और अब भी प्रान्त बनने में देर है। न हमारी यह धारणा है कि प्रान्त यों ही बैठे-बिठाये ही बन जायगा। इसके लिये कठोर

तपस्या की आवश्यकता होगी। अभी तक उस व्यक्ति के दर्शन करने का सौभाग्य हमें प्राप्त नहीं हुआ जिसे हम बुन्देलखण्ड की आत्मा कह सकें। सम्भव है वह आज किसी विद्यालय में पढ़ रहा हो या कहीं कोने में पड़ा हुआ हो। इस रत्नगर्भा भूमि के किस भाग से कौन नर-रत्न कब निकल सकता है, इस बारे में निश्चयपूर्वक क्या कहा जाय? हम लोग उसके लिये क्षेत्र तैयार कर रहे हैं। हज़ारों साधकों की साधना के उस पुञ्जीभूत प्रतीक के स्वागत करने का उपाय यही है कि इसमें से प्रत्येक अपनी सर्वोत्तम भेंट इस जनपद की सेवा में अर्पित करे।

आत्मा में प्रान्त-निर्माण

माता वेतवा के उद्गम स्थल की तीर्थ-यात्रा हमने की है। वहाँ वह दो लकीरों और गज भर चौड़े कुण्ड के रूप में विद्यमान है और ओरछा के तट पर वेत्रवती का गम्भीर गर्जन भी हमने सुना है। आज जो ध्वनि 'मधुकर' की मधुर गुञ्जार के रूप में सुनाई दे रही है, कौन कह सकता है कि वह कल लाखों कण्ठ की घोषणा के रूप में परिवर्तित न हो जायगी। स्वप्न तो स्वप्नदर्शी ही देख सकते हैं, नकशा वही बनाते हैं, रंग चाहे जो भरे।

प्रान्त-निर्माण हमें अपनी अन्तरात्मा में करना है

शेष काम क्लार्क और डेस्क, कारीगर और मज़दूर, विधान-निर्माता और राजनीतिज्ञ कर ही डालेंगे।

आम्र निकुञ्ज,
टीकमगढ़

बनारसीदास चतुर्वेदी



अंक-परिचय

श्री यशपाल जैन बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रस्तुत अंक वैसे तो अपना परिचय स्वयं ही देने के लिए पर्याप्त है, लेकिन फिर भी उसके सम्बन्ध में दो शब्द कह देना आवश्यक है।

अंक के प्रारंभ में श्रीमान् ओरछेश के भाषण का अंश दिया गया है। वास्तव में बुन्देलखण्ड-प्रान्त का पुनर्निर्माण श्रीमान् ओरछेश का काफ़ी पुराना स्वप्न है और हर्ष की बात है कि इस आन्दोलन का श्रीगणेश उन्हीं की प्रेरणा से हुआ है। अपने भाषण में उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि प्रान्त का पुनर्निर्माण वह किस लिए चाहते हैं और उस पुनीत कार्य में वह किस हद तक जाने के लिए उद्यत हैं। उसे पढ़ कर आशा है, उन महानुभावों की निराधार शंका निर्मूल हो जायगी, जो यह सोचते हैं कि यह सब प्रान्त-निर्माण की आड़ में समूचे बुन्देलखण्ड को हड़प लेने की चाल है।

अंक के दूसरे लेख 'बुन्देलखण्डी विश्व-कोष' से प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन को बड़ी गति प्राप्त हुई। बोलियों के आधार पर प्रान्त के पुनर्निर्माण की जो माँग उसमें की गई है, उसका कलकत्ते के प्रतिष्ठित पत्र 'लोकमान्य' और 'जाग्रति' ने घोर विरोध किया। अपने पक्ष के समर्थन में 'लोकमान्य' तो इतना तक कह गया कि बुन्देलखण्ड की भाषा और संस्कृति ब्रज की भाषा और संस्कृति है। 'जाग्रति' ने प्रान्त-निर्माण की माँग की पाकिस्तान की माँग से तुलना की। इन दोनों पत्रों के लेख इस अंक में दे दिये गये हैं और उनके तर्कों के उत्तर में जो लेख आये हैं, उनका समावेश भी इस अंक में कर दिया गया है। हमारे लिये बड़ी आसान सी चीज़ थी कि हम केवल अपने पक्ष को ही इस अंक में उपस्थिति करते और सिर्फ उन्हीं लेखों को देते, जो समर्थन में प्राप्त हुए थे, लेकिन उससे अंक एकांगी हो जाता। विरोधियों को अपनी बात कहने का अवसर न देना उनके साथ अन्याय करना है और सचाई यह है कि विरोध से आन्दोलन को बल ही मिलता है। इस दृष्टि से 'लोकमान्य' और 'जाग्रति' तथा अन्य महानुभावों ने विपक्ष में लिख कर आन्दोलन को आगे बढ़ाने में जो सहायता की है तदर्थ आन्दोलन के संचालक उनके बहुत ही कृतज्ञ हैं। विचारों की स्वाधीनता, अत्यन्त बहुमूल्य वस्तु है और किसी भी हालत में हम यह नहीं चाहते कि हमारे विरोधियों की आवाज़ दबा दी जाय।

श्री सियारामशरण जी बुन्देलखण्ड प्रान्त के पुनर्निर्माण में देश की अखण्डता के नष्ट होने की आशंका करते हैं और बुन्देलखण्डी भाषा को इस ख्याल से प्रोत्साहन देने के पक्ष में नहीं हैं कि उससे राष्ट्र-भाषा हिन्दी को ठेस पहुँचेगी। उनके उत्तर में श्री कृष्णानन्द जी गुप्त तथा स्वामी ब्रह्मानन्द जी के लेख प्राप्त हुए हैं, जिन्हें उस लेख के साथ ही दे दिया गया है।

प्रान्त-निर्माण का आन्दोलन यद्यपि वर्तमान अवस्था में साहित्यिक और सांस्कृतिक ही है, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि आगे चल कर वह राजनैतिक रूप धारण कर लेगा। प्रान्त-निर्माण की आवश्यकता पर 'मधुकर'—सम्पादक के अतिरिक्त सर्वश्री पन्नालाल जी शर्मा बी० ए० एल० एल० बी०, 'एक नवयुवक' जगदीशप्रसाद जी चतुर्वेदी, वासुदेवसिंह जादौन, नारायणदास खरे, प्रेमनारायण खरे आदि के लेख यथोचित प्रकाश डालते हैं।

आन्दोलन के सांस्कृतिक पहलू के विचार से श्री जैनेन्द्रकुमारजी का लेख महत्वपूर्ण है।

इस प्रान्त के साथ कितना अन्याय हुआ है, इसका परिचय भी सुधीन्द्र वर्मा के लेख से स्पष्ट दिखाई देता है। तथा अन्य कतिपय प्रान्तों के लिए जो आन्दोलन हुए हैं, उन पर भी

जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी का 'प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन' लेख अच्छा प्रकाश डालता है।

मातृभाषाओं के आधार पर विभिन्न जनपद या मण्डल स्थापित करके वहाँ के साहित्य का विधिवत् अध्ययन होना चाहिए, इस आशय का आन्दोलन 'मधुकर'-सम्पादक काफ़ी समय से कर रहे हैं और उस सिलसिले में उन्होंने अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के दिल्ली-अधिवेशन में एक प्रस्ताव भी पास कराया था। बुन्देलखण्ड भी एक जनपद है। अत: यहाँ के विविध रूपी साहित्यिक अध्ययन का सम्बन्ध सहज ही प्रान्त-निर्माण से जुड़ जाता है। इस विषय में महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन तथा श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल के लेख मनन करने योग्य हैं और पर्याप्त विचार-सामग्री उपस्थित करते हैं।

ब्रज-भाषा और बुन्देलखण्डी के बीच का अन्तर दिखाने के लिए एक कहानी दोनों भाषाओं में दे दी गई है।

बुन्देलखण्ड में आखिर है क्या, जो प्रान्त बनाने की माँग की जा रही है? कु[illegible] लोग इस प्रकार का प्रश्न करते हैं। इसका उत्तर उन्हें 'बुन्देलखण्ड है कहाँ?', 'गिरवर विन्ध्याचल', 'धसान' आदि लेखों में मिलेगा। हमें यह जान कर विस्मय हुआ कि विन्ध्याचल पर्वत हिमालय से भी प्राचीन है और यहाँ की साधारण-सी समझी जाने वाली नदी दशार्ण (धसान) इतना महत्व रखती है। प्रान्त के पुरातत्व तथा ऐतिहासिक महत्व के सम्बन्ध में लेख हमें समय पर प्राप्त नहीं हो सके। अतः उन्हें अगले अंक में दिया जायगा।

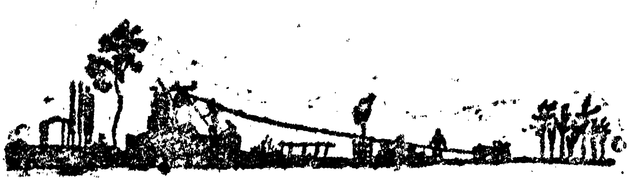
अन्त में प्रान्त-निर्माण-सम्बन्धी प्राप्त हुए पत्रों का सारांश दे दिया गया है। उन्हें देख कर पाठकों को पता चलेगा कि कितने महानुभाव इस आन्दोलन में दिलचस्पी ले रहे हैं और अपना सहयोग देने के लिए तैयार हैं।

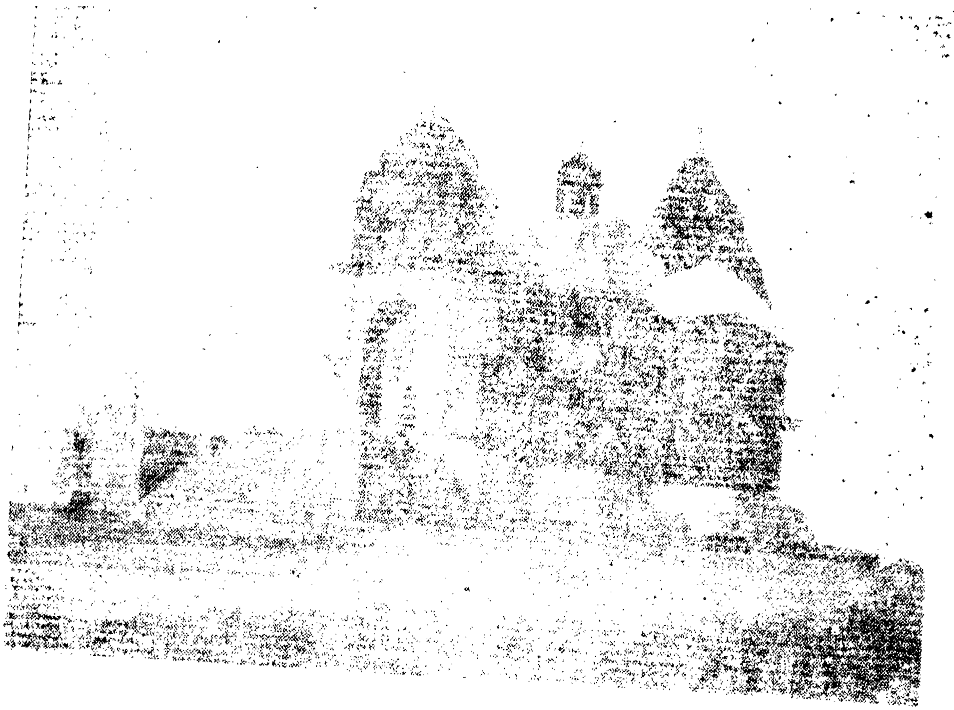
हाँ, अङ्क के प्रारम्भ में स्व० प्रतिपालसिंह के 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' पुस्तक से लेकर बुन्देलखण्ड का नक्शा भी दे दिया गया है। वह विचार के लिए है। अन्तिम रूप तो उसे अधिकारी महानुभाव ही देंगे।

प्रान्त के प्राकृतिक सौंदर्य पर प्रकाश डालने के लिए कतिपय चित्र भी दे दिये गये हैं।

राजनैतिक लेखों की कमी पाठकों को कुछ खटकेगी, लेकिन याद रहे कि आन्दोलन अभी साहित्यिक और सांस्कृतिक अवस्था में ही है। अतः उस पर विचार भी मुख्यतः साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र के महानुभावों ने ही किया है। ज्यों-ज्यों वह राजनैतिक प्रश्न बनता जायगा, त्यों-त्यों उस क्षेत्र के अधिकारी भी उस पर विचार करेंगे।

टीकमगढ़ }
(सी० आई०) }

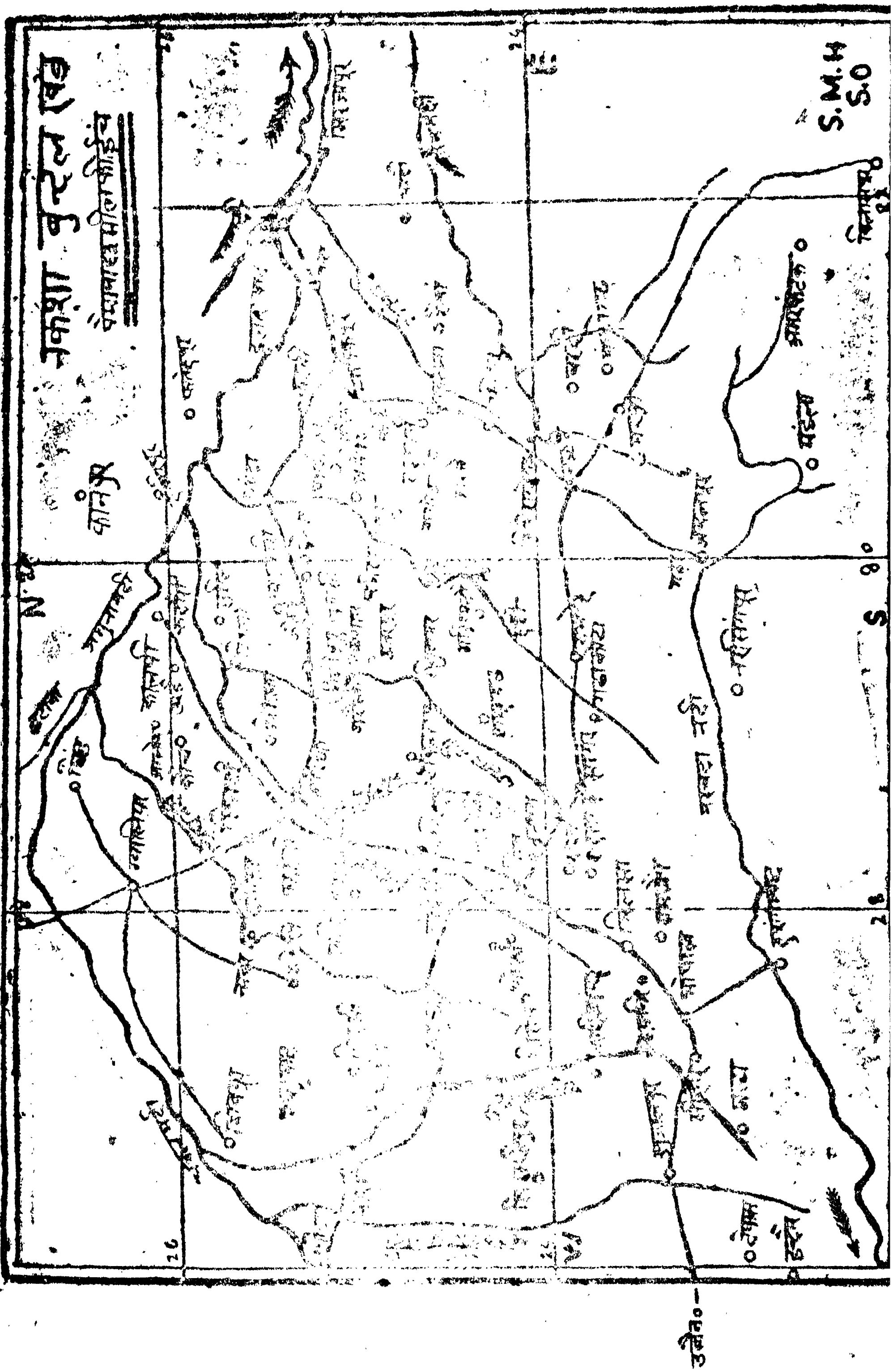




वीरसिंहदेव प्रथम द्वारा निर्मित धूमेश्वर मन्दिर
(पद्मावती—पवांयां)



कुण्डेश्वर प्रपात


नक्शा बुन्देलखंड

प्रान्त-निर्माण किसलिये ?

श्रीमान् ओरछेश

ओरछा सेवा संघ के मेम्बरों ने यह पूछा है कि जब प्रान्त बनेगा तो जन-समुदाय के क्या हक़ होंगे ? आपकी यह आशंका है कि राजा-महाराजा और दूसरे बड़े-बड़े लोग जो धनी हैं, उन लोगों से मुमकिन है आप इतने तंग किए जायँ कि प्रान्त में शायद जनता की आवाज़ ही न उठ सके, और वह हरदम के लिए दब जाय। मैं आप लोगों को बता देना चाहता हूँ कि जनता पर आतंक जमाने वाले धनी और राजा उँगलियों की गिनती पर हैं। जनता उँगलियों की गिनती पर नहीं है। जहाँ पर जनता करोड़ों है, उसकी बोली को कौन रोक सकता है ? किसी ने कहा भी है कि खलक का हलक नहीं रोका जा सकता। आज आप लोग मूर्ख हैं, अशिक्षित हैं, हम लोग शिक्षित हैं। हमारे पास धनबल, शिक्षाबल और जन्याधिकार बल है। आप लोग हम लोगों को बड़े समझते आए हैं। यह आप लोगों के विपक्ष की बात है, जरूर ये सारी बातें विपक्ष में हैं। हम लोग अबतक राज्य करते आए हैं, लेकिन आज हम राज्य कर रहे हैं, कल नहीं कर सकते। जनबल सबसे बड़ा बल है, यह ध्रुव सत्य है। हम लोग अपनी इज़्ज़त तभी क़ायम रख सकते हैं, जब आप लोग हमारी इज़्ज़त करें। हम लोग अपनी इज़्ज़त अपने आप नहीं रख सकते। मैं अपनी कह सकता हूँ, दूसरे राजाओं की नहीं कह सकता। मुमकिन है वे ऐसा ख्याल करते हों या न भी करते हों, मगर मैं ऐसा ज़रूर ख्याल करता हूँ। मैं इस बात को जानता हूँ कि मेरी इज़्ज़त तभी क़ायम रहेगी जब आप मेरी इज़्ज़त करें, मैं स्वयं अपनी इज़्ज़त करके अपनी इज़्ज़त नहीं रख सकता, यह निस्संदेह समझिये। आप ही लोग कहते हैं कि आप हमारे राजा हैं, तभी मैं आपका राजा हूँ। जब आप लोग कहेंगे कि आप राजा नहीं हैं तो मैं राजा मिट गया। राजवंश चाहे पचास वर्ष में ख़तम हो, लेकिन मैं तो उसी दिन ख़तम हो गया। मैं यह नहीं चाहता कि आप लोगों के ऊपर राज्य करूँ। मैं चाहता हूँ कि आपके दिलों के भीतर घुसकर राज्य करूँ।

प्रान्त निर्माण के बारे में आपसे कहना चाहता हूँ कि प्रान्त-निर्माण मैं इसलिए करना चाहता हूँ कि हम अपने आपको बुन्देलखण्डी तो कहते हैं, मगर जब कोई पूछता है कि तुम्हारा बुन्देलखण्ड है कहाँ तो हम नहीं बता सकते, लाजवाब हो जाते हैं। हमारा बुन्देलखण्ड है, हम बुन्देलखण्डी हैं, किन्तु बुन्देलखण्ड नहीं है! इस समय हमारी हालत भगवान् कृष्ण सरीखी है, हम त्रिभंगीलाल हैं। हम तीन भागों में बटे हैं। एक ऊपर का टेढ़ा भाग यू० पी० में है, बीच का सीधा भाग बुन्देलखण्डी राज्य है और कमर से नीचे पैरों तक का टेढ़ा भाग सी० पी० में चला गया है। आखिर हम लोगों का देश तो होना ही चाहिए, ताकि हम लोग यह कह सकें कि हम बुन्देलखण्डी हैं और यह हमारा बुन्देलखण्ड है। तो क्या हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम अपना बुन्देलखण्ड बनावें ? जैसा चौबेजी (पं० बनारसीदास चतुर्वेदी) ने बताया है और शुक्लाजी (श्री रमाशंकर शुक्ल पौलिटिकल मिनिस्टर) ने भी, मगर चौबेजी ने ख़ासकर कि लोग कहते हैं कि यह पाकिस्तान की दूसरी आवाज़ उठ रही है। लोग इसका पाकिस्तान से मिलान करते हैं। वह कहते हैं कि बुन्देलखण्ड की आवाज़ उठाने वाले भी एक दूसरा पाकिस्तान खड़ा करना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि पाकिस्तान चीज और है और बुन्देलखण्ड और चीज है। बुन्देलखण्ड वही चीज है जैसे एक परिभाषा है कि बूँद-बूँद करके घट भरता है। इसी तरह भारतवर्ष एक बहुत बड़ी चीज है।

एक घट के समान ही समझिये, वह घट के समान तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक उसमें बूँदों का समूह न हो। उस बूँदों के समूह में से हम एक बूँद हैं। हम भारतीय हैं। भारत हमारा है, किन्तु बुन्देलखण्डी अवश्य हैं। भारतीय होकर हम बुन्देलखण्डी नहीं मिट सकते। इसलिए बुन्देलखण्ड का निर्माण करना हमारा परम कर्तव्य है। यह अवश्य करना चाहिये। और इसमें जो कुछ भी हम लोग कर सकें, जो कुछ भी हमें साधन उपलब्ध हों, जितनी आर्थिक सहायता हम दे सकें, जितनी निजी सेवा कर सकें, हमें अवश्य करना चाहिए। यह प्रत्येक बुन्देलखण्डी का कर्तव्य है। चौबेजी ने कहा कि उन्होंने ओरछेश का नमक खाया है। ओरछेश क्या चीज़ है? ओरछेश का नाम इसलिए ओरछेश है कि वह आपका कोषाध्यक्ष है। वरन् ओरछेश क्या वस्तु है! वह कुछ भी नहीं है। चौबेजी ने तो बुन्देलखण्ड का नमक खाया है।

मेरी आप लोगों से यही विनय है कि आप लोग भरसक प्रयत्न करें कि प्रान्त बन जाय। जितना समूह-बल होगा उतना ही बल अधिक होगा। यही एक सब से बड़ा कारण है। न कोई आर्थिक साधन की बाधा पड़ेगी और न संगठन की। संगठन थोड़े से ही शुरू होता है। World is made of atoms अणु-अणु करके संसार बना हुआ है। संसार से अणु का अस्तित्व नहीं है, किन्तु अणु से संसार का अस्तित्व सिद्ध है। आप लोग इसमें एक अणु हैं। आप ही लोगों से बुन्देलखण्ड-प्रान्त का अस्तित्व सिद्ध है। एक कहावत है कि जैसे एक शेर का बच्चा भेड़ों के साथ रह कर अपने रूप को भूल गया। दूसरा जंगली शेर आया और उसने उसे इस तरह देखकर उससे कहा, "तू इन भेड़ों के साथ रहकर अपने रूप को भूल गया। देख, यह तो अपना खाद्य है।" फिर वह उस बच्चे को एक कुँए के किनारे ले गया और उसे उसकी परिछांही दिखाई। असल में बात यह है कि आप लोग अपना स्वरूप भूले हुए हैं। आप वह अणु हैं, जिससे संसार का अस्तित्व है। इसलिये आप अपने स्वरूप को समझ कर जो कुछ भी आप लोगों को बलिदान करना पड़े, प्रान्त बनाने के लिये करें। इसमें आप का ही कल्याण है और किसी का नहीं। कल को हिन्दुस्तान स्वतंत्र हो जायगा। प्रान्त बन जायेंगे। हम लोग यों ही पड़े रहेंगे, हम ऐसे ही पाँच सौ वर्ष तक बने रहें? क्या आपका यही ध्येय है? इसलिये मेरा कहना है कि अब आप जागिये और अपने आपको वह अणु समझिये जिससे संसार का अस्तित्व है।

आप लोगों से विदा होने से पहले मैं आपको इतनी बात और बता देना चाहता हूँ कि 'ओरछा-सेवा-संघ' का संकल्प मेरा था और अब प्रान्त-निर्माण का हम लोगों ने इस मंडप के नीचे ऐसी शुभ घड़ी में संकल्प किया है। इसलिये मैं यह निवेदन करता हूँ कि 'ओरछा-सेवा-संघ' का नाम बदलकर 'बुन्देलखण्ड-सेवा-संघ' कर दिया जाय। 'ओरछा-सेवा-संघ' से ग़लतफ़हमी पैदा होती है। मुझे यह मालूम हुआ है कि बहुत से लोग यह सोचते हैं कि मैं बुन्देलखण्ड को हड़प लेना चाहता हूँ और बुन्देलखण्ड का राजा बनना चाहता हूँ। मैं आप लोगों की ग़लतफ़हमी को दूर कर देना चाहता हूँ। 'सेवा-संघ' के जैसे आप लोग मैम्बर हैं मुझे भी उसी तरह एक मैम्बर समझिये और मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा आप लोगों के साथ मैं भी देश-सेवा करूँगा।

[भाषण का अंश]

बुन्देलखण्डी विश्वकोष

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

भाषाओं का दमन असम्भव

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कुशल आलोचक श्रीयुत राहुल सांकृत्यायनजी ने 'हंस' के सितम्बर १६४२ के अङ्क में लिखा है:—

'इन पुराने जनपदों की भाषाओं की ओर हमें इसलिए भी ध्यान देने की ज़रूरत है कि किसी कारणवश खड़ी बोली जैसी कुरु जनपद (मेरठ कमिश्नरी, अलीगढ़ जिला छोड़ कर) की एक भाषा अब सारे उत्तरी भारत के अनेकों पुराने जनपदों की शिक्षा का माध्यम हो गई है, और उसे ही हम मातृभाषा का स्थान दिलाना चाहते हैं—अर्थात् व्रज, बुन्देली, अवधी, बनारसी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी, छत्तीसगढ़ी भाषाओं को मातृ-भाषा से खारिज कराना चाहते हैं। प्राकृत युग में भी मगही, सौरसेनी आदि भाषाओं की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई थी और अब हम यदि उससे उल्टा करना चाहते हैं, तो न यह उचित है और न यह सम्भव है। इन लोकभाषाओं की जड़ उससे कहीं दूर तक गई है, जितना कि हम समझते हैं।

"बुद्ध से पहले जनपदों का युग था, उस वक्त हरएक जनपद (कुरु, पंचाल, कोसल, काशी, मगध) का व्यक्तित्व अपनी भाषा पर आधारित था और उसकी अपनी एक स्वतन्त्र राजनैतिक सत्ता भी थी। राजाओं ने राज्य विस्तार के करते वक्त जनपदों की पृथक् सत्ता को तोड़ा, तो भी भाषा आदि का ख्याल इतना दृढ़ रहा, कि दो जनपद मिलकर एक बनने के लिए नहीं तैयार थे। काशी जनपद भी कोसल के भीतर चला गया, किन्तु कोसलराज प्रसेनजित को काशीवालों का ख़्याल करके बनारस में अपने छोटे भाई को काशिराज बनाकर रखना पड़ा था। इन जनपदों की जातीयता के कारण अनेक जनपदों का एक स्थायी राज्य स्थापित नहीं हो पाता था। मौखरियों के वक्त (६०० ई०) में जयचन्द के गहड़वार (१२०० ई०) वंश तक छह सौ वर्ष तक युक्तप्रान्त और उत्तरीय बिहार के कितने ही भागों की राजधानी कन्नौज रहा। इससे लाभ उठाकर वहाँ के शासकों ने अनेक पुराने जनपदों को तोड़ कन्नौजिया जाति स्थापित करनी चाही और इस तरह चाहा कि कन्नौज के राज्य में रहनेवाले अपने में कन्नौजियत का अभिमान करें। इस विचार की कुछ प्रगति हुई भी जिसके कारण कि हम ब्राह्मण, अहीर, कान्दू तथा कितनी ही और जातियों में कन्नौजिया की जातीय-भावना पाते हैं। किन्तु आख़िर में यह राष्ट्रीय जाति नहीं, बल्कि जातपांत की एक छोटी चहारदीवारी बन कर रह गया और जो ब्राह्मण, अहीर आदि जातियाँ अपने जाति के नाम पर अधिक विस्तृत थीं, वह और कई टुकड़ों में बँट गईं।

"यहाँ इस बात के ज़िक्र करने का मतलब हमारा सिर्फ़ इतना ही है कि भाषामूलक जातियों को तोड़कर राज्य-शासन के नाम पर एक जाति बनाने का प्रबल किसी समय उत्तरी भारत में हुआ था, जो असफल रहा, यद्यपि उसमें किसी एक भाषा को लादने की कोशिश न की गई थी, बल्कि संस्कृत जैसी एक अमातृभाषा को भाषा स्वीकृत किया गया था।"

यद्यपि हमारा अब भी यही विश्वास है कि खड़ी बोली को अपने स्थान से पदच्युत कर व्रज भाषा तथा बुन्देलखण्डी को उसके स्थान पर बिठलाना (पढ़ाई-लिखाई, राज-काज और दैनिक पत्रव्यवहार तथा समाचारपत्र इत्यादि में उनका प्रयोग करना) गंगाजी को हवड़े से हरिद्वार ले जाने के समान निरर्थक तथा असम्भव प्रयत्न है, तथापि हम श्रीयुत राहुलजी से इस

बात में पूर्णतया सहमत हैं, कि बोलियों के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण होना चाहिये।

आज का स्वप्न कल की वास्तविकता

संसार के निर्माण में स्वप्नदर्शियों का ज़बरदस्त हाथ रहा है और आज जो बात स्वप्नवत् दीख पड़ती है कल वही मूर्तिमान होकर हमारे सामने खड़ी हो सकती है। जब-जब हमने श्रीमान् ओरछेश को बुन्देलखण्ड प्रान्त के निर्माण की बात करते हुए सुना है, हमें यही प्रतीत हुआ है कि उनके पूर्वजों के—वीर बुन्देलों के—रक्त के प्रत्येक बिन्दु को मानो किसी ने वाणी प्रदान कर दी है। कभी-कभी तो वे यहां तक कह जाते हैं कि चाहे हमारा ओरछा राज्य इस शुभ प्रयत्न की बलि-वेदी पर चढ़ जाय, फिर भी हमें इस स्वप्न को चरितार्थ करना ही है।

दूरदर्शिता की नीति

हमारा यह विश्वास है कि इस महान् स्वप्न में कोरमकोर आदर्शवादिता ही नहीं दूरदर्शिता भी है। छोटे-छोटे राज्यों का युग बीत चला है और वे एकाकी खड़े नहीं रह सकते। समय की गति उन्हें ज़बरदस्ती आपस में मिलाकर छोड़ेगी। काल के धक्कों से परस्पर सिर भिड़ें इससे तो यही उत्तमतर है कि जान-बूझ कर हृदयों का मिलन हो।

बुन्देलखण्ड प्रान्त

इस प्रकार बुन्देलखण्ड प्रान्त का निर्माण सर्वथा कल्याणकारी ही होगा। संयुक्तप्रान्त तथा मध्य प्रदेश में बुन्देलखण्ड के जो जिले अनाथों की तरह ज़बरदस्ती घुसेड़ दिये गये हैं, वे अपनी जन्मभूमि में फिर से सम्मिलित होकर नवीन जीवन का अनुभव करेंगे। छोटे-छोटे राज्यों को विशाल दृष्टिकोण तथा विस्तृत जीवन प्राप्त होगा। क्षीण-काय नाले बृहत् सरोवर में सम्मिलित हो जाँयगे—बुन्देली भाषा अपनी भरपूर भेंट विधिवत् राष्ट्रभाषा को दे सकेगी, प्रान्त के मानव-समूह में प्रान्तीय गौरव के भाव उत्पन्न हो जायंगे और एक अन्याय की भी समाप्ति हो जायगी। भूले-भटके भाइयों का वह पुनर्मिलन वास्तव में देवताओं के देखने योग्य चीज़ होगी।

पर

लेकिन इस स्वप्न के चरितार्थ होने में अभी देर है। उतनी ही देर है जितनी कि हम लोगों की साधना में कमी है।

आँखों के सम्मुख प्रान्त का रूप

अभी सबसे अधिक आवश्यक कार्य हमें यह करना है कि बुन्देलखण्ड प्रान्त का रूप हम जनता की आँखों के सामने उपस्थित करें। इसके लिये बुन्देलखण्डी विश्वकोष का निर्माण परमावश्यक है।

विहारी विश्वकोष

बन्धुवर शिवपूजनसहाय तथा श्रद्धेय श्री रामलोचनशरणजी की अद्भुत साधना ने हमारे सामने एक उज्ज्वल दृष्टान्त उपस्थित कर दिया है, और जयन्ती स्मारक ग्रन्थ को हम विहारी विश्वकोष के नाम से पुकार सकते हैं। चूँकि मनुष्य द्वारा रचित कोई भी चीज़ पूर्ण नहीं हो सकती इसलिये यह सर्वथा स्वाभाविक है कि यह विश्वकोष भी कुछ अंशों में अपूर्ण रह गया है; फिर भी उसके संयोजक आनर्स के साथ फ़र्स्ट क्लास में उत्तीर्ण हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं।

श्रीमान् ओरछेश के परामर्श

अभी जब उस दिन श्रीमान् ओरछेश से इस महान् ग्रंथ की चर्चा हुई तो उन्होंने कहा कि बुन्देलखण्डी विश्वकोष इससे बढ़कर निकलना चाहिए और जो त्रुटियाँ इसमें रह गई हैं वे हमारे प्रान्त के ग्रन्थ में न रहनी चाहिएँ। विहारी विश्वकोष की सबसे बड़ी सफलता यही मानी जावेगी कि अन्य जनपद उसके पथ का अनुसरण करें। स्वयं सम्पादकों ने अपने प्रारम्भिक वक्तव्य में लिखा है:—

"विहार सम्बन्धी बहुत सी ऐसी बातें इसमें हैं जिनका अन्यत्र उपलब्ध होना दुर्लभ है। यह अनेक अंशों में 'सहायक ग्रंथ' का काम

देगा। यदि अन्यान्य प्रान्तों के हिन्दी-प्रेमी भी अपने यहाँ के साहित्यिकों के अभिनन्दन में इसी तरह के ग्रंथ प्रकाशित करें तो हिन्दी-साहित्य का असीम उपकार और अभिनव शृङ्गार हो। हिन्दी-संसार के समक्ष इस प्रकार का आदर्श उपस्थित करना भी इस ग्रंथ का प्रधान उद्देश्य है। यदि इसका अनुसरण हुआ तो इस ग्रंथ की एक महती उपयोगिता सिद्ध होगी।"

श्रीमान् ओरछेश ने जिन चौदह विषयों पर खास तौर पर ज़ोर दिया—जिनका विस्तृत ब्यौरा अपने बुन्देलखण्डी विश्वकोष में होना ही चाहिए—वे निम्नलिखित हैं:—

(१) पुरातत्व—

इन स्थलों का प्राचीन इतिहास, उनका महत्त्व, वर्तमान चिह्न, जिनसे वे पहिचाने जासकें, उनके चित्र और उनकी रक्षा का प्रबन्ध।

(२) बुन्देलखण्ड का भूगोल—

केवल रियासतों का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण प्रान्त का। बुन्देलखण्डी प्रभाव, वृहत्तर बुन्देलखण्ड का विस्तार किस प्रकार हुआ, किस वक्त में फैले। ग्वालियर तथा भोपाल राज्यों में प्रान्त का कितना भाग दबा हुआ है।

(३) वनभूमि—

पशु तथा पक्षी। इनका महत्त्व।

(४) शिकार—

वन्य पशुओं की रक्षा का प्रबन्ध, उनका महत्त्व, मानव-समाज के लिए उनकी उपयोगिता।

(५) कीट जगत्—

(६) नृतत्व—

(७) मत्स्य विज्ञान—

मछलियों के सम्बन्ध में।

(८) पक्षी विज्ञान—

(९) जन-समाज की राजनैतिक स्थिति और झुकाव, प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और वर्तमान परिस्थिति।

(१०) राजनैतिक सम्भावनाएँ—

(११) बुन्देलखण्डी संस्कृति—

परम्परा, रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार।

(१२) कृषि, उद्यान-विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, इनकी दशा और इनकी उन्नति के उपाय।

(१३) जन साधारण का स्वास्थ्य—

महामारियाँ, बच्चों का पालन-पोषण, मृत्यु-संख्या, बीमारियों को रोकने के उपाय।

(१४) शिक्षा—

यद्यपि यह सूची अधूरी है, क्योंकि श्रीमान् ओरछेश ने बिना किसी तय्यारी के एक साथ ही इन विषयों को बोलकर लिखा दिया था, तथापि इनसे एक बात स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में इस प्रान्त के पशु-पक्षी, वनस्पति और कीट-जगत् का काफ़ी महत्त्व है और उनका यह दृष्टिकोण बहुत व्यापक है। बन्धुवर श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा उस समय हमारे साथ ही थे और उन्हें भी इस व्यापक दृष्टिकोण से हर्ष हुआ। निस्सन्देह श्रीमान् ओरछेश ही इस महान् यज्ञ के यजमान बन सकते हैं।

साहित्य-गोष्ठी के सुझाव

अपनी साहित्य-गोष्ठी में भी हमने इस ग्रन्थ "बिहारी विश्वकोष" का प्रदर्शन किया और हमारे कई सहयोगियों ने बड़े उपयोगी विषय सुझाये।

१—बुन्देलखण्ड की साहित्यिक प्रगति

२—प्रान्त की कला

३—उद्योग-धन्धे

४—सामाजिक दशा

५—आभूषण

६—नदी, पर्वत

७—भाषा का विकास

८—ग्रामगीत, कहानी, शब्द और लोकोक्तियाँ।

हम चाहते हैं कि बुन्देलखण्ड भर में इस विषय की चर्चा हो ताकि अन्तिम सूची तैयार करते समय सभी आवश्यक विषयों का उसमें समावेश हो जाय। "वादे वादे जायते तत्व-बोधः" अर्थात् पारस्परिक विचार-परिवर्तन से ज्ञान उत्पन्न होता है।

एक महायज्ञ

बुन्देलखण्ड-विश्वकोष का निर्माण वास्तव में एक महान् यज्ञ है, जिसकी सकुशल पूर्ति के लिए पचासों कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। हम इस बात को न भूल जावें कि यह यज्ञ एक साधन है उस बृहत्तर यज्ञ यानी बुन्देलखण्ड-प्रांत के पुनर्निर्माण का। लेकिन यह सर्वोच्च साधन है और स्वयं भी एक महान लक्ष्य है। इस यज्ञ को प्रारम्भ करने के पहले हमें दो बातों को स्मरण रखना चाहियेः—

(१) हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि बुन्देलखण्ड-प्रांत अपनी सर्वोत्तम भेंट भारतमाता की सेवा में उपस्थित कर सके।

(२) बुन्देलखण्ड का प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने मानवोचित गौरव का अनुभव करे और उसे अपनी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा साहित्यिक उन्नति करने के लिये सम्पूर्ण साधन सुलभ हों।

अन्त में हमें एक बात और कहनी है, वह यह है कि जब तक यजमान और होता लोग इस यज्ञ की पूर्ति के लिये तप न करेंगे तब तक यह स्वप्न स्वप्न ही रहेगा। इस स्वप्न को आकाश-जगत् से उतार कर भूमि पर प्रत्यक्ष करने के लिये तप की आवश्यकता है।

यद्दुरापं दुराम्नायं दुराधर्षं दुरन्वयम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥

अर्थात् संसार में जो कुछ भी कठिन या असम्भवप्राय है, वह सब तप से सिद्ध हो सकता है।

टीकमगढ़ }
१:११.४१ }

बुन्देलखंडियों की मांग

(पृथक् प्रान्त का स्वप्न)

ओरछा से प्रकाशित पाक्षिक पत्र 'मधुकर' में, जिसके सम्पादक पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी हैं, "कुशल आलोचक श्री राहुल सांकृत्यायन" के सिद्धान्त की चर्चा चलाकर तथा उसकी सहायता ग्रहण कर, सम्पादकीय स्तम्भ में लिखा है कि "हम श्रीयुत राहुलजी से इस बात में पूर्णतया सहमत हैं कि बोलियों के आधार पर प्रान्तों का पुनः निर्माण होना चाहिये।" इस सिद्धान्त के आधार पर 'मधुकर'-सम्पादक पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने बुन्देलखण्ड प्रान्त को पृथक् प्रान्त बनाने का समर्थन किया है। सम्भवतः कोई और भी इस आन्दोलन के सूत्र-संचालक और निर्देशकर्त्ता हैं। आश्चर्य तो यह है कि पं० बनारसीदासजी यह भी कहते हैं कि "छोटे-छोटे राज्यों का युग बीत चला है और ये एकाकी खड़े नहीं रह सकते, समय की गति उन्हें ज़बर्दस्ती आपस में मिला कर छोड़ेगी", तथापि आप विघटन नीति का समर्थन कर बुन्देलखण्ड को पृथक् प्रान्त बनाने में "आदर्शवादिता ही नहीं, दूरदर्शिता" भी मान रहे हैं। पर यह सपना है और भावुक हृदय की कल्पना मात्र।

अन्याय का मिथ्यारोप

'मधुकर' में आगे लिखा गया है कि "संयुक्त प्रान्त तथा मध्यप्रदेश में बुन्देलखण्ड के जो ज़िले अनाथों की तरह जबर्दस्ती घुसेड़ दिये गये हैं, वे अपनी जन्मभूमि में फिर से सम्मिलित होकर नवीन जीवन का अनुभव करेंगे। बुन्देली भाषा अपनी भरपूर भेंट विधिवत् राष्ट्रभाषा को दे सकेगी। प्रान्त के मानव-समूह में प्रान्तीय गौरव के भाव उत्पन्न हो जायँगे और एक अन्याय की भी समाप्ति हो जायगी। भूले-भटके भाइयों का यह पुनर्मिलन वास्तव में देवताओं के देखने योग्य चीज़ होगी।"......"हम बुन्देलखण्ड प्रान्त का रूप आँखों के सामने उपस्थित करें। इसके लिये बुन्देलखण्डी विश्वकोष का निर्माण आवश्यक है।" आगे इसी लेख में बुन्देलखण्ड के कीट, पशु-पक्षी, मत्स्य, वन-जन्तु, पत्रपल्लव, ऐतिहासिक तत्व, बुन्देलखण्डी संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, साहित्य-कला, आभूषण, भाषा का विकास, ग्राम-गीत, कहानी, शब्द और लोकोक्तियों आदि के संग्रह की योजना की बातें लिखी गई हैं। जहाँ तक विश्व-कोष और संस्कृति-विकास का प्रश्न है, पं० बनारसीदास जी और उनके विचार अभिनंदनीय, समर्थनीय और स्वागत करने योग्य हैं, परन्तु पृथक प्रान्त का स्वप्न चरितार्थ करने की लालसा न युक्ति-संगत है, न न्यायपूर्ण और न प्रोत्साहन देने योग्य।

प्रान्तों की भरमार

भाषा के आधार पर प्रान्त-निर्माण के सिद्धान्त का समर्थन करना उचित है, पर बोलियों के आधार पर ऐसा करना सर्वथा असम्भव और अव्यावहारिक व्यापार है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दुस्तानी सी० पी०, ८,६ ज़िले, जो हिन्दी-भाषी हैं, युक्त प्रान्त में मिला दिये जायँ तो यह बात उचित होगी, परन्तु युक्त-प्रान्त से बोली के आधार पर बुन्देलखण्ड प्रांत का संगठन करने की मांग का प्रश्न उठाना केवल भावुकता प्रदर्शन करना मात्र है और कुछ नहीं। पंडित बनारसीदासजी जैसे विद्वान और दूरदर्शी पत्रकार कैसे इसका समर्थन करने लगे, यह समझ में नहीं आता। बोलियों के आधार पर प्रान्त बनाये जायँगे तो युक्त-प्रान्त में ही अनेक प्रान्त बनाने पड़ेंगे और संयोग के स्थान पर वियोग ही सहन करना पड़ेगा! बोलियों के आधार पर रुहेलखण्ड (मेरठ, मुरादाबाद, रामपुर, और बुलन्दशहर के आस-पास) व्रजखंड (अलीगढ़, खुरजा, हाथरस, मथुरा, भरतपुर आदि) भिंड-भदावर खंड (आगरा, धौलपुर, ग्वालियर) काम्पिल्य खंड (कन्नौज, सिकन्दरपुर, फ़तहगढ़, फर्रुखाबाद, मैनपुरी, इटावा आदि) अवध खंड (लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, फैज़ाबाद, सुल्तानपुर, गोरखपुर) वाराणसी खंड (बनारस, इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, गाज़ीपुर, बलिया) और बुन्देलखंड (जालौन, कौंच, कालपी, बांदा, उरई, रीवां, झांसी) आदि प्रान्त बनाने पड़ेंगे क्योंकि इन सब की बोलियां वैसे तो एक हैं, पर अल्प भेद से पृथक्-पृथक् प्रतीत होती हैं। और खोजिये तो और भी अनेक पार्थक्य तत्त्व प्राप्त होंगे, अन्यथा कोई अन्तर नहीं है। उपर्युक्त खंडों की हिन्दी भाषा अल्प भेद से ब्रज-भाषा ही है। जनता की संस्कृति और रीति-नीति में कोई भी अंतर नहीं है।

बुन्देलखंडी का अस्तित्व

उपर्युक्त खंडों की बोलियों में कोई अंतर नहीं, पर बुन्देलखंडी बोली तो सर्वथा ब्रज-भाषा है। बुन्देलखंडी बोली का ब्रज-भाषा से कोई पृथक् अस्तित्व है, यह हम किसी प्रकार नहीं मान सकते। जो ऐसा मानते हैं वे भ्रम-जाल-विद्ध हैं और निश्चय ही अनुभव-हीन भी। वे प्रकाश प्राप्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करें तो उत्तम हो। साथ ही वे घूमघाम कर भाषा और बोलियों तथा उनके बोले जाने के स्थानों की स्थिति का भी अनुभव प्राप्त करें। "बुन्देलखंडी बोली या भाषा" यह भेद-नाम सम्भवतः सब प्रथम

स्वर्गीय ग्रियर्सन ने उच्चारित किया था। फिर अन्य हिन्दी-साहित्यिकों के लेखों में भी हमने ऐसी भूलों की पुनरावृत्ति देखी है। हम उनका नामोल्लेख कर उनकी स्वर्गस्थ आत्मा को क्लेश नहीं पहुँचाना चाहते। पर उनकी भूलों का मार्जन इसी भाँति हो सकता है कि तत्व का अन्वेषण किया जाय और वास्तविक परिणाम सामने रख दिया जाय। ग्रियर्सन भूल कर सकते हैं। वे विदेशी थे और भारतीय बोलियों का सूक्ष्म अन्तर नहीं समझते थे। पर हम लोग उनकी भूल का अनुकरण और उसका पोषण क्यों करें?

ब्रज भाषा की व्यापकता

'मधुकर' में हमने अनेक बार ऐसे लेख देखे हैं जिनमें बुन्देलखंड की भाषा, संस्कृति और आचार-विचारों का युक्तप्रान्त के अन्य खंडों, विशेष कर ब्रजखंड से सर्वथा पृथक चित्रित किया गया है। हमने उन लेखों को पढ़कर यही समझा कि ये भावुक नवयुवकों के लिखे हुए हैं। परन्तु जब हमने यह पढ़ा कि पं० बनारसीदासजी भी बुन्देलखंडी और ब्रज-भाषा में अन्तर मानते हैं और बुन्देलखंड तथा ब्रज के संस्कारों को पृथक चित्रित नहीं करते, वरन पृथक बुन्देलखंड प्रान्त-निर्माण का समर्थन करते हैं तब हमने यह समझा कि कोई बात होगी और जान-बूझ कर यह कार्य किया जा रहा होगा। 'मधुकर' में अभी तक बुन्देलखण्ड के सम्बन्ध में जो बातें निकली हैं (कहानी, कहावतें लोकोक्तियां, पहेलियां, ग्रामगीत, उपाख्यान, देवी-देवता, भाषा के बोलने का ढंग, शब्द, शब्दों के अक्षरों पर बल देने के स्थान, उनकी रीति, उच्चारण आचार-विचार, रहन-सहन आदि) सो सभी ब्रज-खण्ड की ही हैं। हमें तो उनमें राई-रत्ती भर भी अन्तर न दिख पड़ा। या तो ब्रज भाषा बुन्देलखण्डी है या बुन्देलखण्डी, यदि कहीं वह है भी तो, ब्रजभाषा है। इसी प्रकार दोनों खण्डों की संस्कृति के सम्बन्ध में जानना चाहिये।

बुद्धि-व्यायाम कीजिये

बुन्देलखण्ड के नाम पर जो साहित्य सामने आ रहा है, उसे तो हम ब्रज-भाषा का ही साहित्य समझते हैं और यह निश्चय ही है भी ब्रज-भाषा का ही साहित्य। अतएव न पृथक प्रांत की कल्पना करनी चाहिये और न पृथक भाषा का अस्तित्व मानना चाहिये। जहां तक भाषा का सम्बन्ध है ब्रज और बुन्देलखण्ड वाले मिल कर कार्य करें तो और उत्तम होगा तथा कथित और अस्तित्वहीन बुन्देलखण्डी भाषा का व्याकरण और ब्रजभाषा का व्याकरण एक ही है, जिस प्रकार कि संस्कृत भाषा का सर्वत्र एक ही व्याकरण है। यदि अवध पृथक होना चाहे तो कुछ कारण मिल सकते हैं, पर बुन्देलखण्ड की प्रार्थक्य की माँग—यदि भाषा और संस्कृति पर ध्यान रखा जायगा तो, उचित न होगी। आशा है कि कल्पित बुन्देल' प्रान्त के स्वप्न-द्रष्टा आन्दोलनकारी और तथाकथित बुन्देलखण्डी भाषा के समर्थक इस विषय में अपनी और भी युक्तियां जो उनके पास हों, सामने रक्खेंगे। इस विषय में बुन्देलखण्डी भाई थोड़ा और बुद्धि-व्यायाम करें तो उत्तम होगा।

{ 'लोकमान्य' (कलकत्ता) का
{ अग्रलेख ८ दिस० १९४२

प्रान्तीय विभाजन

भारत के वर्तमान प्रांतीय विभाजन से कुछ लोग असहमत हैं और पुनः प्रान्तीय विभाजन पर बल दे रहे हैं। कुछ लोगों का कहना है कि प्रान्तों का विभाजन भाषा के आधार पर होना चाहिए। यह आवाज आन्ध्र-प्रान्त से अधिक ज़ोरदार आ रही है। पंजाब में भी सिख नेता मास्टर तारासिंह आज कल पंजाब का अङ्ग-भङ्ग करने पर तुले हुए जान पड़ते हैं। लेकिन लोगों

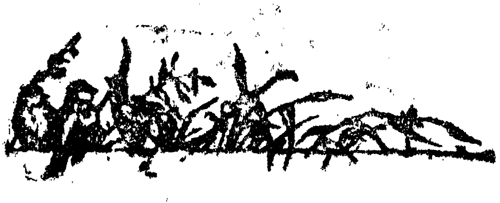
को इतने से भी सन्तोष नहीं हुआ और अब एक नई आवाज़ बुन्देलखण्ड से आयी है कि बोलियों के आधार पर प्रान्त बनें। ओरछा से प्रकाशित होने वाले पाक्षिक पत्र 'मधुकर' के सम्पादक श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने इस मांग का पूर्ण-रूपेण समर्थन किया है। जहां हमें इस मांग पर आश्चर्य होता है वहां हमें इस बात पर महान् दुःख होता है कि पं० चतुर्वेदी ऐसे व्यक्ति ने इस मांग का समर्थन किया है। भाषा के आधार पर प्रान्तों का बटवारा करने की योजना समर्थनीय भी है, लेकिन यदि बोलियों के आधार पर बटवारा किया जायगा तो क्या 'मधुकर' के सम्पादक महोदय यह बतला सकते हैं कि भारत में कितने प्रान्त बन सकते हैं? इसका परिणाम तो यह होगा कि भारत अनेक टुकड़ों में बँट जायगा और फिर पाकिस्तान को जो प्रोत्साहन मिलेगा, उसकी बात करना तो क्या, सोचने ही से हृदय कम्पित हो जाता है। आज पाकिस्तान की समस्या केवल बंगाल, पंजाब, सिंध और सीमा-प्रांतों में ही लागू की जाने की बात कही जा रही है, लेकिन यदि बोलियों के आधार पर प्रांतों का पुनः विभाजन हुआ तो प्रांतों के अन्दर भी कुछ प्रांत ऐसे निकल सकते हैं जिनमें एक या दो प्रतिशत भी मुसलमान अधिक होने पर चट पाकिस्तान की मांग खड़ी कर दी जायगी। इस समय 'भारत अखंड है' का प्रबल नारा लगाना और मि० जिन्ना की पाकिस्तानी मांग का विरोध करना है। समस्त भारत जानता है कि अधिकारियों की ओर से मुस्लिमलीग को कितना प्रोत्साहन दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में किसी प्रकार के बँटवारे की बात करना महान भूल होगी। चतुर्वेदीजी के मुँह से इस प्रकार समय के विरुद्ध वाली मांग का समर्थन किया जाना किंचिन्मात्र भी शोभा नहीं देता।

['दैनिक जागृति' का अग्रलेख ४ दिस० १९४२

प्रांतीय विभाजन

हिन्दी के ख्याति-प्राप्त लेखक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को भी अब राजनीतिक नेता बनने का शौक चर्राया है। वल्लाह क्या कहना है इस नये शौक़ को! आखिर आप इस राजनीतिक क्षेत्र में तो आये। आखिर भारत की राजनीति जो ठहरी! आपने गर्दभ स्वर से आवाज ऊँची की है कि भारत में प्रांतों का गठन बोलियों के आधार पर किया जाना चाहिये और इस आधार पर आपने बुन्देलखण्ड का एक अलग प्रांत बनाये जाने की मांग की है। मालूम होता है चतुर्वेदीजी जब इस मांग का समर्थन करने के लिये क़लम लेकर लिखने बैठे थे तो शायद भंग का नशा कुछ ज्यादा आ गया था। फिर क्या कहना, आप लेखक तथा साहित्यिक जो ठहरे और सब से बड़ी बात आप सम्पादक जो हैं। कुछ-न-कुछ नवीनता लेखों में अवश्य रहनी चाहिये। सच है भावुक हृदय वालों से यही तो आशा है।

['साप्ताहिक जागृति' ११ दिस० १९४२



बुन्देलखण्ड है कहाँ ?

ब्रज के करील-कुंजों में ?

श्री कृष्णानन्द गुप्त

'लोकमान्य'—कलकत्ता ने अपने एक अग्र-लेख में 'मधुकर' के बाईसवें अङ्क में प्रकाशित उस लेख का नख-शिख से विरोध किया है, जिसमें कि प्रसंगवश बुन्देलखण्ड प्रान्त को पृथक प्रान्त बताने का समर्थन किया गया था। भाषा, बोली अथवा सांस्कृतिक आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण होने की आवश्यकता है या नहीं, यह तो एक अलग प्रश्न है। उस सम्बन्ध में हमें अभी कुछ नहीं कहना। हमें तो इस समय सहयोगी की उस सम्मति के विषय में निवेदन करना है जो उसने बुन्देलखंडी के बारे में ज़ाहिर की है। यह देख कर कि बुन्देलखंडी बोली भी कोई चीज़ है और भारत के किसी एक प्रदेश में उसके बोलने वाले भी मौजूद हैं, उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। 'मधुकर' के उस सम्पादकीय लेख में कुछ बातें ऐसी हो सकती हैं जो अव्यावहारिक अथवा खंडनीय हों। हम भी उसकी प्रत्येक बात के समर्थक नहीं, तथापि 'लोकमान्य' से हमें आशा थी कि वह इस वादविवाद में अधिक गम्भीरता, संयम तथा समझदारी से काम लेगा।

सहयोगी की राय में बुन्देखंडी बोली का कोई पृथक अस्तित्व नहीं, और 'मधुकर' में अभी तक बुन्देलखंड के नाम से जो चीज़ निकली है—कहानी, कहावतें, लोकोक्तियाँ, ग्राम-गीत आदि, सो सभी ब्रजखंड के हैं। हम पूछते हैं, "बुन्देलखंड नाम की जगह फिर है कहाँ, मथुरा या अलीगढ़ के चौगरदे में, या गोकुल और वृन्दावन के करील-कुंजों में ?"

सहयोगी के लिये रुहेलखंडी, अवधी, ब्रज-बोली, बघेली, बुन्देलखंडी इन बोलियों में कोई अन्तर नहीं। वे सब एक हैं, और ब्रज-भाषा का ही रूप हैं। सीधे शब्दों में 'लोकमान्य' यह क्यों नहीं कहता कि वे सब ब्रज-भाषा से ही निकली हैं। न जाने क्यों बुन्देलखंडी पर उसकी विशेष कृपा है। इसलिये विशेष ज़ोर देकर वह कहता है—"पर बुन्देलखंडी बोली तो सर्वथा ब्रजभाषा है।" बुन्देलखंडी-बोली ब्रज-भाषा से कोई अलग चीज़ है, इसे वह किसी प्रकार भी मानने के लिये तैयार नहीं।

यदि अवधी ब्रज-भाषा का ही एक रूप है और बुन्देलखंडी भी ब्रज-भाषा ही है, तो निस्सन्देह किसी ज़माने में समस्त मध्यभारत में ही नहीं, बल्कि उत्तराखंड के अधिकांश प्रदेश में भी ब्रज-बोली का ही बोलबाला रहा होगा। भारतीय इतिहास में किस युग में ऐसा हुआ, हमें इसका ज्ञान नहीं। क्या सहयोगी इस बात का दावा कर सकता है कि सागर, जबलपुर और दमोह के ज़िलों में जो भाषा बोली जाती है वह ब्रजभाषा ही है? यदि हां, तो हमें निस्संदेह उसके साहस की प्रशंसा करनी पड़ेगी। यदि वह इसकी जांच करना चाहता है कि बुन्देलखंडी और ब्रज ये एक ही बोली के दो नाम हैं या दो अलग-अलग बोलियां हैं, तो यहां हम एक प्रस्ताव उपस्थित करते हैं, 'लोकमान्य' के सम्पादक ठेठ ब्रजभाषा में एक कहानी लिखें या लिखावें। हम उसे बुन्देलखंडी में लिखेंगे। इन दोनों को भाषा-विदों के पास भेज दिया जाय, और पाठकों की भी राय ली जाय। देखें, वे क्या कहते हैं—इन दो बोलियों को एक बताते हैं या पृथक।

अपने पक्ष-समर्थन की व्यर्थ चेष्टा में सहयोगी एक बड़े मज़े की बात कह गया है। उसका कथन है कि अवध, रुहेलखण्ड, ब्रज, भिण्ड, मदावर, बुन्देलखण्ड, काम्पिल्यखण्ड, इन सब स्थानों की संस्कृति और रीति-नीति में कोई अन्तर नहीं है। वह एक है, और वह ब्रज की संस्कृति है। रेखांकित शब्द हमारे हैं, किन्तु

सहयोगी का अभिप्राय यही जान पड़ता है कि व्रजभाषा की तरह व्रज की संस्कृति भी उपयुक्त सब स्थानों में व्याप्त है, मगर जो लेखक यह कहने का दुस्साहस करता है कि रुहेलखण्ड और व्रज अथवा बुन्देलखण्ड और अवध की जनता का रहन-सहन, खान-पान, रीति-नीति एक है और जो उसमें कोई उल्लेख योग्य अन्तर नहीं पाता, वह निस्संदेह नृतत्व एवं समाज-शास्त्र के सुपरिचित तथ्यों से अपनी घोर अनभिज्ञता प्रकट करता है। यदि हमारे कलकत्ते के सहयोगी का यह ख्याल है कि बुन्देलखण्ड की अपनी कोई संस्कृति नहीं तो हम उससे पूछते हैं कि ह्यू न चांग ने सन् ६४२ ईस्वी के लगभग अपने यात्रा-विवरण में चीह ची तो (Chih-chi-to) नाम के ब्राह्मण राजा द्वारा शासित जिस सस्य श्यामल प्रदेश का उल्लेख किया है और लिखा है कि 'The soil was rich, the crops abundant, and pulse and wheat were products." वह किस जगह था? चेदि और त्रिपुरी के प्राचीन राज्य कहां थे? देवगढ़ कहां है? पद्मावती कहां स्थित है? दुनिया के स्थापत्य को चुनौती देने वाले खजुराहो के मन्दिर कहां बने हैं? सुलतान महमूद की प्रधानता को स्वीकार कर लेने के अपराध में राज्यपाल को आक्रमण द्वारा मृत्यु दण्ड देने वाला चंदेलराज गंड कहां उत्पन्न हुआ था? वह पुण्य भूमि कहां है, जिसके बारे में रहीम लिख गये हैं:—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देश॥

बुन्देलों की लीला-भूमि कहां रही? छत्रशाल कहां हुए? बीरसिंह प्रथम के बनवाये हुए विशाल जलाशय, मन्दिर, किले और भवन कहाँ हैं? हम पूछते हैं कि आल्हा-ऊदल की तलवार कहां चमकी? बुन्देलों ने अपनी बर्छी पर धार कहां रक्खी? यहां के तथा अन्य स्थानों के पोशाक-पहनावे में क्या कोई भी अन्तर नहीं है? सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के बने चित्रों में बुन्देले राजाओं की जो बांकी पोशाक मिलती है, अवध और रुहेलखण्ड के नवाबों में भी क्या उसका चलन था? यहां की ग्रामीण बोली में जो एक सहज मिठास और विनम्रता विद्यमान है वह क्या अवधी और व्रज-बोली में अब भी शेष है? व्रज का वह युग कभी का चला गया, जब सांकरी गली में कांकरी लगा करती थी। अब तो वहां पक्की सड़कों पर मोटर दौड़ती है, पर बुन्देलखण्ड के अधिकांश भूभाग में भाषा की वह मधुर कोमलता अब भी नष्ट नहीं हुई, 'लोकमान्य' के सम्पादक यदि चाहें तो हम उन्हें दो-चार नहीं, दस-पांच भी नहीं, हज़ार-पांच सौ ऐसे ग्राम-गीत भेजने के लिये तैयार हैं, जिसके अन्दर बुन्देलखण्ड की आत्मा, यहां की संस्कृति, और रीति-नीति उन्हें अलग फड़कती हुई नज़र आयगी। निस्सन्देह व्रज या अवध या रुहेलखण्ड के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। उनका भी अपना एक पृथक सांस्कृतिक व्यक्तित्व है। क्या हमारे सहयोगी का यह ख्याल है कि जनपदों की यह अपनी संस्कृति अलग करके देखने, बटोरने और सम्मान करने की वस्तु नहीं है? अनेकता में एकता का दर्शन करना और विभिन्नताओं में सामंजस्य उत्पन्न करना ही भारतीय दर्शन की विशेषता रही है। भिन्न-भिन्न जनपदों के सांस्कृतिक संगठन के मूल में एक ही भावना काम करती है, वह यह कि वस्तुतः भारत अखण्ड और अविभाज्य है।

रही 'लोकमान्य'-सम्पादक की यह बात कि बुन्देलखण्ड के नाम से जो साहित्य 'मधुकर' में प्रकाशित हो रहा है, वह व्रज का ही है, सो यह तो तभी माना जा सकता है जब इतिहास के पन्नों को क़तई बदल दिया जाय और पारवती, सिंध, बेतवा, धसान और केन से सिंचित, एवं जमुना, चम्बल, नर्मदा एवं टौंस से परिवेष्टित भूभाग को व्रज के चौरासी कोस में लीन कर दिया जाय। किसी ज़माने में नरसिंहपुर, चत्तीसगढ़, हुसंगाबाद, ये ज़िले भी राज-नैतिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड में सम्मिलित रहे हैं। यदि इस वक्त

हम इनको शामिल करलें तो इस भूमि का क्षेत्र-फल ७०-८० हज़ार वर्गमील से कम नहीं बैठेगा। ब्रज के चौरासी कोस में बुन्देलखण्ड के ७०-८० हज़ार वर्गमील समाविष्ट करने वालों को बुद्धि-व्यायाम करना चाहिये या बुन्देल-खण्डियों को, जिनका प्राचीन साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक इतिहास ब्रज से किसी भी हालत में कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहा ? इस प्रश्न का उत्तर समझदार पाठक स्वयं दे लेंगे। टीकमगढ़]

प्रान्त-निर्माण

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

"अहं हि नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवंगम
सर्वतः परिरक्षामि अतस्ते कथितं मया"

"अरे ओ बन्दर ! मैं तुझ से कहे देती हूँ कि मैं स्वयं लङ्का नगरी हूँ और उसकी सब तरह से रक्षा किया करती हूँ। यह तू निश्चय जान ले।"

आदि कवि वाल्मीकि ने सहस्रों वर्ष पूर्व नागरिकता का जो सन्देश इन सात शब्दों में दिया था वह आज भी ज्यों-का-त्यों ताज़ा और स्फूर्तिप्रद है। जब हनुमानजी लङ्का के द्वार पर गये थे तो उक्त नगरी की रक्षिका एक राक्षसी ने दृढ़ता-पूर्वक ये वचन कहे थे—"मैं स्वयं लङ्का हूँ। मेरी उपेक्षा करके इस नगरी में प्रवेश करना असम्भव है। आज प्राण तुम्हारा साथ छोड़ देंगे और मेरे द्वारा निहत होकर तुम यहीं सोओगे।"

आज जब कि बुन्देलखंड के अलग प्रान्त बनाये जाने का प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है हम प्रतीक्षा करते हैं उन पुरुषों की जो बुलन्द आवाज़ में कह सकें—"हम स्वयं बुन्देल-खंड हैं।

स्पष्ट घोषणा की आवश्यकता

यदि हम चाहते हैं कि हमारा आन्दोलन सफल हो तो इस आन्दोलन के संयोजकों को अपनी स्थिति प्रारम्भ में ही बिल्कुल स्पष्ट कर देनी चाहिये। इस महायज्ञ के करने वालों के हाथ पवित्र होने चाहियें और उनके उद्देश्य निर्मल। यह प्रश्न है बुन्देलखंड के ७०-७५ लाख व्यक्तियों के भाग्य का और इसके साथ खिलवाड़ नहीं की जा सकती।

बुन्देलखण्ड प्रान्त का निर्माण संयुक्त प्रान्त तथा मध्य प्रदेश के कुछ ज़िलों को लिये बिना न हो सकेगा (वे ज़िले जो वस्तुतः बुन्देलखण्डी हैं) और उन ज़िलों के निवासियों में राजनैतिक जागृति पर्याप्त मात्रा में हो चुकी है। जब तक उन लोगों को यह दृढ़ विश्वास न हो जायगा कि नवीन निर्माण-प्रणाली में उनके अधिकार आज से किसी भी अंश में कम न होंगे और उनको अपनी राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के लिये वर्तमान से कहीं अधिक सुविधाएँ होंगी तबतक वे हमारे आन्दोलन का समर्थन नहीं कर सकते।

कुछ लोगों को यह आशङ्का है कि इस आन्दोलन के पीछे कुछ व्यक्तियों अथवा समूहों की राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएँ काम कर रही हैं। इस शङ्का को निर्मूल करके ही हम आगे बढ़ सकते हैं। लोकमत का समर्थन प्राप्त करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है कि इस आन्दोलन के संचालक दिल खोलकर साधारण जनता से बातचीत कर लें।

हमारा व्यक्तिगत दृष्टिकोण

बुन्देलखंड प्रान्त के निर्माण का आन्दोलन इसी प्रान्त के कार्यकर्ताओं द्वारा होना चाहिये और कोई बुन्देलखण्डी ही इसका नेतृत्व ग्रहण कर सकते हैं। कलकत्ते की 'जागृति' ने हम पर यह इलज़ाम लगाया है कि हमें 'राजनैतिक नेता बनने का शौक चर्राया है' और हमने

'गर्दभ स्वर से यह आवाज़ ऊँची की है कि भारत में प्रान्तों का गठन बोलियों के आधार पर होना चाहिये।'

स्वर के विषय में हमें कोई ऐतराज़ नहीं, पर आपत्ति का प्रथम आक्षेप सर्वथा निराधार है। राजनैतिक नेता बनने की आकांक्षा न कभी हमारे मन में थी और न अब ही है। हम उसके लिये सर्वथा अयोग्य हैं और राजनैतिक नेतृत्व हमारी रुचि की चीज़ भी नहीं।

प्रान्तनिर्माण के विषय में हमारा मत मुख्यतया सांस्कृतिक तथा साहित्यिक तथ्यों पर निर्भर है।

यदि माता वेत्रवती का विस्तृत जीवनचरित कोई लिख दे, उसके जल का उपयोग कृषकों के लिये हो जाय और उसके तट पर शिक्षा-सम्बन्धी सांस्कृतिक तथा औद्योगिक संस्थाएँ स्थापित हो जावें तो हमें इस बात की कोई चिन्ता नहीं कि कौन्सिलों में कौन बैठता है (आदमी या हैवान!) और आनरेबिल की उपाधि किसे मिलती है।

कैन के तट पर का कविसम्मेलन हमारे लिये कौंसिल के वाद-विवाद से अधिक महत्त्व रखता है और किसी भी राजनैतिक मीटिङ्ग को छोड़कर आल्हा सुनने के लिये हम हर समय उद्यत हैं।

शासन की व्यवस्था के हम उतने ही अंश तक पक्षपाती हैं जितने अंश तक वह हमारे साहित्यिक अथवा सांस्कृतिक कार्यों को निर्विघ्न होने देती है, शेष शासन क्लर्कों और डेस्कों का सिर फुड़ौवल मात्र है।

हमारी दिलचस्पी साधारण आदमियों में है। प्रान्तनिर्माण से टूँड़े खँगार, सूरे धीमर, किसना खटीक, गोविंदा अहीर, भैयालाल जैन, ठाकुर बल्देवसिंह और पंडित कृष्णकिशोर द्विवेदी तथा मौलवी साहब 'मंज़र' को क्या लाभ होगा? हमारे लिये यही प्रश्न मुख्य है। यदि बुन्देलखण्ड के अलग प्रान्त बनने से अल्पसंख्यक मध्य श्रेणी के महत्वाकांक्षी पूँजीपतियों, वकीलों, डाक्टरों अथवा ज़मींदारों या नरेशों का ही हित होता हो और जनता की दशा ज्यों-की-त्यों बनी रहे तो हम ऐसे प्रान्त-निर्माण को हज़ार बार दूर से ही नमस्कार कर देंगे। अगर प्रान्त-निर्माण के मानी ये हैं कि कोई पूँजीपति बेतवा के किनारे मिल खोलकर आस-पास के मज़दूरों का शोषण करने लगे और माता बेतवा के जल को गंदा करे तो हम ऐसे प्रांत-निर्माण का घोर विरोध ही करेंगे। हम उसी प्रांत-निर्माण के पक्षपाती हैं जो ग़रीबों के लिये अन्न-वस्त्र की समस्या को हल करे, उनमें स्वाभिमान की भावना जाग्रत करे, उनके बच्चों के लिये अच्छी-से-अच्छी शिक्षा की आयोजना करे और उनके पास इतना अवकाश छोड़ दे कि वे साहित्य, संस्कृति अथवा कला-सम्बन्धी कार्यों में रुचि रख सकें।

यदि प्रांत-निर्माण के नाम पर कोई पंजाबी या युक्तप्रांतीय ठेकेदार यहाँ के जंगल के वृक्षों को काट-काट कर इस भूमि को रेगिस्तान बना दे तो हम यही समझेंगे कि वह हमारी माता के वक्षस्थल पर कुठाराघात कर रहा है।

हम प्रांत-निर्माण का समर्थन इसीलिये कर रहे हैं कि हमें बुन्देलखण्ड की नदियों से प्रेम है, यहां के बनों के प्रति श्रद्धा है और यहां के फल-फूल और वृक्षों को हम सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

हम यह देख रहे हैं कि यदि इस प्रान्त में प्रान्त-प्रेम की भावना जाग्रत न हुई तो पन्द्रह बीस बर्षों में यह सस्यश्यामला भूमि रेगिस्तान का रूप धारण कर लेगी।

पांच वर्ष तक इस भूमि के अन्न-जल ने हमारा पालन-पोषण किया है, यहां के वनों-उपवनों में हमने स्वास्थ्य-लाभ किया है और यहां के स्वाधीन पशु-पक्षियों ने हमारा मनोरंजन किया है, इसलिये कृतज्ञता का यह तक़ाज़ा है कि हम यथाशक्ति अपने कर्ज़े को अदा करें।

जब हम देखते हैं कि अप्रगतिशील छोटे-छोटे गंदे सरोवर यहां सैकड़ों की संख्या में विद्यमान हैं और उनमें प्रगति की धारा ले आने से वे स्वच्छ हो सकते हैं, तो हमारा यह कर्तव्य

हो जाता है कि हम ऐसी आयोजनाओं का समर्थन करें, जो उक्त उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो सकती हो।

हमारी बाधाएँ

आज से ढाई वर्ष पूर्व हमने अपनी एक साहित्यिक आयोजना श्रीयुत व्योहार राजेन्द्रसिंहजी एम० एल० ए० (जबलपुर) की सेवा में भेजी थी। उसकी स्वीकृति भेजते हुए उन्होंने अपने २१ जुलाई सन् १९४० के पत्र में लिखा था:—

"भाषा की दृष्टि से व्रज-साहित्य-मंडल या बुन्देलखण्ड-मंडल का संगठन आवश्यक है, किंतु राजनीतिक प्रान्त-विभाजन के कारण भाषा-संबंधी एकता तथा आपसी सम्पर्क में बड़ा भारी व्याघात उपस्थित हो गया है। बुन्देलखण्डी भाषा-भाषी महान् जनसमूह संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, तथा छोटी-छोटी देशी रियासतों में बिखरा हुआ पड़ा है। उसकी सम्पूर्ण एकता तब तक सम्भव नहीं, जब तक वह एक अलग राजनीतिक प्रान्त में संगठित नहीं कर दिया जाता। कुछ वर्ष पूर्व राजनीतिक संगठन की दृष्टि से मध्यप्रान्त के हिन्दी और मराठी भाषी ज़िलों को अलग कर उनमें युक्तप्रान्त के दक्षिणी ज़िले शामिल कर के एक अलग हिन्दी-प्रान्त बनाने का आन्दोलन चलाया गया था। राजनीतिक एकता और साहित्यिक संगठन, दोनों की दृष्टि से इस आन्दोलन को फिर से उठाने की आवश्यकता है। किन्तु इसका सूत्रपात मध्य-भारत-साहित्य-सम्मेलन अथवा बुन्देलखण्ड-साहित्य-मंडल सरीखी संस्थाओं से किया जा सकता है।

"बिहार अथवा युक्तप्रांतीय साहित्य-सम्मेलनों का संगठन अधिक सरल है, क्योंकि उनके राजनीतिक तथा साहित्यिक वृत्तों की परिधि एक ही है। किन्तु मध्यप्रान्त सरीखे फुटकर प्रान्त के लिए यह बात कठिन है। यहाँ तो भाषा तथा प्राचीन परम्परागत प्रान्तीयता के अनुसार कांग्रेस ने तीन प्रान्तों की रचना स्वीकार की है—महाकोशल, मराठी मध्यप्रान्त तथा विदर्भ। अतः यहाँ सारे मध्यप्रान्त के लिए एक ही प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन की स्थापना अभी सफल नहीं हो सकी, यद्यपि इसकी स्थापना बीस वर्ष पूर्व की गई थी और उसे पुनः जाग्रत करने के भी कई प्रयत्न किये गये। कारण, इसके अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में भाषा या संस्कृति-सम्बन्धी एकता का अभाव है। जब राजनीतिक दृष्टि से भी यह प्रान्त सफल नहीं हो सका और प्रत्येक मौका पाते ही अलग होने की चिन्ता में रहता है (अभी हाल में महाकौशल की तरह महाविदर्भ प्रान्त की रचना की चर्चा भी चल पड़ी है), तब साहित्यिक क्षेत्र में वह कहाँ तक एकत्रित रह सकता है? इस प्रांत के उत्तरी ज़िलों में बुन्देलखण्डी बोली जाती है और बोली-बानी, चाल-ढाल तथा रीति-रिवाज़ में अपने पड़ोसी नागपुर या छत्तीसगढ़ की अपेक्षा वह बुन्देलखण्ड के अधिक समीप है। अतः बुन्देलखण्ड के किसी भी संगठन में शामिल होने को ये उत्तरी ज़िले सदा तैयार हैं।

"अन्त में आपने बुन्देलखण्ड के चार-पांच आदमियों से यह काम अपना लेने की बात कही है। मैं नहीं जानता कि मैं इसके उपयुक्त हूँ या नहीं; किन्तु अपनी नम्र सेवाएँ इस कार्य के लिए आपको समर्पित करता हूँ।"

इससे स्पष्ट है कि ग़लत राजनैतिक विभाजन हमारे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यों में कितना बाधक होता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि व्योहार राजेन्द्रसिंहजी मध्यप्रांत की कांग्रेस के एक गण्य-मान्य नेता हैं और आज से १५ वर्ष पहले सन् १९२८ में हिन्दी प्रांत के विभाजन का जो आन्दोलन चला था उसकी कमेटी के वे मंत्री थे। सन् १९२७ के 'कर्मवीर' में हिन्दी-प्रांत के निर्माण के पक्ष में एक लेखमाला पं० द्वारका-प्रसादजी मिश्र ने भी लिखी थी। इस प्रकार यह आन्दोलन कोई नवीन चीज़ नहीं है।

जहां तक हमारा इस प्रश्न से सम्बंध है हमने आज से ९ वर्ष पहले फर्वरी सन् १९३४ के 'विशाल भारत' में बुन्देलखण्ड, ब्रज तथा

अवध इत्यादि जनपदों के साहित्यिक तथा पृथक् सांस्कृतिक व्यक्तित्व के लिये ज़ोरदार शब्दों में लिखा था। उस समय हमारे मन में यह कल्पना भी नहीं थी कि कभी हमें इस प्रांत में रहने के लिये आना पड़ेगा। उस लेख के लिखे जाने के साढ़े तीन वर्ष बाद अक्टूबर सन् १९३७ में हमें इस भूमि में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपने नौ वर्ष पहले के लेख को हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं। आशा है कि उससे हमारे आलोचकों का समाधान हो जायगा।

हमारा स्वप्न

हम उस दिन के स्वप्न देख रहे हैं जब कि इस प्रांत के भिन्न-भिन्न भागों में बँटे हुए मूक मानव-समाज को वाणी मिलेगी, जब कि वे वास्तविक अर्थों में 'पुरुष' कहलाने के अधिकारी होंगे और जब कि यहां की प्रकृति (नदी-नद, सरोवर, वन-उपवन, पशु-पक्षी, वृक्ष-जगत्) इस बात का अनुभव कर सकेगी कि यहां के पुरुषों के बाहुओं में कुछ बल भी है।

जो बरुआसागर आज संयुक्त-प्रांत के एक पुंछेले ज़िले का एक पोखरा (तालाब) है, वह बुन्देलखण्ड का एक सुरम्य सरोवर बन जायगा, जहां स्वास्थ्य-लाभ तथा मनोरंजन करने के लिये अखिल भारत के यात्री आया करेंगे।

जिन्होंने ओरछा के किले से माता वेत्रवती का महान् गौरवमय दृश्य देखा है वे कह सकते हैं कि इस प्राकृतिक वैभव का मेल एक राज्य की उजड़ी हुई तहसील से नहीं, बल्कि प्रान्त के प्रधान सेन्द्र से ही हो सकता है।

सोलह वर्ग मील के क्षेत्रफल वाले नदनबाड़ा सरोवर के तट पर हम बीसियों फलों के उपवनों के स्वप्न देख रहे हैं और हम उन बहु-संख्यक स्वास्थ्यागारों (सैनीटोरियमों) की कल्पना कर रहे हैं, जो आस-पास के प्रान्तों के संत्रस्त प्राणियों को विश्राम तथा शांति प्रदान करेंगे। यदि आगरा तथा लखनऊ के केंद्र हमारे विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्रदान करेंगे तो हम इन जनपदों के नवयुवकों को प्रकृति के सम्पर्क में लाकर मज़बूत मनुष्य बनावेंगे। जब तक भिन्न-भिन्न जनपदों में यह आदान-प्रदान न होगा, जब तक वे एक दूसरे के पूरक न होंगे, तब तक हमारी मातृभूमि भारत में दीनता का अखण्ड ताण्डव ही होता रहेगा।

बुन्देलखण्ड प्रान्त के पृथक् निर्माण के समर्थकों तथा विरोधियों को यह बात भलीभांति समझ लेनी चाहिये कि यह प्रान्त अपना पृथक् राजनैतिक व्यक्तित्व केवल इसीलिये माँग रहा है कि वह अधिक योग्यतापूर्वक अखण्ड भारत की सेवा कर सके।

पाकिस्तान रूपी बीमारी के लिये यह तो रामबाण ओषधि है। साम्प्रदायिक कीटाणुओं को मारने के लिये यह अचूक दवाई है। फिरकेबन्दी-रूपी वृक्ष की जड़ पर कुठाराघात है। बेतवा और धसान, केन और जामनेर समान रूप से हम सब की माताएँ हैं और मज़हबी झगड़ों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

यज्ञ के संयोजकों से

इस महायज्ञ के संचालकों को भगवान् श्रीकृष्ण के निम्नलिखित शब्द याद रखने चाहियें:—

"अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः"

अर्थात्—सात्त्विक यज्ञ वही कहलाता है, जो फल की कामनाओं से रहित पुरुषों के द्वारा किया जाता है और जिसमें याजक लोग यह समझ कर कि यह यज्ञ परमात्मा (महामानव) की प्रसन्नता के लिये किया जा रहा है, भाग लेते हैं।

एक बार जनता को यह दृढ़ विश्वास हो जाय कि इस आन्दोलन के नेता सर्वथा निःस्वार्थ भाव से अपनी सेवाएँ अर्पित कर रहे हैं—उनका पिछला रेकर्ड निर्मल है, वर्तमान कार्य-पद्धति निर्दोष है और भविष्य में वे जनता के शासक नहीं, सेवक ही बनना चाहते हैं—तो फिर

इस आन्दोलन को वह प्रबलता प्राप्त होगी, जो विघ्न-बाधाओं को तृणवत् दूर फेंक देगी।

जिस दिन महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में कोई पुरुषसिंह गम्भीर ध्वनि में दहाड़ सकेगा—

"अहं हि खंड बुन्देल: स्वयमेव प्लवंगम"

उसी दिन प्रान्त-निर्माण का बीजारोपण हो जायगा। उस सिंह-शिशु के नामकरण संस्कार करने की किसी को आवश्यकता न पड़ेगी और अपने विचरने के लिये वह स्वयं ही क्षेत्र तैयार कर लेगा।

स्वर्गीय मुंशी अजमेरीजी के शब्दों में वह क्षेत्र होगा—

यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अञ्चल।
पूर्व ओर हैं टोंस पश्चिमाञ्चल में चम्बल॥
उरपर केन धसान बेतवा सिंध बही हैं।
विकट विन्ध्यकी शैल-श्रेणियाँ फैल रही हैं॥
विविध सुदृश्यावली अटल आनन्द-भूमि है।
प्रकृतिछटा बुन्देलखण्ड स्वच्छन्द भूमि है॥
चित्रकूट गिरि यहाँ जहाँ प्रकृतिप्रभुताद्भुत।
वनवासी श्रीराम रहे सीता-लक्ष्मण-युत॥
हुआ जनकजा-स्नान-नीरसे जो अति पावन।
जिसे लक्ष्य कर रचा गया धाराधर-धावन॥
यह प्रभु-पद-रजमयी पुनीत प्रणम्य भूमि है।
रमें राम बुन्देलखण्ड वह रम्य भूमि है॥

हिन्दी-क्षेत्रों का विभाजन

आज से नौ वर्ष पहले हमने विशाल-भारत में साहित्यिक प्रान्तों के पुनर्निर्माण का आन्दोलन प्रारम्भ किया था और फरवरी सन् १९३४ के अङ्क में लिखा था:—

"हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि प्रान्तीय-सम्मेलनों को जाग्रत कर दिया जाय तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन स्वयं ही बलवान् हो जायगा; पर इस समय साहित्यिक प्रान्त इतने बड़े हैं कि उनके पुनर्निर्माण की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ हम युक्तप्रान्तीय सम्मेलन को लेते हैं। यदि हम समस्त युक्तप्रान्त के साहित्यिकों का संगठन करना चाहें तो अत्यन्त कठिन कार्य होगा।

"काशी, प्रयाग, कानपुर और लखनऊ साहित्यिक दृष्टि से अब इतने महत्त्वपूर्ण स्थल बन गये हैं कि वे भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सम्मेलनों के केन्द्र बन सकते हैं। उदाहरणार्थ लखनऊ को हम अवधप्रान्तीय सम्मेलन का रूप दे सकते हैं। काशी तो स्वयं ही एक निराली नगरी है। भारत के किस नगर ने हिन्दी के लिये उतना कार्य किया है, जितना काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने? और फिर कौन उस महान् अन्तर्निहित साहित्यिक शक्ति का अन्दाज़ लगा सकता है जो हिन्दू-विश्व-विद्यालय में विद्यमान् है? क्या इन शक्तियों का संचालन कोई संस्था प्रयाग, लखनऊ, आगरा या कानपुर में बैठकर कर सकती है? हर्गिज़ नहीं। जिन दिनों हमारे साहित्य की सीमा बँधी हुई थी, साहित्य-सेवियों की संख्या अत्यल्प थी, उन दिनों यह सम्भव भी था; पर आजकल तो दिनोंदिन यह असम्भव होता जा रहा है। आवश्यकता है इस बात की कि हम अपने साहित्यिक प्रान्तों का पुनर्निर्माण करें।

"उदाहरण के लिये हम व्रज-मण्डल को लेते हैं। क्या यह असम्भव है कि आगरा, भरतपुर, अलीगढ़, धौलपुर, इटावा, एटा, मैनपुरी इत्यादि ज़िलों की साहित्यिक संस्थाएँ मिलकर व्रज-साहित्यिक-मण्डल का निर्माण करें?

"इसी प्रकार वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद् को भी बुन्देलखण्ड की प्रतिनिधि संस्था बनाया जा सकता है। हमें यह जानकर हर्ष हुआ कि उक्त परिषद् के अधिकारी इसका विचार कर भी

रहे हैं। अब की बार हमें कुछ ग्रामीण लोगों की बुन्देलखण्डी भाषा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि बुन्देलखण्डी व्रजभाषा के समान ही मधुर है, यद्यपि मुंशी अजमेरीजी तथा कविवर मैथिली-शरणजी गुप्त तो उसे व्रजभाषा से भी अधिक कोमल और मधुर मानते हैं! बुन्देलखण्डी भाषा का भी एक कोष तैयार होना चाहिये। सैकड़ों ऐसे शब्द बुन्देलखण्डी में विद्यमान हैं, जो हमारी पुस्तकों की भाषा में नहीं पाये जाते। उन्हें प्रयोग में लाने की ज़रूरत है। संस्कृत से शब्द गढ़ने की अपेक्षा यह कहीं बेहतर है कि प्रचलित शब्दों को ग्रहण किया जाय। इस प्रकार के कार्य बुन्देलखण्ड-साहित्य-परिषद् ही कर सकती है। यही बात अवधी भाषा तथा अवध-साहित्य-मंडल के विषय में कही जा सकती है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि प्रयागस्थ साहित्य-सम्मेलन का मुँह ताकते रहने की नीति को अब तिलांजलि दे देनी चाहिये। स्वयं सम्मेलन वालों का कर्त्तव्य है कि वे प्रांतीय संस्थाओं को शक्तिशाली बनावें।

"हम यह नहीं कहते कि सम्मेलन के वर्तमान अधिकारी बिल्कुल निर्दोष हैं। निस्संदेह इस समय सम्मेलन बिना पुजारी का मंदिर हो रहा है। वह साहित्य-शक्ति का केन्द्र अब नहीं रहा। वहाँ कोई ऐसा आदमी नहीं, जो अपना सम्पूर्ण समय उसी के कार्य में लगावे। बहुधंधी आदमियों से यह आशा करना कि वे साहित्य-सम्मेलन को सजीव संस्था बना सकेंगे, दुराशामात्र है। लेकिन दूर बैठे-बैठे सम्मेलन के सिर सारा अपराध मढ़ना भयंकर भूल है। जो जिस प्रांत में हो वह उसकी साहित्यिक उन्नति के लिये भरपूर उद्योग करे। हाँ, थोड़े से ऐसे आदमी भी होंगे, जो सभी प्रांतों की साहित्यिक प्रगति की ओर व्यापक दृष्टि रक्खें; पर इस समय तो हर आदमी आल-इण्डिया-साहित्यिक बनने की फ़िक्र में है! विस्तृत क्षेत्र पर अपनी शक्तियों को बिखेरने का ज़माना चला गया। अब तो छोटा-सा क्षेत्र चुन कर उसी पर अपनी शक्तियों को केन्द्रित करने का वक्त आ गया है। क्या हम आशा करें कि दिल्ली-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर इस प्रश्न पर विचार किया जायगा?"

दिल्ली के सम्मेलन ने हमारी इस क्षेत्र-विभाजन की नीति को स्वीकार कर लिया था, पर दुर्भाग्यवश वह इस कार्य को दृढ़तापूर्वक आगे नहीं बढ़ा सका।

उसके कुछ दिनों बाद टीकमगढ़ में बुन्देलखण्ड-साहित्य-मण्डल की स्थापना हुई और आगरे में व्रज-साहित्य-मण्डल की। हमें ऐसा ख़याल आता है कि शायद उन्नाव के किसी साहित्यिक उत्सव में अवध-साहित्य-परिषद् भी स्थापित हो गई थी। बुन्देलखण्ड-साहित्य-मण्डल की ओर से श्रीमान् ठाकुर सज्जनसिंहजी तथा श्री गौरीशंकरजी द्विवेदी ने आसपास के अनेक मुख्य-मुख्य स्थानों की यात्रा भी की थी। फिर भी यह कार्य सफलतापूर्वक आगे बढ़ नहीं सका। हर्ष की बात है कि अब फिर जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित हो गया है। मथुरा में व्रज-साहित्य-मण्डल की स्थापना हो गई है और राजस्थान-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन उदयपुर में हो रहा है। बुन्देलखण्ड-साहित्य मण्डल का पुनर्गठन श्री वृन्दावनलालजी वर्मा के सभापतित्व में हो रहा है।

सम्मेलन की ज़िम्मेवारी

इस अवसर पर हम दिल्ली सम्मेलन के प्रस्ताव नं० १२ की ओर सम्मेलन के अधिकारियों का तथा जनता का भी ध्यान आकर्षित करते हैं—

"राष्ट्रभाषा हिन्दी की विस्तृत अभिवृद्धि और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यों और उद्देश्यों का सुसंगठित प्रचार करने की दृष्टि से यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन और महत्त्व-पूर्ण बोलियों के क्षेत्र में मण्डल-सभाएँ स्थापित की जायँ, जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से सम्बद्ध

होकर व्यवस्थित रीति से निरंतर कार्य करती रहें।"

जब सम्मेलन क्षेत्र-विभाजन या विकेन्द्रीकरण की नीति को आज से ६ वर्ष पहले स्वीकार कर चुका है तो अब इतने दिनों बाद ही सही उसे अपने प्रस्ताव को कार्य रूप में परिणत करने के लिये भरपूर उद्योग करना चाहिये।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

बुन्देलखण्ड की मूल समस्या

श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, बी० ए०, एल-एल० बी०

जमुना, नर्मदा, चम्बल तथा टोंस से परिवेष्ठित भूभाग बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि किंवदन्तियों द्वारा इस नाम को प्रथम वीर बुन्देला से सम्बन्धित किया जाता है, पर ठीक यह प्रतीत होता है कि यह नाम विंध्येलखण्ड का अपभ्रंश है। विंध्यमेखला अपने वास्तविक रूप और गौरव में इस प्रान्त में ही दृष्टिगोचर होती है। इसी कारण भूतत्व के अनुसार यह प्रान्त अपना अलग ही अस्तित्व रखता है।

आप पंजाब से लेकर बंगाल तक चले जायँ। आपको एक विशाल धनधान्यपूर्ण सुविस्तृत घास और अन्न का मैदान मिलेगा। वहाँ आपको बड़ी-बड़ी नदियाँ, चौड़ी-चौड़ी सड़कें, विशाल नगर और घनी आबादी मिलेगी। सर्वत्र 'हिन्दुस्तान' नाम से कहे जाने वाले मैदान में आपको यह चीज़ें किसी-न-किसी रूप में मिलेंगी, चाहे वहां के निवासी हिन्दी बोलें, गुरुमुखी बोलें अथवा मैथिली या बंगला बोलें।

पर बुन्देलखण्ड की भूमि में आपको दूसरा ही दृश्य मिलेगा। यहाँ ऊँचे-नीचे पहाड़, छोटी छोटी पहाड़ी, नदियां, हरे-भरे घने जंगल, दूर-दूर बसे छोटे-छोटे गांव और कहीं लाल, कहीं काली, कहीं पथरीली और कहीं उपजाऊ मिट्टी मिलेगी। उत्तर भारत की जो औद्योगिक व खेती की समस्याएँ हैं उनसे यह प्रान्त शासित न होकर अपनी खिचड़ी अलग पका रहा है। यहां आपको सिंचाई के लिए न विशाल जमुना, गंगा, घाघरा, जैसी नदियां मिलेंगी, न गंग, जमुन, शारदा नहरें और न दैत्याकार हाइड्रोइलेक्ट्रिक-कुएँ। यहां तो सुदूर उत्तरी छोर पर एक मात्र बेतवा नहर को छोड़ यत्र-तत्र चन्देल नरेशों व बुन्देलों के बनवाए और संभलवाए ताल-तलैया व साधारण कुएँ ही आपको दृष्टिगोचर होंगे।

पर्वतों तथा चट्टानों द्वारा इस प्रान्त की नदियों के मार्ग में स्थान-स्थान पर अवरोध हुआ है। बुन्देलखण्ड की जितनी नदियाँ हैं—बेतवा, धसान, केन, सिन्ध व चम्बल—सभी को दुर्गम पहाड़ों में अपना रास्ता काट कर चलना पड़ा है। इसने निस्संदेह उन्हें बड़ा सुन्दर और शानदार बनाया है, पर इससे वे खेती के काम की नहीं रह गई हैं। तभी यहाँ के शासकों—चन्देलों और बुन्देलों—को स्थान-स्थान पर विस्तृत ताल बनवाने पड़े हैं। सौन्दर्य की दृष्टि से ये ताल सारे भारत के गौरव हैं।

यहाँ की भूमि इतनी विचित्र है कि उसके बारे में बड़ा सतर्क होने की आवश्यकता है। अधिकतर भूमि तो पहाड़ों और वनों से घिरी हुई है। जो बाकी है उसकी उपज कम होती है। मौसम इतने धोखे का है कि उसका भरोसा नहीं किया जा सकता। सिंचाई का ठीक प्रबन्ध न होने से मौसम की ही आस देखनी पड़ती है। प्रान्त में यद्यपि सब कुछ हो सकता है, पर बिना विशेष श्रम, उद्योग और सिंचाई के अधिकांश भूमि खेती के काम की नहीं बन सकती।

फलस्वरूप यहाँ के निवासियों को सदा ग़रीब रहना पड़ता है।

प्रकृति ने बुन्देलखण्ड को अपने बहुत से आशीर्वादों का लाभ दिया है। यहां की आबहवा स्वास्थ्यकर है। यहाँ सोना-चांदी से लेकर लोहा, रंग आदि पचीसों खनिज पदार्थ निकलते हैं। यहाँ की वनस्पति में शीशम, साल, सब प्रकार के फल, कत्था, चिरोंजी, आंवला, बेल, बहेड़ा आदि तरह-तरह के उपयोगी पदार्थ हैं। लेकिन उनका पूरा-पूरा उपयोग बिना सामूहिक प्रयत्न किये सम्भव नहीं है।

पर जहाँ प्रकृति इतनी गौरवमयी है कि उससे पुरुष दब-सा गया है। उसे सदा प्रकृति का विरोध सहना पड़ता है। मौसम की अनिश्चितता के फलस्वरूप और वन्य पशुओं के आक्रमणों के रूप में प्रकृति का पूर्ण उपयोग वह वीर और संगठित होकर ही कर सकता था, पर घटनाचक्रों ने उसे नितान्त दीन और दुर्बल बना डाला है।

चंदेल-राज्य से लेकर, जो कि यहाँ का स्वर्ण-काल था, अब तक बुन्देलखण्ड को अपने विकट पड़ोसियों की ललचाई आँखों का मुकाबला करना पड़ा है। सैकड़ों वर्ष तो यहां के निवासियों को दिल्ली, फर्रुखाबाद और मालवा के मुसल्मान शासकों से युद्ध करते बीते हैं। उनके बाद मराठों अंग्रेज़ों और पिंडारियों से युद्ध करते समय कटा है। बीच-बीच में गृहयुद्धों में भी, जो विदेशी पड़ौसियों के इशारे व षड्यन्त्रों के सहारे होते रहे, यहाँ की सारी मानवता तबाह हो चुकी है। बार-बार के युद्धों ने यहाँ के निवासियों के आत्म-विश्वास को नष्ट कर दिया और उनमें भाग्यवादिता व अकर्मण्यता पैदा कर दी। आज से पचीस-पचास वर्ष पहले जब किसान को यह विश्वास ही नहीं था कि उसकी उपज उसके पास रहेगी तो फिर वह क्यों कुछ उद्योग व परिश्रम करता? यही बुन्देलखण्ड की दुखद कहानी है।

आज भी बुन्देलखण्ड शेष भारत की प्रगति से दूर-सा रहा है। सारे प्रान्त में गिनती की रेलवे लाइन व "स्टेशन हैं, अधिकांश भाग रेल-पथ से बहुत दूर हैं। फलस्वरूप यहाँ की वानस्पतिक उपज का ठीक-ठीक उपयोग नहीं हो सकता। जतारा में केले सड़ सकते हैं, पर आवागमन का ठीक सुभीता न होने के कारण वह झांसी के बाज़ार में नहीं बिक सकते, जब कि भुसावल का केला दिल्ली में और बर्दवान का केला लाहौर में जाकर बिक सकता है। इलाहाबाद का अमरूद आप कहीं भी खा सकते हैं, पर कुण्डेश्वर के अमरूद टीकमगढ़ से दूर ले जाना कठिन है। पहाड़ों तथा नदी-नालों के आधिक्य के कारण सड़कों का बनना सुगम नहीं है, वरन् बहुत व्यय-साध्य है। सड़कें गिनती की हैं, वह भी ठीक बनी नहीं हैं। कहीं-कहीं यह प्रान्त आज भी आदिम अवस्था में बना हुआ है और वहाँ आदिम निवासी भी हैं।

यहाँ आदमी की दिन भर की औसत आमदनी आठ-दस पैसा है। इसी से यहाँ के रहन-सहन का अंदाज़ लगाया जा सकता है। ग़रीबी इतनी अधिक है कि चैत के महीने में प्रान्त के बहुत से हिस्सों के लोग घरबार लेकर मालवा प्रान्त में कटाई करने निकल जाते हैं। गाड़ियों में अपनी गृहस्थी लाद-लाद कर महीने-दो-महीने की जीविका के लिये जो कि निश्चित नहीं होती, उनका यह स्वदेश-त्याग बहुत ही करुणोत्पादक होता है, और सो भी तब जब कि उनकी यह भूमि ही उन्हें सब कुछ प्रदान कर सकती है। 'पानी में मीन प्यासी' वाली कहावत यहाँ चरितार्थ होती है।

आज बुन्देलखण्ड में उद्योग-धन्धे नहीं हैं, पर इसके यह माने नहीं कि वहाँ ये कभी थे ही नहीं। किसी समय में यही भाग उत्तर से दक्षिण को होने वाले व्यापार का मार्ग था और उस समय यहाँ धन-धान्य बरसता था। यहाँ लोहा निकलता था (अब भी निकल सकता है) और उसका खूब उपयोग होता था। आल नाम के रंग का व्यवसाय यहाँ बड़ा सम्पन्न था। चंदेरी का रेशम तो अब भी एक गर्व की वस्तु है।

किसी ज़माने में यहां स्थान-स्थान पर कपड़ा बनता था। ऊन तो इतनी अधिक होती है कि इस गये-गुज़रे समय में भी यहां अन्य स्थानों से सस्ते व मज़बूत कम्बल मिल सकते हैं। कालपी और ओरछा राज्य एक समय काग़ज़ के व्यवसाय के लिये प्रसिद्ध ही था। पीतल के बर्तनों की ढलाई यहां अब भी कई जगह अच्छी होती है। पर ये चीज़ें अब इतिहास की वस्तु होतीं जाती हैं। इनके लिये कोई संरक्षण नहीं, कोई प्रोत्साहन नहीं।

आज भी खजुराहो, कालिंजर, देवगढ़, ओरछा, दतिया, अहार, चन्देरी, मदनपुर, चन्द्रपुर और दुधई स्थापत्य तथा शिल्प में बुन्देलखण्ड का सिर ऊँचा कर रहे हैं। पर आज वह कला लुप्त हो गई है। जिन बरुवासागर, नदनवाड़ा, जतारा, वीरसागर, देवसागर, मदनसागर तथा बेला ताल के तालों और बांधों को देख कर लोग दांतों तले उंगली दाब लेते हैं उनके कारीगर आज विलीन हो गये हैं।

इसका कारण क्या है? यही कि आज उनका संरक्षण नहीं है। चन्देल-शासक जैजाकभुक्ति या बुन्देलखण्ड के असली गौरवदाता रहे हैं। यदि उन्होंने यह ताल न बनवाए होते तो यह देश कभी का भूखों मर गया होता। बुन्देलों ने भी उनकी इस परम्परा को कायम रक्खा। वह सारे प्रान्त के शासक थे, सारे प्रान्त की शक्ति उनके पीछे थी और उनकी दृष्टि सब तरफ़ थी। इसीलिये वे निर्माण कार्य में समर्थ हो सके।

आज यह पूछा जा सकता है कि प्रकृति का पूरा लाभ उठाने के लिये बुन्देलखण्ड का मनुष्य क्यों नहीं संगठित होता? प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का उपाय ही यह है। पर आज हमारे लिए वही संभव नहीं है।

आज बुन्देलखण्ड का मनुष्य सदियों से पददलित होने के कारण अपने प्रान्त के वैभव से न तो पूर्णतया परिचित है और न उसमें इतनी संगठन-शक्ति है कि वह मिल कर कोई काम कर सके। यहाँ शिक्षा की बेहद कमी है। दैन्य के मारे सोते-जागते आदमी की समस्या रोटी ही है। न यहाँ इतने शिक्षालय ही हैं कि सब लोग शिक्षा प्राप्त कर सकें। पारस्परिक सहयोग का तो मौका ही नहीं।

इस सब का उत्तरदायित्व यहां की राजनैतिक परिस्थिति पर है। बुन्देलखण्ड में तेतीस स्वतन्त्र रियासतें हैं, जिनमें कई का क्षेत्रफल चाहे पांच वर्गमील और आबादी हज़ार-बारह सौ से अधिक न हो, पर वे ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में कुछ भी करने या न करने के लिये पूर्ण स्वतंत्र हैं। इन तेतीस राज्यों के स्वेच्छाचारी शासन तथा ब्रिटिश नौकरशाही व दो-एक अन्य बड़े राज्यों की नौकरशाही के अनुत्तरदायी प्रबंध में फंस इस भूखण्ड के निवासी अपने को संगठित करने में सर्वथा असमर्थ हैं। एक हज़ार वर्ष से बराबर एक न एक आक्रमणों तथा उनके फलस्वरूप स्थापित शासनों का नतीजा यह हुआ है कि यहां का व्यक्ति केवल नैतिक बल तथा पुरुषार्थ और विद्याबुद्धि में ही नहीं घट गया है, वरन् उसमें इतना दैन्य आगया है कि न तो वह अपने से परे किसी प्रश्न पर सोचने की कल्पना करता है और न ऐसा करने का उसे साहस ही होता है। यह बात मैं छिद्रान्वेषिणी या आक्षेप की दृष्टि से नहीं कह रहा। मैं स्वयं बुन्देलखण्डी हूँ।

इस संबंध में यहां हम इस प्रांत की अन्य जनपदों से तुलना कर सकते हैं। उदाहरण के लिये व्रज या अन्तर्वेद ले लीजिए। व्रज की जनता सदा एक वृहद् राज्य या सांस्कृतिक केन्द्र के निकट रही है। वहां का छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी इतना समर्थ हो सका है कि ज़रा-सा पुरुषार्थ या अनुकूल परिस्थिति पाकर अपने गुणों को चमका कर उनकी ओर सारे देश का ध्यान आकर्षित कर सके। वहां के विशिष्ट व्यक्ति, चाहे वे राजनीति में हों या कला तथा साहित्य में अथवा भक्ति-वैराग्य में, सदा अपने को जनता का आकर्षण-बिन्दु पाते रहे हैं। उनके आस-पास

भी एक ऊँचा-सा वातावरण रहा है, जिसके संसर्ग में उनके निकट की जनता रही है। वे जनपद संस्कृति, कला, धर्म, राजनीति, वाणिज्य तथा उद्योग के केन्द्र रहे हैं। प्रकृति की अनुकूलता ने उन्हें साधन-सम्पन्न और आत्मनिर्भर तथा शासन की सुव्यवस्था ने उन्हें पुरुषार्थ करने, नये उद्योग करने व वाणिज्य-व्यवसाय द्वारा अपने को बढ़ाने के लिये सुभीते दिये हैं। पर यहां की स्थिति उलटी है। प्रकृति तो इतनी धोखे की है कि जब तक किसान अपनी फसल काट कर रख नहीं लेता, उसे क़तई विश्वास नहीं होता कि वह कुछ पैदा कर पायेगा; और इसके बाद जब तक वह उस धन का पूर्णतया उपयोग नहीं कर लेता, उसे यह भरोसा नहीं होता कि इस धन की स्थानीय शासकों, उनके शासन-यंत्रों या कुव्यवस्था से उत्पन्न अन्य आपत्तियों से रक्षा कर सकता है। यहां के एक राज्य में एक शासक के बाद दूसरे शासक का आना ही जैसे सारे राज्य के प्रत्येक व्यक्ति का जीवन पलट देता है। इन परिस्थितियों में फँसा व्यक्ति स्वाभाविक रीति से अकर्मण्य हो जाता है और भाग्य के आसरे बैठा रहता है। उसे किसी ओर बढ़ने की प्रेरणा ही नहीं होती। प्रकृति से लड़ने के लिए तैयार होने की तो बात ही दूसरी है। फलस्वरूप यहां ग़रीबी है, जो यहां के सब दुखों की जननी बन जाती है।

यहां की पशु-समस्या ले लीजिये, जो व्यक्ति हरियाना, व्रज या अंतर्वेद में रह आया हो उसके लिये यह कल्पना करना भी कि यहां एक भैंस का औसत दूध सेर भर रोज़ होगा, कठिन है। पर वास्तविक स्थिति यह है कि भैंस सेर-सेर भर और गायें आध-आध सेर दूध देती हैं। गाय-भैंस का दूध यहाँ के पशुबल पर प्रकाश डालता है। इससे बैलों की शक्ति-हीनता का अन्दाज़ लगाया जा सकता है। ऐसे शक्ति-हीन बैल कैसे अच्छी खेती करने में सहायता दे सकते हैं? इससे यहां की ग़रीबी और बढ़ती है। पर दुख की बात तो यह है कि इस पशु-समस्या पर कोई ध्यान ही नहीं देता। किसान के पास खाने के लिये जब गेहूँ, चना के बजाय कोदों और महुआ है तो वह जानवरों को भुस, करब, रातब-दाना और खली-बिनौले कहां से खिला सकता है? न अकेले किसान में सामर्थ्य है कि वह हरियाने से पशु लाकर नस्ल सुधारे। यह काम तो शासकों का है।

नस्ल का सवाल सारे बुन्देलखण्ड का है। जहां बाप ब्रिटिश भारत में हो और बेटा देशी राज्य में, जहां एक गांव ब्रिटिश भारत में हो और उसके आस-पास देशी रियासतें हों, जहां किसी सरकारी ज़िले के अन्दर कोई स्वतन्त्र समूची रियासत हो, वहां एक भाग की समस्या का हल बिना दूसरे भाग की समस्या को सुलझाये नहीं हो सकता। यदि ब्रिटिश ज़िले में नस्ल सुधारी जावे और देशी भागों के सांड़ आ-आ कर फिर उस नस्ल को खराब करें तो समस्या हल हो नहीं सकती। इसलिये ऐसे ही उपाय कारगर हो सकते हैं जो दोनों भागों पर समान रूप से लागू हों। वैसे इस भूमि की आब-हवा ऐसी नहीं कि यहां अच्छे बैल हो ही न सकें। यहां के केनकांठे के बैल दूर-दूर तक मशहूर हैं, पर सुना है कि उनकी नस्ल भी गिरती जा रही है।

ऐसी पचीसों समस्याएँ हैं, जिनके सम्बन्ध में पारस्परिक सहयोग व एक-सी नीति आवश्यक है। अगर ओरछा नगर में कोई महामारी फैले तो झांसी का नगर, चाहे वह निहायत साफ़ और सुथरा ही क्यों न हो, उस रोग से स्वतंत्र नहीं रह सकता। यदि दतिया में जंगली जानवरों पर कोई नियंत्रण न हो तो उसके सीमावर्ती जालौन ज़िले की उपजाऊ खेती खड़ी नहीं रह सकती। यदि समथर के सीमावर्ती इलाक़ों में डकैतों की रोक नहीं होती तो उसके निकटवर्ती ब्रिटिश इलाक़े का वाणिज्य-व्यवसाय कभी पनप नहीं सकता। यदि ब्रिटिश ज़िलों के डिस्ट्रिक्टबोर्ड सड़क बनवाने में लापरवाह हैं तो फिर यदि किसी राज्य में सड़कें

बनवाने की सुव्यवस्था भी है, पर उसकी दो सड़कों को जोड़ने के लिये ब्रिटिश ज़िले की चार मील ज़मीन भी लाँघनी पड़ती है तो वह सड़कें बेकार हो जायँगी। यदि देशी भाग में अशिक्षा और अंध-विश्वास का बोलबाला है तो पड़ौसी ब्रिटिश भाग में समाज-सुधार की लहर भी पग-पग पर टक्कर खायेगी, क्योंकि तमाम कृत्रिम सीमाओं के होते हुए भी बुन्देलखण्डी समाज एक है, उसका रहन-सहन व व्यवहार एक है। बिना सारे समाज का समर्थन पाये कोई समाज-सुधार सफल नहीं हो सकेगा। इन सब कार्यों के लिए आवश्यक हो जाता है कि दोनों, देशी व ब्रिटिश, भागों के लिए एक-सा उपाय सोचा जाय, एक-सी नीति और एक सा कार्यक्रम काम में लाया जाय। पर विभिन्न शासन और सीमाओं के रहते हुए यह संभव नहीं।

इन सारी समस्याओं का हल केवल यही है कि यहां का व्यक्ति जागरुक होकर उठे और अपने दृष्टिकोण को सारे प्रान्त का दृष्टिकोण बनाये। इस प्रान्त का प्राचीन गौरव उसको इस प्रकार उठने और अपने दृष्टिकोण को विशाल बनाने में सहायता देगा। वह दशार्ण, चेदि, जैजाकभुक्ति, जुझौती या बुन्देलखण्ड के शब्दों में अपनी वैयक्तिक-सी लगने वाली समस्याओं को अनुभव कर सकता है और उनका उपाय कर सकता है। यहां की एक बोली, जोकि अपनी विशिष्टता रखती है, एक-सी प्रकृति, एक-सा रहन-सहन धर्म, नीति, व्यवहार, एक-से जंगल नदियां आदि उसके इस एकत्व-भाव को दृढ़ करेंगे। जो व्यक्ति बेतवा या जामनेर को अपनी नदी समझता है, वह उनके पोषित भोपाल, झांसी, ओरछा या हमीरपुर ज़िलों के निवासियों को अपने से अलग नहीं समझ सकता। जामनेर नदी आधी ओरछा राज्य में बहती है, आधी झांसी ज़िले में। मोहनगढ़ के पास दो पहाड़ियों के बीच जाकर यह नदी इस प्रकार निकलती है कि यदि उसका बांध बांध दिया जाय तो पचासों वर्ग मील भूमि उससे सिंच सकती है।

पर आज ओरछा राज्य इस योजना में लाखों खर्च कर जनता को करोड़ों का लाभ देना न संभव पाता है और न उचित ही समझता है, क्योंकि सिंचित भूमि का अधिकांश भाग ब्रिटिश इलाके में होगा। एक तो इन छोटे-छोटे राज्यों के पास इतने साधन ही नहीं कि इन कामों में इतना रुपया लगा सकें, उनके निजी खर्च ही इतने बढ़े हुए हैं। दूसरे अलग प्रबन्ध होने के कारण इस व्यय की निकासी भी नहीं हो सकती। ओरछा राज्य झांसी ज़िले के निवासियों से एक पैसा भी वसूल नहीं कर सकता। फिर शासकगण कैसे जनहित करने की कल्पना करें।

पर जनता के लिये बुन्देलखण्ड अविभाज्य है और उसे अपने लाभ के इस अवसर को नहीं छोड़ना चाहिये। उसके सामने सीमाओं का कोई बंधन नहीं हो सकता और वह शीघ्र ही इस बात को समझेगी कि इस प्रान्त की असली समस्या क्या है और वह कैसे हल होगी? इसके लिये आवश्यक है कि उसे शासनाधिकार मिले। तब यहां का व्यक्ति अपने को एक पोखरे का अधिकार-हीन व्यक्ति न समझ विशाल प्रान्तीय सागर के अधिकारी के रूप में पावेगा। उसके अन्दर सहसा एक अदम्य उत्साह का जन्म होगा जो सारी दुर्बलता, दैन्य व क्षुद्रत्व की भावना को दूर बहा देगा। परिणाम-स्वरूप व्यक्ति में प्रकृति पर विजय पाने का उत्साह तो होगा ही साथ ही उसे संगठन के लाभ भी होंगे। संगठन-सूत्र में बंधे अधिकारारूढ़ बुन्देलखण्डी व्यक्तियों द्वारा विजित यहाँ की प्रकृति भी संसार को अपनी सर्वोत्तम देन प्रदान करेगी। संसार की दौड़ में आगे बढ़ने वाला भारत आज अपनी प्रगति के मार्ग में कोई रोड़े बर्दाश्त नहीं कर सकता। यदि बुन्देलखण्ड का अर्ध-विकसित, अर्धशिक्षित व दीन-हीन जन-समुदाय उसके मार्ग में बाधा डालता है तो उसे अपने साथ तक उठाने का बोझ सारे भारत पर आ जाता है। यदि इस भाग में मध्य-कालीन युगों की-सी स्थिति बनी रहती है तो वह स्वतंत्र भारत के लिये अगौ-

रत्न की बात ही नहीं रहेगी, वरन् उसकी प्रगति में वह चीज़ विघातक भी होगी। साथ ही यहां की भूमि जो उत्तम खनिज पदार्थ, वनस्पति, फल यथा अन्य वन-धन प्रदान कर सकती है, उससे भी देश वंचित रह जाता है।

इसलिये यह सारे देश का प्रश्न हो जाता कि यह प्रान्त उठे और सामूहिक संगठन द्वारा अपने को सारे देश का समकक्ष बनावे। जिस प्रकार एक सुदृढ़ सेना का एक कमज़ोर दस्ता सारी सेना के लिये विघातक हो सकता है, वैसे ही भारत का कोई भी हिस्सा भारतीय प्रगति के आन्दोलन में बाधक सिद्ध न हो, यह सारे राष्ट्र-कर्मी विचारकों का प्रश्न है। इस ओर उन्हें ध्यान देना ही पड़ेगा। पर बिना इस प्रान्त की जनता के छिन्न-भिन्न टुकड़ों को एक किये व यहां की जनता को शासन-अधिकार दिये यह प्रश्न हल नहीं होने का। बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण की यही मूल समस्या है।

जगम्मनपुर
(बुन्देलखण्ड)

बुन्देलखण्ड में नव वसन्त

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

व्यापक कार्य्यक्रम

अपने प्रांत के इतिहास में हमें इस वसन्त की स्मृति चिरस्थायी बना देनी है।

इसी वसन्त ऋतु में हमें प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन को विधिवत् आरम्भ करना है। प्रदेश भर में प्रान्त-प्रेम की भावना जाग्रत करनी है।

अभी तो हम लोगों में से अधिकांश अपने प्रान्त को भली-भांति जानते भी नहीं। यहाँ के नदी-नद, सरोवर, वन-उपवन, पशु-पक्षी और वृक्ष-जगत् से कितनों को प्रेम है? हम में से ९०-९५ फीसदी में सौन्दर्य्य-भावना का नामोनिशान नहीं। उदाहरण लीजिये। यहां कुण्डेश्वर के निकट के एक अत्युत्तम प्राकृतिक दृश्य उषा-कुञ्ज को जामनेर नदी की बाढ़ ने बिल्कुल बर्बाद कर दिया और उषा-विहार नामक द्वितीय दृश्य को दो तिहाई नष्ट कर दिया, पर सौन्दर्य्य-विनाश की इस दुर्घटना पर किसी भलेमानस ने चार आंसू भी न बहाये! उषा-विहार को देखकर श्रीयुत देवेन्द्र सत्यार्थीजी को काश्मीर के सौन्दर्य्य की याद आगई थी, पर टीकमगढ़ के किसी भी सौन्दर्य्य-प्रेमी (?) का हृदय इस दुर्घटना से द्रवित नहीं हुआ।

ओरछा में वेत्रवती-तट के वृक्षों के विनाश से सौन्दर्य की जो हानि हुई है उस पर एक सज्जन ने—बन्धुवर रामचरणलाल 'मित्र' हयारण ने—दो आंसू ज़रूर बहाये थे।

यदि बुन्देलखण्ड में प्रान्त-प्रेम की भावना होती तो क्या हम अपने इन अमूल्य प्राकृतिक खजानों के विनाश को इसी प्रकार टुकर-टुकर देखते रहते।

यदि बुन्देलखण्ड भर में प्रान्त-भावना जाग्रत होती तो किसी भी सुन्दर प्राकृतिक स्थल के विनाश का दुःखद समाचार सम्पूर्ण जनपद में बिजली की तरह फैल जाता।

आर्थिक योजनाएँ

हम इस बात को मानते हैं कि भूखे आदमियों से सौन्दर्य भावना की आशा करना महज़ हिमाकत है। 'दारिद्रय दोषो गुण-राशि नाशी' दरिद्रता तमाम गुणों का नाश कर देती है।

इस समय हमें ऐसे उपाय खोज निकालने हैं, जिनसे इस प्रान्त की जनता की आर्थिक दशा

सुधरे। यहां के आर्थिक साधनों की जांच करके यहां नवीन उद्योग-धंधों की स्थापना करनी है।

जब तक हम साधारण जनता को यह विश्वास नहीं दिला सकेंगे कि प्रान्त-निर्माण हो जाने पर ही हम अपने आर्थिक साधनों का पूरा-पूरा उपयोग कर सकेंगे तब तक वह हमारा साथ नहीं दे सकती। उदाहरण के लिये मोहनगढ़ में यदि जामनेर नदी का बाँध बाँध दिया जावे तो हज़ारों एकड़ भूमि सिंच सकती है, पर इस बाँध के बँधवाने में लाखों ही रुपये खर्च हो जावेंगे, जो किसी छोटे-मोटे राज्य की शक्ति के सर्वथा परे है।

कोरमकोर भावनापूर्ण लेखों, कविताओं अथवा भाषणों के भरोसे प्रान्त-निर्माण नहीं किया जा सकता।

प्रान्तीय सर्वे (जाँच)

प्रान्त भर के सर्वे (जांच) की ज़रूरत है। आखिर हमें मालूम तो होना चाहिये कि हमारे पास क्या-क्या साधन हैं। किसी पत्र के कार्यालय में बैठकर कुर्सी, मेज़, क़लम, दवात तथा पत्र-व्यवहार के द्वारा यह काम हर्गिज़ नहीं किया जा सकता। इसके लिये भिन्न-भिन्न विषयों के विशेषज्ञों की यात्राओं की आवश्यकता है और यह कार्य प्रान्त-प्रेमी साधनसम्पन्न सज्जनों की सहायता के बिना नहीं हो सकता।

श्रम-विभाजन की नीति

हमें श्रम-विभाजन की नीति से काम करना चाहिये। कार्यकर्ताओं के छोटे-छोटे समूह भिन्न-भिन्न कार्य आपस में बांट लें और उनकी पूर्ति में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दें। "एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जायँ" वाला मामला है।

जिस प्रकार फुटबाल की टीम के सभी खिलाड़ी एक दूसरे की सहायता करते हुए आगे बढ़ते हैं, उसी प्रकार हमें पारस्परिक सद्भावना तथा सहयोग की नीति से इस आन्दोलन को आगे बढ़ाना है।

जो भी महानुभाव प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन में अगुआ हों, उन्हें अपने घर को तो पहले आदर्श बना देना चाहिये, और यह कार्य साधारण जनता की सहायता के बिना कदापि नहीं हो सकता। पहले ऐसे कार्य्य तो कीजिये जिनसे जनता में उत्साह की लहर फैल जाय, तत्पश्चात् जनता से सहयोग लिया जा सकता है।

समाज-सेवक विद्यालय

मान लीलिये आज हम अपने यहां समाज-सेवक विद्यालय की स्थापना करते हैं और यह कोई अत्यन्त व्यय-साध्य कार्य्य नहीं। सम्भवतः हज़ार-डेढ़-हज़ार रुपये महीने से यह विद्यालय चलाया जा सकता है। यदि इस विद्यालय से बीस समाज-सेवक हम प्रतिवर्ष तैयार कर सकें तो पांच वर्ष में १०० कार्य्यकर्ता तैयार हो जायँगे। ये सौ कार्य्यकर्ता बुन्देलखण्ड भर में फैलकर जनता की वास्तविक सेवा कर सकेंगे और ये ही हमारे सच्चे प्रचारक होंगे। सेवा के एक क्षुद्र से क्षुद्र कार्य्य में जो प्रचारशक्ति है, वह बड़े-बड़े पोथों और लम्बे-लम्बे भाषणों में हर्गिज नहीं हो सकती। बुन्देलखण्ड के नवयुवकों को ऐसा मौका तो दीजिये कि हमारे यहां आकर समाज-सेवा की शिक्षा सुचारु रूप से पा सकें, फिर आपको बने-बनाये प्रचारक मिल जावेंगे।

राजनैतिक कार्य्यकर्ताओं से

राजनैतिक कार्य्यकर्ताओं से हमें यही निवेदन करना है कि वे साहित्यिक अथवा सांस्कृतिक कार्य्य को उचित महत्त्व दें। यदि नींव की ईंटें ही कमज़ोर रहीं तो भवन का चिरस्थायी निर्माण कैसे हो सकेगा? अपने प्रान्त को अभी तो लोग भलीभांति जानते भी नहीं हैं, और इसी के लिये बुन्देलखण्डी विश्वकोष की आयोजना की गई है। यह कार्य्य राजनैतिक आन्दोलन से किसी भी अंश में कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

प्रान्त-निर्माण के कार्य्य में स्वप्नदर्शी विचारकों, स्फूर्तिप्रद कवियों और सजीव लेखकों की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी राजनैतिक कार्य्यकर्ताओं, आर्थिक विशेषज्ञों अथवा दूर-दर्शी पूँजीपतियों की।

यदि अभी हमने सामंजस्य की नीति से काम नहीं लिया तो बहुत सम्भव है कि आगे चल कर नवीन प्रान्त के नाम पर अनुभवहीन शासक, अर्थहीन जनपद और कल्पनाहीन कौंसिलर ही हमारे पल्ले पड़ें।

साहित्यसेवियों से

साहित्यसेवियों को अपनी रुचि का काम ही अपने हाथ में लेना चाहिये। साधारण जनता को उपयुक्त मानसिक भोजन देना कोई साधारण कार्य्य नहीं। अभी तो हमारे प्रान्त के बड़े-बड़े नगरों में भी हिन्दी-पुस्तकों की कोई अच्छी दूकान नहीं। झांसी, जालौन, बांदा, हमीरपुर में शायद ही कोई अच्छा पुस्तक-विक्रेता हो। जहां की साधारण जनता मेलों के अवसर पर 'किस्सा तोता-मैना (आठ भाग)' और 'छबीली भटियारी', 'एक रात में चालीस खून' तथा 'कटे मूँड की दो-दो बातें' जैसे सद्ग्रन्थों को खरीद कर उनका स्वाध्याय कर रही हो, वहां साहित्य तथा संस्कृति की चर्चा करना भैंस के आगे बीन बजाना है।

अपने प्रान्त की वास्तविक साहित्यिक स्थिति की जांच करके तनुसार हमें अपना कार्यक्रम बना लेना चाहिये।

बहुत दूर की न सोचिये

बहुत दूर की सोचने में हमें अपने वक्त की बर्बादी ही करनी होगी। आज जो कार्य हमारे सामने है उसे हम आज पूरा कर दें तो उसी से हमारा और अखिल बुन्देलखण्ड का कल्याण होगा। मान लीजिये यदि हम अगले वसन्त तक अपने प्रान्त में अच्छी पुस्तकों की दस-बारह दुकानें भी खुलवा सकें तो यह कोई छोटी बात न होगी।

भावी युग

विचारकों का यह मत है कि भावी युग में दो बातें मुख्य होंगी—एक तो अन्तर्राष्ट्रीय भावना और दूसरी स्थानीय देश-प्रेम। यद्यपि हमारा लक्ष्य संसार का कल्याण ही होगा, तथापि अपने सीमित साधनों का खयाल करके हम अपने-अपने जनपदों की सेवा में ही अपनी मुक्ति समझेंगे। एक पंत, एक पालीवाल, या एक सम्पूर्णानन्द के द्वारा पांच करोड़ जनता के उद्धार की आशा दुस्साहस ही मानी जावेगी। यद्यपि थोड़े से व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय अथवा अखिल-भारतीय नेता होंगे, किन्तु शेष सहस्रों-लक्षों कार्यकर्ताओं को अपने-अपने परिमित क्षेत्र में कार्य करते हुए संतोष करना होगा।

आज बुन्देलखण्डी कार्यकर्ताओं को यह बतलाने की ज़रूरत है कि उनके प्रांत का उद्धार करने के लिये कहीं बाहर से आदमी नहीं आने के। माता वेत्रवती का गुणगान बेतवा का कोई सपूत ही करेगा और केन नदी का जीवनचरित इसी प्रान्त का कोई लेखक लिखेगा। हमें अपने पैरों खड़े होना होगा—

> जहाँ में 'हाली' किसी पै अपने-
> सिवा भरोसा न कीजियेगा,
> ये भेद है अपनी ज़िन्दगी का
> किसी से चर्चा न कीजियेगा।

आगामी वसन्त ऋतु

सन् १९४३ की वसंत ऋतु में हमें अपने प्रांत के सुन्दर से सुन्दर प्राकृतिक स्थलों की यात्रा करनी चाहिये और वहाँ साहित्य-चर्चा अथवा प्रांत-निर्माण-चर्चा होनी चाहिये। महान् कार्यों का समारम्भ महान् पृष्ठभूमि में ही शोभा देगा। वेत्रवती के तट पर महाराज वीरसिंह (प्रथम) की समाधि को साक्षी करते हुए और जहाँगीरमहल की सर्वोच्च छत पर उन्मुक्त आकाश के नीचे बुन्देलखण्ड के नवीन प्रांत-निर्माण का विषय छेड़ा जा सकता है। क्षुद्र राजनैतिक षड्यंत्र भले ही बन्द कोठरियों और संकीर्ण कमरों में पनप सकें, पर बुन्देलखण्ड की सत्तर लाख जनता के भाग्य पर विचार करने के लिये तो ओरछा जैसा महत्त्वपूर्ण स्थल ही चाहिये।

प्रांत-निर्माण की चर्चा सर्वथा स्वाधीनता-पूर्वक होनी चाहिये। **जो भी महानुभाव प्रांत-निर्माण के विरोधी हैं, उन्हें डटकर इस आंदोलन का विरोध करना ही चाहिये। विचारों की स्वाधीनता सब से अधिक**

महत्त्वपूर्ण वस्तु है, और वह युग हमारे लिये सचमुच घोर अंधकार का होगा, जब किसी एक व्यक्ति अथवा समूह के आर्डर के अनुसार हमें अपनी विचार-धारा बनानी होगी।

वसंत का संदेश वैचित्र्य का सन्देश है, ज़ोर-ज़बरदस्ती का नहीं।

आइये अपनी-अपनी सर्वोत्तम भेंट हम अपने प्रांत की सेवा में अर्पित करें।

बुन्देलखण्ड-प्रान्त का निर्माण

श्री वासुदेवसिंह जादौन

युद्ध समाज के शरीर के रोगों का एक महान विस्फोट-मात्र है। उसकी विकरालता तथा विस्तार के परिमाण से रोगों की गहराई का भी पता लग जाता है। महायुद्ध की लपटें आज सारे संसार में फैल चुकी हैं। कोई भी देश इनसे अछूता नहीं। इससे यह भलीभाँति सिद्ध है कि मानव-समाज का संगठन बिल्कुल ग़लत उसूलों पर हुआ है और उसमें आमूल परिवर्त्तन की आवश्यकता है। आज अखिल मानव-जाति को जीवन की सर्वोच्च चीज़ों—बौद्धिक प्रगति तथा संस्कृति—की रक्षा के लिए प्रथम पंक्ति में लड़ने वाले सिपाहियों की ज़रूरत तो है ही; पर साथ ही उसको गोली, बारूद, भोजन, वस्त्र आदि के प्रबन्ध के लिए मोर्चों से दूर चुपचाप काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं की भी आवश्यकता है। आज जितनी अधिक व्यापकता में विनाश हो रहा है, उतनी ही व्यापकता से युद्ध के बाद निर्माण भी करना होगा। उस समय शान्ति को स्थायी बनाने और मानव-समाज के पुनर्निर्माण के लिए युद्ध से भी अधिक सुसंगठित प्रयास करने होंगे। इस उद्देश्य के लिए ज़रूरत पड़ेगी उन स्वप्न-द्रष्टाओं तथा विचारकों की, जो घोरतम संकट के दिनों में भी भविष्य को भूल नहीं जाते।

आज भारतवर्ष की सीमाओं पर तीन ओर से युद्ध की घटाएँ घिरती आ रही हैं। प्रत्येक नागरिक से एक प्रयत्नशील सिपाही सिद्ध होने की आशा की जा रही है। दूसरी ओर आज़ादी हासिल करने के लिए भी उग्र रूप में कशमकश जारी है। यह कहा जाता है कि आज देश दो दलों में बँट गया है। आम तौर पर यह ख़याल किया जाता है कि इन दो दलों के सिवा और किसी भी समुदाय का अस्तित्व नहीं, और यदि है, तो उसका कोई भी महत्त्व नहीं। किन्तु जिस प्रकार युद्ध के बाद की समस्याएँ युद्ध से भी अधिक महत्त्वपूर्ण और भयानक होंगी तथा उनके सही या ग़लत हल पर ही मानव-जाति की प्रगति और शान्ति निर्भर होगी; उसी प्रकार आज़ादी के बाद भारत की भी अपनी अनोखी समस्याएँ होंगी और उनका सफलतापूर्वक तथा दृढ़ता से सामना करने के ऊपर ही हमारी स्वतन्त्रता, शान्ति और उन्नति निर्भर होगी। इसलिए आज के भयानक संकट-काल में भी यदि कोई विचारक भविष्य की समस्याओं की रूप-रेखा बनाने और उनका हल निकालने में प्रयत्नशील हो, तो उसके काम को अनावश्यक अथवा गौण नहीं समझा जा सकता; क्योंकि उसके प्रयत्नों की सफलता पर ही यह निर्भर है कि भविष्य में युद्ध की सम्भावनाएँ मिट जायँ और हमारी आज़ादी के अपहरण का भी ख़तरा न रहे।

आज यदि देश का कोई भाग आज़ादी की जद्दोजहद में हिस्सा न ले, तब भी आज़ादी प्राप्त की जा सकती है; पर निर्माण के समय किसी भी भूखण्ड की अकर्मण्यता का आशय होगा सभी प्रयासों की पीठ में छुरा भोंकने की नीति

का अवलम्बन। अथवा यों कहिए कि उन्नति को पीछे घसीट कर समाज के शरीर को नितान्त अपंगु बना देना। ऐसी दशा में आज देश की जो स्थिति है, उस पर एक बार दृष्टिपात कर-लेना आवश्यक है। यदि देश के राजनैतिक संगठन पर दृष्टि डाली जाय, तो यही कहना होगा कि वह एकदम अस्वाभाविक, कृत्रिम, निरर्थक, बेढंगा और अस्थायी है। ब्रिटिश सरकार ने अंगरेज़ी भारत की सीमाएँ निश्चित करने में किसी वैज्ञानिक पद्धति-विशेषकी शरण नहीं ली। कभी किसी देशी सामन्त को जीतकर, कभी दूसरे सामन्त को पदच्युत कर, कभी तीसरे सामन्त से इनाम प्राप्तकर, या उसके दूसरे हक़दारोंसे समझौता करके प्राप्त किये गये भूभागों द्वारा अंग्रेज़ी भारत का निर्माण हुआ है। चूंकि यह निर्माण-पद्धति पूर्णतया अनियमित और असंगत थी, इसलिए प्रान्तों का संगठन बेसिर-पैर का होता गया। आज जो विषमता हमें प्रान्तों में मिलती है, उसके मूल में यही बात है। देशी भारत में तो और भी व्यापक धाँधली मिलती है। देशी भारत का निर्माण परम्परागत प्राप्त भूमि तथा सनदों और इनामों से प्राप्त भूखण्डों द्वारा हुआ है। आज तक देश विदेशियों द्वारा शासित है। इनके हटते ही सम्पूर्ण भारत की राजनैतिक सीमाओं में भी परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है।

आज समस्त देश में कोई भी एक आर्थिक या राजनैतिक नीति प्रचलित नहीं है। सामूहिक प्रयत्न से आर्थिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास अब तक नहीं हुआ। इसका नतीजा यह हुआ है कि जनता ग़रीबी के निम्नतम धरातल पर पहुँच गई है। आज भारत की समस्याएँ ग़रीबी, निरक्षरता, मिथ्या विश्वास, सामाजिक रूढ़ियाँ, जात-पाँत, छूआछूत, शिक्षितों और अशिक्षितों की बेकारी आदि तो हैं ही; पर इन सबको सुलझाने के लिए सबसे अधिक आवश्यक है देश को स्वाभाविक सीमाओं में बाँट कर उसका संगठन। बिना इसके हम अन्य किसी भी समस्या को सफलतापूर्वक हल करने के लिए सामूहिक प्रयास नहीं कर सकते और न उसके उपयुक्त वातावरण ही बना सकते हैं। जिस प्रकार किसी मनुष्य से पूरा-पूरा काम लेने के लिए उसके प्रत्येक अंग का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है, उसी प्रकार किसी भी जाति का निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील होने से पहले स्वाभाविक और स्वस्थ्य इकाइयों में संगठित होना ज़रूरी है।

प्रान्त-निर्माण की वैज्ञानिक भित्तियाँ

छोटे जनपदों और बड़े जनपदों तथा सम्पूर्ण संघात्मक राष्ट्र के बीच कुछ समान स्वार्थ हैं, कुछ असमान। इनके अतिरिक्त कुछ विरोधी स्वार्थ भी हो सकते हैं। बंगाल, सीमा-प्रान्त, मद्रास, बम्बई, मध्य-प्रान्त आदि सभी भूखण्डों के निवासियों का यह समान स्वार्थ है कि संघात्मक राष्ट्र की वैदेशिक नीति ऐसी हो कि पड़ौसी राष्ट्रों तथा संसार की अन्य शक्तियों के सामने उसके हितों को कोई क्षति न पहुँचे। सभी का यह समान स्वार्थ है कि उनके अखिल राष्ट्र पर बाहर से कोई हमला न कर पाए, और यदि ऐसा हो, तो संघात्मक सरकार डटकर उसका मुक़ाबला करे। उनका यह समान स्वार्थ है कि माल के आदान-प्रदान में संसार के किसी भी कोने में उनके साथ अन्याययुक्त बर्त्ताव न हो। उनका यह भी समान हित है कि आने-जाने के रास्ते, डाक तथा तार आदि का प्रबन्ध ठीक प्रकार से हो। साथ ही आन्तरिक नीति और आन्तरिक व्यापार में परस्पर-विरोधी प्रणालियाँ प्रचलित न होने पाएँ; क्योंकि ऐसा होने से एक जनपद के हितों के विघात द्वारा दूसरे का लाभ हो सकता है। न्याय का भी एक ऐसा मसला है, जिसमें सभी के स्वार्थ निहित हैं। इसके साथ ही आर्थिक प्रणाली की भी इतनी ही महत्त्वपूर्ण समस्या है। आर्थिक संगठन ऐसा होना चाहिए, जिसमें मानव-समाज का शोषण होने की सम्भावना न रहे। इसी प्रकार राजनैतिक संगठन भी एक ऐसा विषय है, जिसमें सभी के समान

स्वार्थ हैं। ये वे स्वार्थ हैं, जो सभी जनपदों में समान रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए होंगे। इनके लिए सभी जनपदों को सामूहिक तौर पर प्रयत्न करने होंगे। संघात्मक सरकार इन सबके लिए प्रयत्नशील होगी।

ऊपर बताए हुए समान विषयों के सिवा कुछ ऐसी समस्याएँ भी हैं, जिनमें समानता का पूर्ण अभाव है और जिनके बारे में प्रत्येक जनपद को अपनी इकाई की शक्ल में विचार करने तथा उन्हें सुलझाने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इन समस्याओं का सम्बन्ध है उनकी भाषा तथा साहित्य से, उनकी निजी ऐतिहासिक निधियों से, उनकी सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं से और उनके जातीय पर्व-त्यौहारों तथा रीति-रिवाजों से। इन सबको व्यक्तिगत चीज़ मानना होगा तथा उनको अपने तरीक़ों से उपयोग करने का सबको हक़ देना होगा। इन चीज़ों को कोई किसी पर लाद नहीं सकता। हमारी संघात्मक राष्ट्रीय संस्था समान स्वार्थों का प्रतीक होगी, न कि किसी बड़े जनपद के किसी छोटे जनपद पर अथवा किन्हीं जनपदों के अपने पड़ौसी जनपदों पर जमाई जाने वाली धौंस का। केवल संख्या की अधिकता या राजनैतिक अथवा आर्थिक प्रणाली की एकता के बल पर जनपदों पर भाषा या संस्कृति को लादने का प्रयत्न कामयाब न होगा। यहाँ पर दो-एक उदाहरण दे देना अप्रासंगिक न होगा। राजनैतिक संगठन की एकता के नाम पर सम्पूर्ण भारत को एक ही शासनसूत्र में बाँधने के प्रयत्न उत्तर-भारत में कई बार हो चुके हैं, पर वे बार-बार असफल हुए। एक बार आस्ट्रिया-हंगरी में भी इसी प्रकार प्रयत्न किया गया था; पर वह भी कामयाब नहीं हो सका। वहाँ पर भी सर्बियन, क्रोआटियन और रूमानियन जनता को खानगी अधिकार देने से इन्कार कर दिया गया था तथा इसी कारण सारे प्रयत्नों पर पानी फिर गया था। यही बात १६०८ में क्रान्ति के समय तुर्कों में भी हुई थी। इस प्रकार जब तक संघात्मक सरकार समान स्वार्थों की समस्याओं को हल करने में प्रयत्नशील रहती है, सभी शक्तियों का सहयोग मिलता जाता है; किन्तु ज्योंही वह असमान स्वार्थों पर हाथ डाल कर उनको एक इकाई बनाने की ओर क़दम बढ़ाती है, अथवा यों कहें कि जब वह फ़ौजीकरण—रेजीमेण्टेशन—के नशे में भाषा और संस्कृति-जैसी व्यक्तिगत चीज़ों पर हमला करती है, तो चारों ओर से उसका विरोध शुरू हो जाता है और वहीं उसकी गाड़ी चकनाचूर हो जाती है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हमारे प्रान्तों का निर्माण भाषा, संस्कृति, ऐतिहासिक परम्परा, आर्थिक प्रणाली और प्राकृतिक साधनों की भित्तियों पर ही होना चाहिए। यहाँ भाषा तथा संस्कृति मुख्य आधार होते हुए भी यह मुमकिन है कि एक ही भाषा-भाषी भूखण्ड के लोगों के कुछ ऐसे स्वार्थ हों, जिनकी दृष्टि से उनकी अलग इकाई हो और उनमें उसके प्रति जागरूकता हो, जैसा कि कुर्दिस्तान तथा ईरान के जनपदों के बीच है। दोनों ही एक ही शिया-धर्मावलम्बी हैं, दोनों की भाषा भी फ़ारसी ही है, फिर भी कुर्दों के कुछ अपने निजी स्वार्थ हैं और वे अपनी स्वतन्त्र इकाई के प्रति जागरूक ही नहीं, वरन् संघर्ष भी करते आ रहे हैं। क्रोआटिया तथा सर्बिया में भी, बावजूद इसके कि भाषा का कोई भेद नहीं है, दो इकाइयों के प्रति पर्याप्त जागरूकता है। ऐसी दशा में यदि एकता के नाम पर जनपदों के स्वतन्त्रतापूर्वक उन्नति करने के लिए उचित वातावरण बनाने के संगठन की मांग बलपूर्वक दबाई जाय, तो सरासर अन्याय होगा। इसलिए प्रांत-निर्माण के लिए सभी पहलुओं पर विचार करके ही निर्णय करना होगा।

ठोस निर्माण की बात पर हमारा ध्यान प्रांत-निर्माण के तरीक़ों की ओर बरबस खिंच जाता है; पर आज जितनी सफलता (वैसे भी उनकी निर्माण-पद्धति की प्रशंसा संसार के सुप्रसिद्ध विचारक कर चुके थे) के साथ दानवी शक्तियों का विरोध रूस ने किया है, उससे रहे-सहे विरो-

षियों को भी उसकी रचना-प्रणाली का लोहा मानने को बाध्य होना पड़ा है। यहाँ उत्तरी साइबेरिया के सबसे ठण्डे प्रदेशों में से एक प्रदेश याकूतिया का उदाहरण देकर हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि पुनर्निर्माण में एक दरिद्र और पिछड़े हुए देश ने बीस साल के थोड़े से समय में कितनी आश्चर्यजनक प्रगति की। रूसी क्रान्ति से पहले याकूतिया भी ज़ार की सरकार की चक्की में दुर्दान्त रूप से पीसा जा रहा था। रूसी व्यापारी और पूँजीपति याकूत-सामन्तों की मदद से वहाँ की पैदावार—लकड़ी और समूरी-चर्म को लूट रहे थे और वहाँ के निवासियों में वोडका के सेवन को प्रोत्साहन दे रहे थे। इस आर्थिक शोषण का नतीजा था सर्वनाश का बराबर नज़दीक आना। वहाँ क्षयरोग का बड़ा ज़ोर था तथा आम तन्दुरुस्ती का यह हाल था कि किसी भी मनुष्य को पूर्ण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता था। सिवा सामन्तों, पादरियों और व्यापारियों के पैदाइश से मौत की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। ५ वर्ष की आयु पूरी करने से पहले ही ७० फ़ी-सदी बच्चे मर जाते थे। उन लोगों की सांस्कृतिक भावना को हिक़ारत की नज़र से देखा जाता था। उनको अपने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रीति-रिवाजों को भी पूरा करने का हक़ न था। उनको अपनी भाषा की उन्नति का अधिकार तो दूर, उस भाषा को बोलने की भी आज़ादी न थी। उसको महत्त्व देना सरकार की निर्धारित नीति के विरुद्ध समझा जाता था। उसमें पुस्तकें या अख़बार छापने की सुविधा तो बहुत ही दूर की बात थी। लोक-शिक्षण के नाम पर जो स्कूल थे भी, उनमें रूसी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। सामन्तों, व्यापारियों, पादरियों तथा उनके रिश्तेदारों के सिवा अन्य लोगों के पढ़ने की सुविधा नाममात्र की थी। कुल विद्यार्थियों में से केवल १५ प्रतिशत याकूत होते थे। शिक्षा का विस्तार २ प्रतिशत के क़रीब था। देश कृषि-प्रधान था और कृषि पुराने तरीक़ों पर होती थी। इससे वहाँ के निवासियों का पालन होना भी दूभर था। उनको लकड़ी काट कर तथा शिकार करके अपना पेट भरना पड़ता था। पशु-पालन की दशा भी शोचनीय थी। न उन्नतिशील तरीक़े काम में लाए जाते थे और न नस्ल को सुधारने का कोई इन्तज़ाम था। वनों में जो क़ीमती लकड़ी थी, वह सब काट कर रूसी पूँजीपतियों के स्वार्थों के लिए बाहर भेज दी जाती थी। वनों के सुधारने का भी कोई प्रयत्न नहीं होता था। कल-कारखानों का नाम भी न था। तीस लाख वर्ग-किलोमीटर में फैली हुई भूमि की प्राकृतिक सम्पत्ति के उपयोग का कोई प्रयास न था। सन् १९१७ में उद्योग-धन्धों की उपज १५७००० हज़ार रूबल की थी।

अब इसके २० वर्ष बाद सन् १९३७ की हालत पर भी दृष्टि डालिए। आज वही दलित याकूतिया एक स्वतन्त्र और औद्योगिक जनपद बन गया है। वहाँ समाजवादी उसूलों पर आर्थिक निर्माण होने के कारण आर्थिक लूट करने वाली श्रेणियों, पूँजीपतियों, व्यापारियों, सामन्तों और पादरियों का उसके जातीय जीवन में कोई स्थान नहीं है और शोषण की सम्भावना का भी नामोनिशान नहीं है। जन-स्वास्थ्य के लिए भी वहाँ कम प्रयत्न नहीं हुआ। १९१७ में थोड़े से चिकित्सालय और १९ डाक्टर थे। १९३६ तक अस्पतालों की संख्या १४३ हो गई तथा डाक्टर भी १६३ हो गए। इसके सिवा जन-स्वास्थ्य के बिगड़ने के मूल कारण पुष्टिकर भोजन की कमी और कार्य की अधिकता को हमेशा के लिए उखाड़ फेंका गया है। क्रान्ति से पहले जो याकूत-भाषा लिपि और साहित्य-रहित होकर मृतप्राय थी, वही आज प्रथम ७ वर्ष की अवधि तक दी जाने वाली अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा का माध्यम है। स्कूली किताबों के सिवा अन्य अनेक ग्रन्थ याकूत-भाषा में छप चुके हैं। उसमें १८ समाचारपत्र और अनेक मासिक पत्रिकाएँ निकलती हैं। कितने ही अध्ययन-परिषद, ग्राम-

वाचनालय, कोलखोज़-क्लब, सांस्कृतिक भवन, नाटक-घर, कोलखोज़-थियेटर तथा जन-नाट्य-भवन स्थापित हैं। चलते-फिरते सिनेमा बराबर आते रहते हैं। रेडियो से कोई भी बस्ती खाली नहीं है। याकूत शहर से रेडियो द्वारा याकूत-भाषा में ब्राडकास्ट होता है। भाषा और संस्कृति की खोज के लिए एक अन्वेषण-विभाग है। जल व आकाश-सम्बन्धी अन्वेषण के लिए विज्ञानशाला तथा जंगल, समूर और खनिज पदार्थों की खोज के लिए विद्वत्परिषद है। हाईस्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या १५ गुनी हो गई है। वहाँ १२ टेकनीकल स्कूल, ३ फैक्ट्री-उम्मीदवार-स्कूल और २ कमकर तैयार करने के स्कूल हैं, जिनमें २४३० विद्यार्थी पढ़ते हैं। ४०० विद्यार्थी मास्को और लेनिनग्राद में उच्च शिक्षा पा रहे हैं। शिक्षितों की संख्या ८० प्रतिशत है। ३२७००० लोगों में जो २० प्रतिशत अनपढ़ बाक़ी हैं, वे अपरिवर्त्तनवादी तथा प्रतिक्रियावादी बूढ़े लोग हैं, जो कुछ ही साल के मेहमान हैं। कृषि में भी क्रान्तिकारी उन्नति हुई है। क्रान्ति के बाद खेती पर किसानों का कब्ज़ा होने व पंचायती खेती के ढंग में तरक्की तथा मशीनों के उपयोग ने उत्साह को बढ़ाया है। आज तीनगुनी भूमि जोती जाने लगी है। २८५०० कम्बाइनर व ट्रैक्टर चलने लगे हैं। लीसेंको के वेर्नलाइज़ेशन के तरीके ने उपज बढ़ाने के साथ ही असम्भव जगहों में भी खेती होना सम्भव कर दिया है। नये तरीक़े की पशुशालाएँ बनवाई गई हैं। सांडों के चुनाव एवं प्रजनन विज्ञान की सहायता से पशुओं की नस्ल सुधारी गई है। देवदार तथा अन्य क़ीमती लकड़ियों के जंगलों में लकड़ी के उद्योग स्थापित किए गए हैं। नदियों में चलने वाले जहाज़ों के कारखाने बन गए हैं। सोने की बड़ी-बड़ी खानों का पता लगाया गया है। परिणाम-स्वरूप आज सोवियत् रूस का १५ प्रतिशत सोना याकूतिया में निकलता है। यहाँ कोयला भी प्रचुर परिमाण में मिला है। राँगा तो संसार-भर से ज़्यादा यहाँ निकलने लगा है। पैट्रोल और मिट्टी के तेल के कुएँ भी खोदे गए हैं। राष्ट्रीय आय का ६६ प्रतिशत उद्योग धन्धों से प्राप्त होता है। २२६०००० रूबल प्रति-वर्ष उद्योग-धन्धों की आय है। कहाँ १६१७ की आमदनी एक लाख ५७ हज़ार रूबल और कहाँ १६३७ की आय १० करोड़ ७० लाख। इस आमदनी में से ४ करोड़ ६० लाख रूबल शिक्षा तथा सांस्कृतिक निर्माण में खर्च किए गए, यानी प्रति मनुष्य १३६ रूबल या ५ रुपया मासिक।

बुन्देलखण्ड पर एक दृष्टि

अब ज़रा आज के बुन्देलखण्ड पर भी एक दृष्टि डालकर देखा जाय कि उसमें और १६१७ के याकूतिया में कितनी समानता है। आज बुन्देलखण्ड एक ओर तो ब्रिटिश साम्राज्य के जुए में जुता हुआ है और अपनी पैदावार से विदेशी शासकों की सुविधाओं का प्रबन्ध करता है। दूसरी ओर उसकी हालत यह है कि वह देशी सामन्तों और व्यापारियों द्वारा चूसा जा रहा है। शासन की दृष्टि में उसका अंग-भंग करके उसको ३३-३४ देशी रियासतों तथा उनमें मौजूद कई सौ जागीरों और दो अंगरेज़ी सूबों—यू० पी० और सी० पी०—में विभाजित कर दिया गया। इस प्रकार उसकी एकता की भावना को आमूल नष्ट करने का प्रयत्न किया गया। इन सभी भागों में असमान प्रकार के राजतन्त्र ही नहीं, बल्कि आर्थिक संगठन भी अलग-अलग तरह का है। इस प्रकार क्षत-विक्षत बुन्देलखण्ड, जिसकी ग़रीबी निम्नतम धरातल पर पहुँची हुई है, अनगिनत शोषकों का उदर-पोषण ही नहीं करता, बल्कि भोग-विलास के अनन्त साधनों को भी उनके लिए सुलभ करता है।

जन-स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने की भला फ़ुरसत ही किसे है। लाखों की आबादी के भूखण्ड के लिए दो-एक अस्पताल खोल दिए, दो-चार डाक्टर और एक-आध वैद्य भी रख लिए। यही है बस पब्लिक-हेल्थ-डिपार्टमेण्ट-

जैसे भारी भरकम विभाग की व्यवस्था ! आम मनुष्यों का स्वास्थ्य पुष्टिकर भोजन की कमी और कार्य की अधिकता के कारण अत्यन्त गिर चुका है। यहाँ मलेरिया-जैसी मामूली और हमेशा होने वाली बीमारी में भी कई हज़ार आदमी हर साल मर जाया करते हैं। पैदाइश और मौत के आंकड़े यदि प्राप्त हो सकें, तो पता चले कि हर साल पैदा होने के साथ ही न केवल बच्चे, बल्कि माताएँ भी सैकड़ों की तादाद में इस दुनिया से कूच कर जाती हैं। प्रतिवर्ष छोटे बच्चों की मृत्यु-संख्या के आंकड़े तो हज़ारों तक पहुँच जायँगे।

शिक्षा की दशा देखें, तो वह और भी अस्तव्यस्त मिलेगी। ८० लाख जनता के लिए अँगुलियों पर गिनने लायक हाईस्कूल और मिडिल स्कूल मिलेंगे। उच्चकोटि की कन्या पाठशालाएँ तो १० भी नहीं हैं। उनके लिए हाईस्कूलों की बात करना तो मज़ाक होगा। उच्च शिक्षा सरकारी अधिकारियों, व्यापारियों, जागीरदारों के सिवा कितनों की पहुँच के भीतर हो सकती है ? बुन्देलखण्ड जनपद की जनता का २ प्रतिशत भी सही मानी में पढ़ा-लिखा नहीं है। इस मूर्ख जनता की संस्कृति और साहित्य की बात करना उसका मखौल उड़ाना नहीं तो क्या है ? फिर साहित्यिक और सांस्कृतिक उन्नति का तो सवाल ही नहीं उठता। भाषा की ओर देखा जाय, तो यहाँ की शिक्षा के लिए ज़िम्मेदार अधिकारी बुन्देली-भाषा उप-भाषा भी मानने से इनकार करते हैं। उसकी शिक्षा का माध्यम बनाने की तो बात ही अलग है।

कृषि की यह हालत है कि यहां का किसान दो बीघे खेत का एक टुकड़ा अपने टुटरूँटूँ बैलों द्वारा चार दिनों में भी नहीं जोत पाता और पैदावार तो शायद पाँच मन फी-एकड़ भी नहीं होती। यह भूमि तालाबों और नदियों की बहुतायत के लिए अपना सानी नहीं रखती; पर आज तक कितनी नदियों और तालाबों को बाँध कर उपयोग में लाने की कोशिश की गई है ? बल्कि कहीं-कहीं तो अयोग्य इञ्जीनियरों ने बँधे हुए बाँधों तक को तुड़वा कर निर्माण-कार्य को पीछे की ओर ढकेल दिया है। यहाँ का निवासी तो कोदों, लठारा, सेमर के फूल और महुआ खाकर जीवन-यापन करता है। उससे यह आशा करना कि वह संसार में होने वाली वैज्ञानिक और औद्योगिक दौड़ में दौड़े, सरासर उसका मज़ाक उड़ाना है।

यहाँ पर काफ़ी बड़े पैमाने पर पशु-पालन भी होता है; पर वैज्ञानिक और व्यापारिक दृष्टि से देखा जाय, तो यही कहना होगा कि जिन जानवरों को पाला जाता है और उन पर जो चारा खर्च किया जाता है, वह एक महान जातीय क्षति है। बुन्देलखण्ड के राज्यों में जनता को भले ही कोई अधिकार न हो; पर यहाँ पर प्रत्येक निर्बल तथा मरणासन्न बैल को सन्तानोत्पत्ति का अबाध अधिकार प्राप्त है। नतीजा यह हुआ है कि यहाँ की औसत गाय पाव-भर और औसत भैंस आध सेर दूध यदि हर जून दे दे, तो बड़ी बात मानी जाती है।

जंगलों की तो इस भूखण्ड में इतनी अधिकता है कि इसे यदि जंगलों का ही जनपद कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। जङ्गलों में सागौन; सलैया (दियासलाई के काम में आने वाली लकड़ी), खैर, कंवा, शीशम, महुआ आदि कीमती लकड़ियाँ प्रचुर मात्रा में हैं; पर लकड़ी के उद्योग के नाम से भी कोई परिचित नहीं और न काटे हुए वनों को हरा-भरा करने की ओर ही ध्यान दिया जाता है। यदि यही दशा रही, तो वह दिन दूर नहीं, जब कि यह भूखण्ड एक उजाड़ रेगिस्तान दिखाई देगा। प्राकृतिक पैदावार की खानों आदि के लिए अनुसन्धान की तो अभी शुरूआत भी नहीं हुई है। पहाड़ी प्रान्त होते हुए भी पत्थर निकालने का ही उद्योग अव्यवस्थित है। फिर और दूसरी प्राकृतिक पैदावारों की तो बात ही क्या ? यहाँ पर उद्योग नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। ध्यान से देखा जाय, तो कई ऐसे उद्योग हैं, जो आज भी विस्तृत रूप से

प्रारम्भ किए जा सकते हैं। लकड़ी, शक्कर और चमड़े उनमें से कुछ हैं। पर इधर ध्यान देने की फ़ुरसत किसे है?

भावी बुन्देलखण्ड का एक स्वप्न

बुन्देलखण्ड की जो शोचनीय दशा हो गई है, उसे सुधारने और उसे अन्य जनपदों की श्रेणी में लाने की ज़िम्मेदारी अकेले बुन्देलखण्ड वालों की ही नहीं है। वह तो सम्पूर्ण भारत की सामूहिक ज़िम्मेदारी है। भावी भारत में किसी भी जनपद के निबल होने के मानी हैं समस्त राष्ट्रीय शरीर की कमज़ोरी। बिना सब अंगों को ठीक किए राष्ट्र की उन्नति का स्वप्न देखना हिमाकत होगी। जब कभी जातीय संगठन की समस्या किसी भी राष्ट्र के सामने आई है, तो उसे तीन प्रकार से हल करने की कोशिश आज तक हुई है। पहला सीमाओं को पुनः संगठित करके जनपदों को अपने को एक करने का हक़ देकर सुलझाने का प्रयत्न, जैसा कि सोवियत रूस ने किया है। दूसरा तरीक़ा है अल्पमत इकाइयों को हज़म कर लेना, जैसा कि भारत में हुआ है और तुर्की में भी। पर यह तरीका अब तक बराबर असफल हुआ है। तीसरे प्रकार का प्रयत्न है सीधी तरह से हज़म न होने वाले अल्पमतों के नागरिकता के अधिकार छीनकर जैसा कि हिटलर की जर्मन-सरकार ने यहूदी-समस्या को हल करने के लिए किया है। इस प्रकार हमने देखा कि प्रजातन्त्रीय तरीक़ा वही है, जो सोवियत सरकार ने अपनाया है और जिसमें उसे सफलता भी मिली है। यह तरीक़ा है प्रत्येक जनपद को स्वावलम्बी बनाकर उसमें उत्साह और जीवन की लहर पैदा करना। इसलिए वास्तविक उन्नति की ओर पहला और आवश्यक क़दम होगा प्रान्तों का स्वावलम्बी जनपदों के रूप में संगठन। तत्पश्चात् दूसरा क़दम होगा इस प्रकार के आर्थिक और राजनीतिक संगठन का निर्माण, जिसमें जनता की गाढ़ी कमाई का दुरुपयोग कोई वर्ग न कर सके।

इतना हो चुकने के बाद यह सवाल आया कि अब तक के अर्जित ज्ञान को जल्दी जनता तक कैसे पहुँचाया जाय? इसके लिए शीघ्रातिशीघ्र वर्णमाला की शिक्षा देकर बुन्देलीभाषा में लिखी पुस्तकें जनता के हाथ में देनी होंगी और उसी भाषा में ज्ञान-प्रसार का काम आगे बढ़ाना होगा। हम जानते हैं कि कुछ लोग यह कहकर इसका विरोध करेंगे कि बुन्देली तो हिन्दी का ही एक रूपान्तर-मात्र है, हिन्दी में ही शिक्षा दी जाय। पर हिन्दी का व्याकरण पढ़ाने और उसके कोष के उन सभी शब्दों, वाक्यांशों और लोकोक्तियों को सिखाने में, जिनके लिए बुन्देली में भिन्न शब्द, वाक्यांश या लोकोक्तियाँ हैं, समय को खोना एक महान अपराध है।

साक्षरता फल चुकने के बाद इतना अवश्य है कि यहाँ की जनता को यह अधिकार होना चाहिए कि वह बुन्देली या हिन्दी जिसमें चाहे अपना साहित्य सृजन करे तथा अखबार आदि निकाले। जो लोग अन्य सब जनपदों की भाषाओं को दबोच कर उन पर केवल खड़ी बोली को लादना चाहते हैं, वे वास्तव में सांस्कृतिक साम्राज्यशाही की भावना के शिकार हैं। विरोध करने वाले यह भी कहते हैं कि बुन्देली-भाषा साहित्य-रहित है। पर क्या वे यह बतायँगे कि बुन्देली को साहित्य-सृजन का मौक़ा ही कब मिला है? फिर बुन्देलखण्ड में जो ग्राम-गीत गाए जाते हैं, वे क्या खड़ी बोली के हैं? वीर-काव्य आल्हा क्या खड़ी बोली में लिखा गया था। आज से सौ वर्ष पहले इस खड़ी बोली का ही, जिसे आज राष्ट्रभाषा कहलाने का गौरव प्राप्त है, कौनसा साहित्य था? जो लोग अवध और ब्रज तथा बुन्देलखण्ड की बोलियों को एक ही मानते हैं, वे बलिया, दतिया, मथुरा, फर्रुखाबाद के पाँच किसान इकट्ठे करके देखें कि वे एक-दूसरे की बात को कितने प्रतिशत समझ सकते हैं और फिर अपनी साहित्यिक हिन्दी बोल कर देख लें कि वे कितना समझ पाते हैं।

अन्त में एक ही बात और कहनी है कि राष्ट्रीय समस्या को इस प्रकार जातीय जनपदों की इकाई बना कर हल करने से दो साक्षात् लाभ होंगे। एक तो यह कि साम्प्रदायिक समस्या-जैसी विघातक समस्या से छुटकारा मिल जायगा, क्योंकि उस समय किसी भी जनपद की जनता को मज़हब या अन्य इस तरह के नामों से प्रभावित नहीं किया जा सकेगा और न जनपदों में विरोधी स्वार्थों का गँठबन्धन ही हो सकेगा। दूसरे एक लाभ यह होगा कि पुनर्निर्माण की योजनाओं को सफल बनाने योग्य वातावरण बन जायगा। सारे जनपद एक ही शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की तरह अपने स्वार्थों की मज़बूती से रक्षा और उन्नति करते हुए सम्पूर्ण राष्ट्रीय शरीर को सुदृढ़ तथा उन्नतिशील बनाने में अपना उचित और आवश्यक सहयोग दे सकेंगे।

अब रहा बुन्देलखण्ड का सवाल, सो उसका तो अलग से प्रान्त बनना और भी ज़रूरी है, क्योंकि इस प्रान्त के छिन्न-भिन्न अंग मिलने के बाद ही सम्पूर्ण भारत के पुनरुद्धार में यथाशक्ति हाथ बँटा सकेंगे। बुन्देलखण्ड को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित कर दिया गया है और उसमें विषमताओं को सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया गया है, इसलिए इनको सबसे पहले दूर करना और समस्त भूखण्ड को एक इकाई में सङ्गठित करना राष्ट्र की एक ऐसी आवश्यक समस्या है, जिसको कल के लिए नहीं टाला जा सकता। अभी बुन्देलखण्ड के अलग प्रान्त बनाए जाने का आन्दोलन प्रारम्भ ही हुआ है। अल्पसंख्यक पत्रों तथा व्यक्तियों ने ही उस पर अपनी सम्मति प्रकट की है। चूँकि अभी इस आन्दोलन के नेताओं की ओर से प्रान्त की कोई स्पष्ट राजनीतिक रूप-रेखा प्रकाशित नहीं हुई, इसलिए कितने ही पत्रकार-बन्धु इस विषय पर तटस्थ भाव धारण किए हुए हैं। जिन महानुभावों की सम्मतियों का महत्त्व हो सकता था, उनके जेल में होने के कारण यह आन्दोलन व्यापक नहीं बन पाया है। एक पत्र ने बुन्देलखण्ड के अलग प्रान्त बनाये जाने की माँग की तुलना क़ायदे-आज़म जिन्ना के पाकिस्तान से की है। मानो स्वतन्त्र भारत में प्रान्त होंगे ही नहीं! या एक ही जनपद को चालीस-चालीस सामन्तों के शासन में पड़े रह कर दम तोड़ने दिया जायगा। ये लोग राष्ट्रीय लोकमत को बच्चा समझ बैठे हैं और किसी भी उन्नतशील माँग के सामने आते ही उसे पाकिस्तान के हौए से डरा कर सुला देना चाहते हैं। एक ज़िम्मेदार पत्र के सुयोग्य सम्पादक ने प्रान्त-निर्माण के कार्य को बैठे-ठाले आदमियों का एक अकर्त्तव्य कर्म बतलाया है। एक अन्य सज्जन इसे बिल्कुल असामयिक आन्दोलन समझ बैठे हैं। इन लोगों को यह कैसे समझाया जाय कि जिस प्रश्न का सम्बन्ध लाखों व्यक्तियों के जीवन-मरण से है, वह अत्यन्त आवश्यक तथा बिल्कुल सामयिक है। न उसकी उपेक्षा की जा सकती है और न वह टाला जा सकता है।

प्रान्त बुन्देलखण्ड

श्री सियारामशरण गुप्त

एक नये प्रान्त के रूप में बुन्देलखण्ड की हदबन्दी की जाय, इस बात का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, गंवई—गाँव में ज़मीन के लिये होने वाले झगड़ों से इसकी तुलना नहीं की जा सकती, फिर भी इसने मेरे मन में किसी नये उत्साह का संचार नहीं किया, यह मैं पहले ही स्वीकार किये लेता हूँ।

बटवारे के मूल में, और अपर भी, विभिन्नता की, विच्छिन्नता की, भावना रहती है,

'इतना मेरा है,' इसके साथ 'इतना तुम्हारा नहीं है' न कह कर भी कह दिया जाता है।

प्रारम्भ से ही मैंने अखंड भारत के सम्मिलित गौरव का अनुभव किया है। यदि मैं उसे प्रान्त-प्रान्त में विभाजित कर देता तो हिमालय से लेकर सागर-पर्यन्त फैली हुई कितनी ही कीर्ति-कथाओं और वैभव सम्प्रदायों को किसी-न-किसी रूप में परकीय कर देना पड़ता। मेवाड़ और पूना, आगरा और दिल्ली की बात ही क्या, मथुरा, अयोध्या और काशी तक किसी ऊँची दीवार के बाहर बहुत दूर पहुँच गये होते।

इसी से प्रान्त-विशेष की बात मेरे मन में कभी नहीं उठी, फिर भी देश में कितने ही प्रान्त हैं, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उनमें से कई की भाषाओं में प्राचीन और आधुनिक साहित्य की समृद्धि और सम्पदा भी है। पर यह स्पष्ट नहीं बताया गया है कि जब बुन्देलखण्ड एक नया प्रान्त बन जायगा, तब यहाँ किस भाषा के द्वारा हमारा प्रान्तीय कारबार चलेगा। पाठशालाओं, अदालतों और धारा-सभा की भाषा कौन सी होगी? बंगाल में बंगाली, महाराष्ट्र में मराठी और गुजरात में गुजराती का चलन है, तब बुन्देलखण्ड में बुन्देलखण्डी होनी ही चाहिये! इसके बिना प्रान्त की विशेषता का बोध कैसे होगा!

यहाँ की बोली मधुर है, उसमें रची गई कुछ कविताओं में हृदय को छू लेने की शक्ति का परिचय भी हमें मिल चुका है, पर इतने से ही वह प्रांत की राजवाणी हो सकने का अधिकार नहीं ले सकती। इसके लिये हमें बहुत कुछ करना पड़ेगा। भूगोल, इतिहास, दर्शन, और विज्ञान आदि की प्रारम्भिक पुस्तकों का निर्माण भी कुछ छोटा काम न होगा। इस सबके लिये आन्दोलन के समर्थकों की ओर से कोई भी तैयार नहीं दीख पड़ता। इससे अनुमान होता है कि इस प्रान्त में हिन्दी जहाँ-की-तहाँ रहने दी जायगी। यह बात आगे चल कर खटक सकती है। बुन्देलखण्ड में बुन्देलखण्डी की प्रतिष्ठित करने की कामना प्रान्तप्रेमी उसी स्वाभाविकता से कर सकते हैं, जिससे भक्त प्रजा राजा के साथ रानी को भी सिंहासन पर देखना चाहती है।

यह सब व्यापक हित की दृष्टि से ठीक नहीं है, हिन्दी भाषी प्रदेश ही ऐसा प्रदेश है, जहाँ प्रान्तीयता का विष अभी तक नहीं फैला। यह इसलिये कि हिन्दी प्रान्तीय न होकर राष्ट्रीय भाषा है और इसके बोलने वालों के रक्त तक में यह भावना घुल-मिल कर एक हो गई है। यह बहुत बड़ी वस्तु है, जिसका छोटी-मोटी सुविधा के लिये बलिदान कर बैठना युक्ति-संगत न होगा।

प्रान्त विभाजन की योजना सांस्कृतिक आधार पर उठाई गई बताई जाती है बुन्देलखंडी बोली के शब्दकोष का निर्माण, यहाँ की लोक-गाथाओं और कहावतों के संग्रह, यहाँ की साहित्यिक कृतियों के अध्ययन और प्रकाशन आदि के कार्य वास्तव में अभिनंदनीय है। कोई समझदार व्यक्ति इनका विरोध नहीं कर सकता। पर इतने के ही लिये प्रान्त के विभाजन की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूर विदेशों में बैठ कर कितने ही विदेशियों ने संस्कृत साहित्य की गवेषणा करके अमूल्य सांस्कृतिक कार्य किया है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ने लाल कवि के 'छत्रप्रकाश' का प्रकाशन करके बुन्देलखंड की सांस्कृतिक सेवा की। ऐसे कार्यों के लिये प्रान्त-निर्माण अनिवार्य नहीं है। प्रान्त-विभाजन सदा से राजनीतिक दृष्टिकोण को सामने रख कर किये जाते हैं। राजनीतिक का काम पृथक्करण रहा है और सांस्कृतिक का संयोजन। संस्कृति ने ही हमें बताया है कि सारा भारतवर्ष एक है। उसने प्रान्त की बात को कभी महत्व नहीं दिया। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति के सबसे बड़े कवि कालिदास के सम्बन्ध में हम यह तक नहीं जानते कि वह किस प्रान्त के निवासी थे। विरुद्ध प्रान्त के एक अभिमानी पुरुष का ऐसा लेख मेरे देखने में आ चुका है, जिसमें संस्कृत और हिन्दी के सभी प्रमुख कवियों को बुन्देल-

खण्डी साबित करने का कठोर आग्रह था। प्रान्त पर जोर दिया जायगा तो उससे ऐसी प्रान्तीयता उठेगी ही।

प्रान्तीयता के दुष्परिणामों का परिचय थोड़ा बहुत हम सबको है। पहले-पहल चर्चा का प्रारम्भ यहाँ से होता है कि ब्रज और बुन्देलखंड आदि के साहित्य-मंडलों की स्थापना की जाय और कुछ ही काल के अनन्तर जनता के कोर्ट में बुन्देलखण्ड के स्वतन्त्र प्रान्त बनाये जाने का मामला दायर कर दिया जाता है। होगा यही न कि जमुना और चम्बल के उस पार रहने वाले हम से भिन्न हैं, यह मान लिया जाय; उनकी संस्कृति, उनके रहन-सहन और उनकी भाषा में हम से अन्तर है। यह कैसी सांस्कृतिक सेवा हुई, इसे मैं नहीं जानता।

और इसी बीच में यह चर्चा चल पड़ी है कि ब्रज और बुन्देलखण्डी में अधिक मधुर कौन है? यह विषय दो मित्रों की बातचीत में मनोरंजन का हो सकता है, इससे अधिक कुछ नहीं। इन सब बातों का परिणाम हिन्दी के लिये विघातक होगा। प्रान्त-निर्माण की चर्चा से यह स्थिति सामने आ जायगी कि हम बुन्देलखण्डी आगे चल कर यह कहेंगे, हिन्दी हमारी मातृ-भाषा नहीं है। हिन्दी-साहित्य के एक प्रतिष्ठित स्तम्भ के मुख से, जो अन्य प्रान्त का गौरव रखते हैं, ऐसा ही हम सुन भी चुके हैं। प्रान्तीय बोली का आदर उचित है, पर उसे इस सीमा तक पहुँचाने से लाभ के बदले हानि ही स्पष्ट है।

प्रान्तीय भाषा का आकर्षण होता है कि उससे गौतम बुद्ध जैसे असामान्य पुरुष भी नहीं बच पाते। उन्होंने अपने उपदेश प्रान्त-भाषा पाली में ही किये थे, एक अंश तक इससे उनके कार्य में सफलता भी हुई। पर, मेरा विचार है, उनके द्वारा तत्कालीन राष्ट्र-भाषा संस्कृत की उपेक्षा होने के कारण उनके धर्म की जड़ें गहराई तक नहीं पहुँच सकीं, और इस देश से उसका प्रायः लोप ही हो गया, जबकि दूसरे देशों में उसका अस्तित्व अब भी है। पालिभाषा को बुद्ध-देव ने पूज्यासन पर बिठाया था और मगध की राज-सत्ता ने बाद में प्रान्तीय के साथ धार्मिक भावना से भी इसे प्रसारित किया। परन्तु फिर भी देश की जनता बुद्धदेव के श्रीमुख से निकले हुए एक भी वाक्य को याद नहीं रख सकी है। यदि उनकी वाणी संस्कृत में भी होती तो ऐसा न होता।

हमारे सौभाग्य से हिन्दी हमारे ही बीच में राष्ट्रवाणी के रूप में विद्यमान है। इसके निर्माण में युग-युग की साधना लगी है। पर उसका मार्ग अब भी कंटकाकीर्ण है। कितने ही विरोधों और आघातों के होते हुए भी उसे फलना-फूलना है, ऐसी दशा में हमारे द्वारा ऐसा कोई कदम न उठाया जाना चाहिये, जिससे उसे किसी प्रकार की ठेस पहुँचे। प्रान्त के आन्दोलन के साथ प्रान्तभाषा का प्रश्न अनिवार्य हो उठेगा।

प्रान्त-निर्माण की समस्या शुद्ध राजनैतिक समस्या है। उसका सम्बन्ध साहित्य से इतना ही है, जितना किसी दरबार में राजा से दरबारी कवि का होता है। हो सकता है कवि को राजा के सामने बैठने का स्थान मिल जाय और सामंत लोग आस-पास और पीछे खड़े हों, पर इससे कुछ आता-जाता नहीं है।

इस आन्दोलन के विषय में विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है। वह यथा स्थान और यथोपयुक्त नहीं। सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस समय एकीकरण की आवश्यकता प्रमुख है। देश में इतने अधिक अनैक्य पहले से ही हैं, जिनके दूर करने में आशातीत समय और घनीभूत शक्ति का उपयोग हमें करना पड़ेगा। साहित्य-सम्मेलन जो काम नहीं कर पाता, उसके लिये दूसरी संस्थाएँ स्थापित की जा सकती हैं। मदरास की दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और वर्धा की राष्ट्र भाषा प्रचार सभा अपने स्वीकृत कार्य अपने-अपने क्षेत्रों में सफलता से कर ही रही है। प्रान्त-विभाजन का प्रश्न उनके लिये आवश्यक नहीं हुआ।

जब हमारे हाथ में जनसेवा की उचित सत्ता आ जायगी, तब निश्चय है कि फिर से हमें प्रान्तों का संगठन करना पड़ेगा। उस समय के लोकसेवकों पर हमें विश्वास रखना होगा कि इस कार्य को वे अंधाधुंध तरीके से न कर बैठेंगे। वर्तमान में तो न जाने कितनी निरंकुश सत्ताओं ने इस भूमि भाग को खंडित कर रक्खा है। ऐसे में प्रान्त-निर्माण का यह आन्दोलन लंका-कांड का पाठ छोड़ कर उत्तर-कांड का खंडित पारायण करने जैसा है।

गहरी आशंका है, जबकि विभिन्न 'स्तानों' की चर्चा यहाँ-वहाँ बड़े जोर से चल रही है तब कहीं बुन्देलखण्ड की बात 'बुन्देलिस्तान' जैसी बात न हो जाय। हम जानते हैं कि बुन्देलों में कुछ वन्दनीय पुरुष उत्पन्न हुए हैं। उनकी विशेषताओं के लिये व्यक्तिगत रूप से उनका सम्मान बराबर किया जायगा। पर इसके लिये मैं यह पसंद न करूँगा कि इस भूमि-भाग का नाम 'बुन्देलस्तान' या इससे मिलता-जुलता रहे। सामंतशाही के सम्मान की यह विधि मेरी, कम-से-कम मेरी, रुचि की नहीं है। बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के अधिवासी हमारी अपेक्षा सौभाग्यशाली हैं कि उनके प्रान्त के मुख पर ऐसा कोई घाव नहीं दिखाई देता।

चिरगाँव
(झाँसी)

बुन्देलखण्ड जाग्रत हो

श्री कृष्णानन्द गुप्त

शताब्दियों से सामन्तशाही की दुर्द्धर्ष बेड़ियों से जकड़ा हुआ बुन्देलखण्ड आज अंगड़ाई लेकर जाग रहा है, यह कैसे हर्ष की बात है। यदि मैं कवि होता तो अपने प्रान्त के इस नवजागरण पर एक गीत लिखता, "आओ उपवन के पक्षियो, तुम कलरव करो। आओ स्वर्ग के देवदूत, तुम मंगल-गान करो। आओ ऊषा के कारुण प्रकाश, तुम स्वर्ण की अमित वर्षा करो। आज बुन्देलखण्ड जागा है"
वह आज अपने पैरों के बल उठकर खड़ा होना चाहता है। वह आज अपनी छिन्न-भिन्न शक्तियों को एकत्र करके एक प्रान्त के रूप में संगठित होना चाहता है। कौन उसकी इस चेष्टा को अशुभ और अकल्याण-कारी कहता है? कौन उसके इस तद्प्रयत्न में स्वार्थ और प्रान्तीयता की गंध पाता है? बुन्देलखण्ड मूर्ख नहीं है। वह विक्षिप्त भी नहीं है। वह खूब अच्छी तरह जानता है कि वह सम्पूर्ण भारतवर्ष का एक अंग है। अपने को उससे अलग करके वह क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता। देश का हित उसका हित है और देश का अहित उसका अहित। यदि वह अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाने की चेष्टा करे तो उसका एक व्यर्थ और असम्भव प्रयास होगा। किन्तु इसके साथ ही वह यह भी जानता है कि वह समय शीघ्र आवेगा जब कि बुन्देलखण्ड का पुनर्निमार्ण करने की समस्या पर देश के लोक-सेवकों को गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। भारतवर्ष के सम्पूर्ण शरीर का उसके जिन अंग-प्रत्यंगों द्वारा पोषण और परिपालन हो रहा है उन अंगों की उपेक्षा नहीं की जा सकती, फिर वह अंग चाहे बुन्देलखण्ड हो चाहे आन्ध्र अथवा कर्नाटक।

ऐसी दशा में हमारे कुछ मित्रों को इस आन्दोलन के विषय में यदि भ्रम हो, उसके मूल में यदि उनको विभिन्नता और विच्छिन्नता की भावना नज़र आये, तो यह वास्तव में बड़े दुःख का विषय है। इसमें मुख्यतः

आन्दोलनकारियों का ही दोष मानता हूँ। साधारण जनता अराजकवाद और समाजवाद की लम्बी-चौड़ी बातें नहीं समझ सकती। विकेन्द्रीकरण का उसको ज्ञान नहीं। और न वह यह समझ सकती है कि देश की राजनैतिक स्वाधीनता के साथ उसकी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक समुन्नति का क्या सम्बन्ध है। ऐसी दशा में जनता के प्रतिनिधि की हैसियत से सर्वसाधारण के मन में उठनेवाली शंकाओं का समाधान यदि कोई चाहे तो यह बहुत ही उचित है।

आखिर बुन्देलखण्ड जब एक प्रान्त बनेगा तब अन्य प्रान्तों से वह थोड़ा विभिन्न और विच्छिन्न होकर तो रहेगा ही। इसलिए थोड़े से नपे-तुले शब्दों में जनता को यह बताने की आवश्यकता है कि हम क्या चाहते हैं और उससे हमें क्या लाभ होगा।

प्रान्त-विभाजन की योजना यदि एक मात्र सांस्कृतिक आधार पर उठाई गई है तो यह ठीक नहीं है। साहित्यिक अथवा सांस्कृतिक कार्यों के लिए हम अपना कार्यक्षेत्र छोटे-छोटे हिस्सों में बांट सकते हैं। उन हिस्सों को हम चाहे जनपद कहें, चाहे प्रदेश कहें, चाहे मण्डल कहें, किन्तु प्रान्त शब्द को यदि हम राजनैतिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित रख सकें तो संभवतः अपने साथ लेकर चल सकेंगे, और अपने आन्दोलन में उनका हार्दिक समर्थन भी प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु इसके साथ हमारे विरोधी मित्र यह भी न भूलें कि प्रान्त-निर्माण की समस्या शुद्ध राजनैतिक समस्या नहीं है। एक बार अपनी राजनैतिक समस्या को हल कर लेने के पश्चात् हमें केवल अपनी आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएँ ही हल नहीं करनी हैं, बल्कि प्रान्त की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी पोषण करना है।

देश की भावी शासन-प्रणाली का रूप क्या होगा, यह कहना बड़ा कठिन है। किन्तु फिर भी राजनैतिक दृष्टिकोण से प्रान्तों के पुनर्निर्माण की आवश्यकता पड़ेगी, यह एक ऐसी स्वयंसिद्ध बात है कि उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। प्रान्तों का बटवारा होगा, और यह निश्चित है कि वह बटवारा बिलकुल अटकल-पच्चू और निराधार नहीं होगा। उसका कोई आधार, कोई भित्ति अवश्य होगी। ऐसी दशा में प्रश्न केवल यह रह जाता है कि बुन्देलखण्ड निवासियों को अभी से, जब कि देश की भावी शासन-प्रणाली का रूप बिलकुल अनिश्चित है, प्रान्त–निर्माण की मांग पेश करने का अधिकार है या नहीं ? मैं तो समझता हूँ अवश्य है। बुन्देलखण्ड में कुल मिलाकर ३३ छोटे-बड़े देशी राज्य हैं। उनका क्षेत्रफल लगभग १२००० वर्गमील है। इन देशी राज्यों का भविष्य अंधकार के गर्भ में निहित है, किन्तु यह मानी हुई बात है कि उनका यह वर्तमान रूप सदैव नहीं रहेगा। ऐसी दशा में यदि हम १२००० वर्गमील के इस भू-भाग को कुछ और ज़िलों के साथ प्रान्त में संगठित कर देने का आन्दोलन छेड़ें और बुन्देलखण्ड की सदियों से सोई हुई जनता में राजनैतिक चेतना जाग्रत करने की चेष्टा करें तो क्या हमारा यह कार्य अनुचित और असामयिक होगा ? कौन जानता है कि कल क्या हो ? हमें अपने लोक सेवकों पर पूरा विश्वास है। वे जो कुछ करेंगे हमारे हित के लिए ही करेंगे। किन्तु हम यह भी जानते हैं कि इस आन्दोलन को छेड़कर हम आज नहीं तो कल उनके विश्वास भाजन बनेंगे। वे हर्षित होकर देखेंगे कि हमने उनके मार्ग को प्रशस्त ही किया है, संकीर्ण नहीं।

प्रश्न है कि जब बुन्देलखण्ड नया प्रान्त बन जायगा तब यहाँ किस भाषा के द्वारा हमारा प्रांतीय कारोबार चलेगा ? उत्तर में हमारा नम्र निवेदन है कि इसका निर्णय यहाँ के निवासी ही करेंगे। हिन्दी जहाँ-की-तहाँ रह सकती है, किन्तु बुन्देलखण्डी की भी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। वह हमारी मातृभाषा है, इसमें क्या शक ? हम अपने घर पर खड़ी बोली नहीं बोलते। हिन्दी

बोलते हैं। बुन्देलखण्डी हिन्दी भाषा का एक रूप है, अथवा हम कह सकते हैं कि हिन्दी बुन्देलखण्डी, ब्रज, अवधी आदि का रूप है। हिन्दी यदि हमारी राष्ट्रभाषा है तो हमें इस बात का उचित गर्व होना चाहिए कि माता के स्तन के साथ हमें बुन्देलखण्डी पान करने को मिली है, बुन्देलखंडी के साथ हमारा प्रथम कंठ-स्फुरण हुआ है। अतएव अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए यदि हम यह कहदें कि बुन्देलखण्डी हमारी मातृ-भाषा नहीं है और हम बाल्यकाल से किताबों की साहित्यिक भाषा बोलते हैं तो यह थोड़ी ज्यादती है। प्रांतीय बोलियों से हिन्दी को बहुत कुछ मिलने की आशा है। अतएव इस भ्रांत धारणा के वशीभूत होकर कि प्रांतीय बोलियों की समृद्धि और समुन्नति से हिन्दी का कोई अहित होगा, यदि हम उनकी उन्नति का मार्ग रोकेंगे तो एक बड़ी भारी भूल करेंगे।

प्रांतीय भाषा पाली को अपनाकर और उसमें अपने उपदेश देकर भगवान बुद्ध ने किसी प्रकार की भूल नहीं की, बल्कि बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। उस ज़माने में संस्कृत के सामने प्राकृत भाषाओं की वही स्थिति थी जो आज खड़ी बोली के सामने प्रादेशिक भाषाओं की है। बुद्ध भगवान जानते थे कि सर्वसाधारण के मन को काबू में करने के लिए उनकी अपनी ही भाषा में—ऐसी भाषा में जिसे वे रोज बोलते हैं—बात करने की आवश्यकता है। यदि भगवान उनके घर या ग्राम की सीमा का परित्याग करके नगर में प्रवेश करते तो ग्रामवासी भी उनका संग-परित्याग कर देते। इसीलिए नगर की शिष्ट और सुसंस्कृति कही जाने वाली भाषा का मोह त्याग कर उन्होंने गाँव की प्राकृत अर्थात् स्वाभाविक भाषा में जनता को अपनी वाणी सुनाई। आज से दो हजार वर्ष पूर्व उन्होंने जो किया हमारे देश के लोकसेवक भी आज वही कर रहे हैं। जब कभी वे देहातों में अपने मत का प्रचार करने जाते हैं तो वहाँ के निवासियों से उनकी अपनी बोली में ही बात करने का प्रयत्न करते हैं। खड़ी बोली का खटराग नहीं फैलाते, क्योंकि वे जानते हैं कि ग्रामीण जनता नगर की अप्राकृतिक भाषा नहीं समझती। उसका प्रयोग करने से वे जनता के निकट-सम्पर्क में नहीं आ सकेंगे। उसके साथ घनिष्ठता का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकेंगे।

कहा गया है कि भारतवर्ष से बौद्ध धर्म का इसीलिए लोप हो गया कि भगवान बुद्ध ने पाली में अपने उपदेश किये, किन्तु यह ठीक नहीं है। भारतवर्ष से बौद्ध धर्म के लोप हो जाने के कारण बिलकुल दूसरे हैं, भाषा का उनसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। बहुत सम्भव था कि आज संस्कृत के स्थान पर पाली प्रतिष्ठित होती और संस्कृत नाम ही हमारे देश से लुप्त हो गया होता। आज भी पाली और संस्कृत की स्थिति लगभग समान है। बुद्ध भगवान के मुख से निकली हुई पाली यदि इस देश की जनता याद नहीं रख सकी, तो शंकराचार्य की संस्कृतवाणी ही क्या उसे कंठस्थ है? इस देश से बौद्ध एवं पाली का लोप परस्पर अनुवर्ती तो अवश्य हो सकता है; किन्तु पाली को समझना लोग भूल गये। इस-लिए बौद्ध धर्म नहीं रहा, यह एक निराधार तर्क है।

बुन्देलखण्ड के साथ बुन्देलों का नाम अवि-च्छिन्न भाव से सम्बद्ध है। इसलिए हमारे कुछ मित्रों को यह भ्रम भी हुआ है कि इस आन्दो-लन के द्वारा सामन्तशाही की प्राचीन प्रथा का पोषण किया जा रहा है। वास्तव में उनको बुन्देलखण्ड नाम ही पसंद नहीं। हम उनकी इस समाजवादी भावना का हृदय से स्वागत करते हैं, किंतु बुन्देलखण्ड कहने से यदि हमें बुन्देलों की याद आ जाती है और अपने उस 'विन्ध्यखण्ड' की याद नहीं आती जहाँ अगस्त्य मुनि रहे हैं, जहाँ भगवान राम ने अपने सर्वोत्तम दिन बिताये, जहाँ महर्षि बाल्मीकि और अत्रि के आश्रम थे, तो इसमें सामंतशाही का कोई दोष नहीं, दोष स्वयं हमारा है। काशी के गहरवार राज के वंशज राजा-पंचम ने विंध्यवासिनीदेवी को अपने

रक्त की कुछ बूँदें चढ़ाईं, इसलिए उसके उत्तराधिकारी बुन्देले कहलाये—यह इतिहास का सत्य नहीं है, जन-साधारण की उर्वर कल्पना का आविष्कार है। बुन्देलखण्ड शब्द विंध्यखंड से बना है। विंध्यखण्ड के वासी होने की वजह से ही महाराज पंचम के वंशज आगे चल कर 'विंधेले' या 'बुन्देले' कहलाये। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'कवितावली' में एक स्थान पर मध्यदेश के निवासियों को 'विंध्य के वासी' कहा है। इससे स्पष्ट है कि यह प्रान्त उस समय भी 'विंध्यदेश' अथवा 'विंध्यखण्ड' के नाम से प्रसिद्ध था। आगे चल कर वही बिगड़ कर बुन्देलखण्ड बन गया। अतएव बुन्देलखण्ड से बुंदेले बने हैं, बुन्देलों से बुन्देलखण्ड नहीं बना है। ऐसी दशा में यदि किसी को बुन्देलखण्ड के मुख पर सामन्तशाही के 'भाव' नज़र आयें तो यह वास्तव में कल्पना का अत्याचार है।

यह बहुत स्पष्टरूप से बताने की आवश्यकता है कि हम अपने लिए किसी जाति या सम्प्रदाय विशेष का शासन नहीं चाहते। बुन्देलखण्ड के स्थान पर हम अपने नये प्रान्त का नाम 'विंध्यखण्ड' रख सकते हैं। सम्भव है, जिन लोगों को बुन्देलखण्ड नाम पसंद नहीं, वे फिर हमारे पक्ष में हो जायें और एक स्वर में कह उठें 'विंध्यखण्ड जाग्रत हो।'

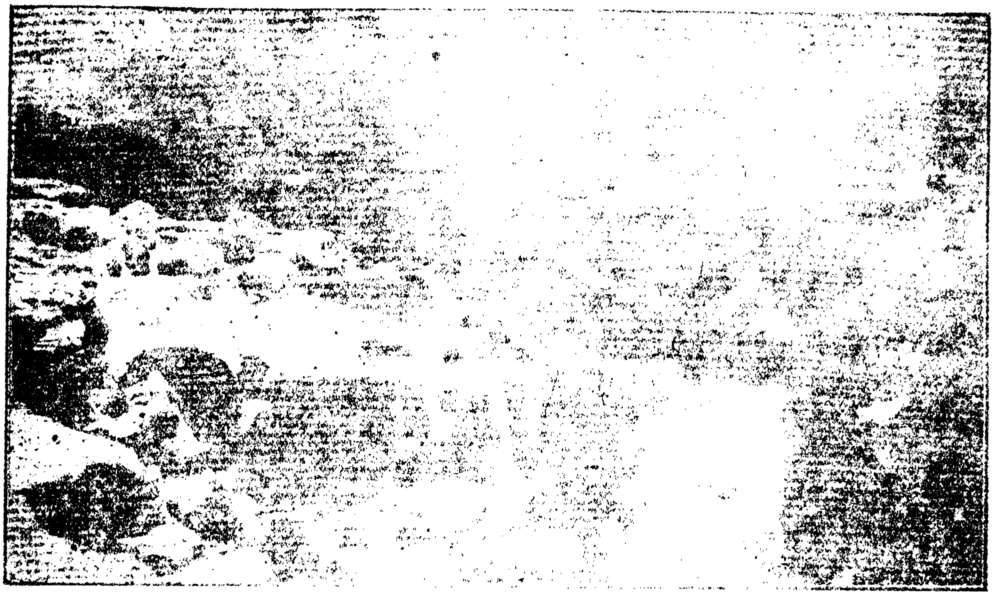
बुन्देलखण्ड का पुनर्निर्माण

स्वामी ब्रह्मानन्द, (संस्थापक—ब्रह्मानन्द हाई स्कूल, राठ)

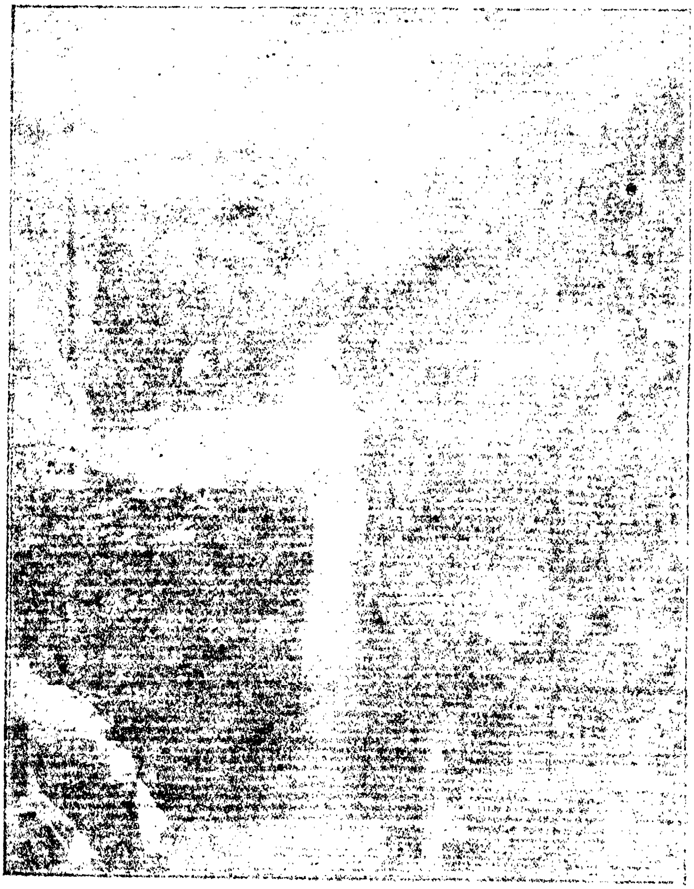
श्री सियारामशरणजी गुप्त का प्रान्त-निर्माण-विरोधी लेख हमने ध्यानपूर्वक पढ़ा। किसी भी कार्य को करने के पूर्व उसके पक्ष और विपक्ष में भली प्रकार विचार कर लेना आवश्यक होता है। बल्कि उस विषय पर जितना विवाद होता है उतना ही वह विषय अधिक स्पष्ट हो जाता है और इसी कारण हमें श्री गुप्तजी की बुन्देलखंड-प्रान्त-निर्माण पर की हुई आलोचना न तो दुःखद ही प्रतीत हुई और न विचित्र। वास्तव में बात यह है कि यह विषय जितना ही महत्वपूर्ण है, उतना ही आजकल के युग में नया है। उसकी रूपरेखा भी अभी जनता के सम्मुख नहीं आई। अतः विरोध होना स्वाभाविक ही है। प्रायः यह भी देखा जाता है कि साधकों की शक्ति, लगन और साधनों की थाह पाने के लिए भी विरोध किया जाता है और जब यह निश्चय हो जाता है कि साधक अपने उद्देश्य पर ध्रुव की भाँति अटल हैं, उनमें गम्भीर शक्ति और लगन है, तब विरोधी महानुभाव ही उनके सबसे बड़े सहायक बन जाते हैं।

श्री गुप्तजी ने इस समय प्रान्त-निर्माण के कार्य को एक नई नज़र से देखा है। उन्हें प्रान्त के नवीन संगठन के मूल में और ऊपर भी विभिन्नता के साथ-साथ विच्छिन्नता भी दिखाई दी है। इस योजना में विच्छिन्नता की कल्पना करना तो कवि-कल्पना के समान ही है। देश की अखंडता के हम प्रबल पक्षपाती हैं और यह जो कार्य किया जा रहा है, वह देश को पुष्ट बनाने के लिए ही है।

आज यदि राजकीय शासन-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न विभागों को खत्म कर दिया जाय। प्रान्त, कमिश्नरियां, ज़िले आदि मिटा कर हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक एवं बंगाल से अरब सागर तक की समस्त शासन-सम्बन्धी-कार्यवाहियाँ देहली से ही चलने लगें तो कल्पना नहीं की जा सकती कि देश की क्या-दशा हो जायगी। विभाजन तो शताब्दियों से नहीं, युगों से चला आता है, फिर भी अयोध्या, मथुरा, काशी, कांची, अवन्तिका, पुरी, द्वारावती""आदि के पवित्र गीत हम सदा से गाते चले आते हैं और



पांडव प्रपात तथा केन, सिआवन और [illegible] नदियों का संगम (उड़ला, जिला दमोह)



रनेह का छोटा प्रपात, केन नदी (बमहौरा)

गाते चले जायँगे, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ने का।

कथनी और करनी में बड़ा भेद है। कहने के लिए तो हम में से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ बहुतेरे पढ़ सकते हैं, पर प्रायः ऐसे लोग वसुधा की तो क्या, एक ग्राम की भी वास्तविक सेवा नहीं कर पाते। भारत की अखंडता तो अपने राजनैतिक, व्यापारिक, आर्थिक एवं कर्तव्य के दृढ़ बन्धनों में बाँध कर बलात् हमें अपनी ओर आकर्षित किये हुए है। उसकी सुरक्षा के लिए नारे लगाने की नहीं, ठोस कार्य करने की आवश्यकता है। आज यदि हम एक ग्राम को ही एकता और प्रेम के सूत्र में बाँध कर उन्नति के पथ पर ले जा सकें तो इतनी सेवा ही हमारी अखंड भारत की महान् सेवा होगी। दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में समस्त देश के नेतृत्व की महत्वाकांक्षा ने घर कर लिया है—

"लीडरों की धूम है फ़ालोअर है कोई नहीं।
सबतो जनरल हैं यहाँ, आख़िर सिपाही कौन है ?"

यही कारण है कि अंग-प्रत्यंग आज इतने शिथिल दिखाई दे रहे हैं। यदि हमें देश को बलवान् बनाना है तो उसके अंग प्रत्यंगों को पहले पुष्ट करना होगा।

"बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण के साथ-साथ कहीं बुन्देलखण्डी भाषा की प्रतिष्ठा न बढ़ जाय।" ऐसा कथन एक बुन्देलखण्ड निवासी के लिए आत्मघात करने के सदृश है और हमें विश्वास है कि वह गुप्त जी का अन्तर्नाद नहीं है और न उन्हें इस संबंध में अपने अग्रज श्री मैथिलीशरणजी का ही हार्दिक समर्थन प्राप्त हो सकता है। यदि श्री गुप्तजी को बुन्देलखण्डी भाषा की प्रतिष्ठा अभीष्ट न होती तो उनके अग्रज उन्हीं के सामने स्वतंत्रतापूर्वक पौकरी, धुरक रही, भरके नाले, अफ़र, डिडकार, विरछे एवं खोंसक छोटा आदि शब्दों के सफल प्रयोग न कर सके होते। भला मातृ भाषा पर किसकी ममता नहीं होती और यही कारण है कि स्वयं गुप्तजी इतना कहने से अपने को नहीं रोक सके कि—"बुन्देलखण्डी बोली (लेखक के मत से बुन्देलखण्डी भाषा) के शब्द-कोष के निर्माण, यहाँ की लोक-गाथाओं और कहावतों के संग्रह, यहाँ की साहित्यिक कृतियों के अध्ययन और प्रकाशन आदि के कार्य वास्तव में अभिनन्दीय हैं।"

यह निर्विवाद सत्य है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के कोष को व्यापक बनाने के लिये सभी प्रान्तीय भाषाओं के सम्मुख हमें भीख माँगनी होगी। और वे हिन्दी को कुछ दे सकें, इसलिए उनकी समृद्धि नितान्त वांछनीय है।

हिन्दी-भाषी-प्रदेशों में बुन्देलखण्ड ने अपने प्रान्त को संगठित करने की भव्य भावना लेकर देश के दिल को बलवान बनाने के लिए कमर कस ली है। हमारे सम्मुख जिन प्रान्तों ने ऐसे आदर्श उपस्थित किये हैं, हम उनके चिरऋणी हैं।

इस प्रकार के आन्दोलन से देश-रत्नों को घबराने की आवश्यकता नहीं है। वे तो यथा-स्थान ही रहेंगे। काशी के लाल कवि ने बुन्देलखण्ड केशरी महाराज छत्रसाल की 'छत्रप्रकाश' लिखकर और भूषण ने महाराष्ट्र-केशरी शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवराज भूषण' और शिवा बावनी लिखकर यह स्पष्ट कर दिया है कि रत्न तो सर्वत्र ही ग्राह्य और अभिनन्दनीय होते हैं।

यह बात भी कभी भुलाई नहीं जा सकती कि प्रान्त ही मनुष्यों को ऊँचा उठाते हैं। कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्रवासी बंगीय साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर यह बताते हुए कि बंगालियों के सांस्कृतिक संगठन को अधिक शक्तिशाली और विकासशील बनाने का महत्त्व समूचे भारत के लिए क्या है, कहा था, "ऐसी संस्कृति, जो दूसरों के अधिकारों को दबाती और अस्वीकार करती है, वह न केवल विघातक ही है, बल्कि वास्तव में संस्कृति है ही नहीं। भारत में जितनी संस्कृतियाँ हैं, उनके रूप चाहे भिन्न हों, किन्तु वे भारतीय संस्कृति ही होनी चाहिए और पारस्परिक विरोध की उनमें गुंजाइश नहीं

होनी चाहिए। वे ऐसी हों कि उनमें सच्ची भारतीय आत्मा प्रतिबिम्बित होती हो। अतः उनमें सामंजस्य की भावना होना आवश्यक है, विरोध नहीं। किसी भी संस्कृति के विकास में अनादर या घृणा को तो स्थान होता ही नहीं।" गुरुदेव तो भारत की ही नहीं, दुनिया भर की संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे।

जब कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ बंगालियों के सांस्कृतिक संगठन पर ज़ोर देते थे तो इससे क्या उन पर प्रान्तीयता फैलाने का अपराध लगाया जा सकता था।

मैं गुप्तजी के इस कथन का कि "प्रान्त के कुछ अभिमानी व्यक्ति संस्कृत एवं हिन्दी के सभी प्रमुख कवियों को बुन्देलखण्डी साबित करने का कठोर आग्रह करते हैं," आदर करता हूँ, ऐसे तथ्य-हीन निरूपण नहीं होने चाहिए। ऐसा करके हम अन्य प्रान्तों पर कुठाराघात करेंगे। अपने बंधुओं का ही स्वत्वापहरण करके अपना वैभव बढ़ाना न्याय नहीं है।

"प्रान्त के आन्दोलन के साथ प्रान्त-भाषा का प्रश्न अनिवार्य हो उठेगा।"—गुप्तजी का यह विचार ठीक भी हो, पर एक हद तक उससे कोई हानि नहीं दिखाई देती। जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीयभाषा एक होने पर भी देश-देश की भाषा शक्ति-भर अपना उत्थान करती रही है, उसी प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी के होते हुए भी प्रान्तीय भाषाएं अपनी-अपनी उन्नति कर सकती हैं। राष्ट्रभाषा को उनसे अधिकाधिक सहायता ही मिल सकती है। यदि बुद्ध भगवान ने पाली भाषा में उपदेश दिये थे तो इससे संस्कृत की अवनति नहीं हुई। साथ ही पाली भाषा भी अमर हो गई।

बुन्देलखण्ड स्वभावतः एक प्रान्त बना हुआ है। ब्रिटिश सरकार के बनाये हुए प्रान्त उसके नाम को नहीं मिटा सके। यहाँ के सभी श्रेणियों के निवासी अपने साधारण व्यवहारों में बुन्देलखण्डी भाषा को ही उपयोग में लाते हैं। पर यह आवश्यक नहीं कि यहाँ की अन्य शासन-सम्बन्धी-कार्यवाहियाँ हिन्दी में न हों, जब कि आज हिन्दुस्तान के सभी महत्त्वपूर्ण कार्य अंग्रेज़ी भाषा से ही चल रहे हैं। कोई भी प्रान्त राष्ट्रीय-भाषा से सम्बन्ध-विच्छेद करना न चाहेगा।

प्रान्त निर्माण की समस्या राजनैतिक समस्या तो है ही, पर साहित्य भी वही है, जिसका राजनैतिक समस्याओं से सामंजस्य हो, अन्यथा गुप्तजी के अग्रज श्री मैथिलीशरणजी गुप्त की इन पंक्तियों का महत्व ही क्या रह जाताः—

"भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में,
सिन्धुपार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।"

प्रान्त निर्माण का प्रश्न बड़ा महत्पूर्ण है और उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार होना चाहिए, मान लीजिए हमीरपुर ज़िले की अधिकांश जनता महोबा को ज़िले का सदर मुकाम बनाना चाहती है, क्योंकि हमीरपुर ज़िले की एक अन्तिम सीमा पर, यमुना और बेतवा से परिवेष्टित टापू पर अण्डमान की भाँति बसा हुआ है। बरसात में वहाँ पहुँचना कितना कष्टमय होता है, इसे उस ज़िले के निवासी ही जान सकते हैं। अतएव यदि यहाँ के निवासी ज़िले के पुनर्निर्माण का प्रश्न उठाते हैं तो वे क्या अन्याय करते हैं? बुन्देलखण्ड के समक्ष भी आज कुछ ऐसी ही समस्या है और उसकी पुनर्सङ्गठन की मांग सर्वथा उचित ही है।

बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्र यदि पुनर्निर्माण का प्रश्न नहीं उठाते तो हमें सोच लेना चाहिए कि उनका निर्माण भाग्यशाली घड़ियों में हुआ है, पर जब हम यू० पी० पर दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि उसका दक्षिणी और सी० पी० का उत्तरी भूभाग भाषा एवं सांस्कृतिक दृष्टि से जितना संबद्ध है उतना अपने ही अन्य विशाल भूभागों से नहीं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रान्तों का निर्माण सांस्कृतिक संगठन के आधार पर नहीं हुआ।

जिस प्रान्त के कुछ भागों को बेढंगे तौर पर अन्य प्रान्तों के साथ मिला दिया गया है, उसके पुनः एकीकरण की कामना कौन बुन्देलखण्डी

न करेगा ? गुप्तजी का इस विषय से हार्दिक विरोध नहीं है, अन्यथा उनके इस कथन का क्या तात्पर्य है—"जब हमारे हाथ में जनसेवा की उचित सत्ता आ जायगी तो निश्चय है कि फिर से हमें प्रान्तों का संगठन करना पड़ेगा। वर्तमान में तो न जाने कितनी निरंकुश सत्ताओं ने इस भूमिभाग का खंडन कर रक्खा है। ऐसे में यह प्रान्त निर्माण का आन्दोलन लंकाकाण्ड का पाठ छोड़ कर उत्तरकाण्ड का खंडित पारायण करने जैसा है?" इस संबंध में हम केवल यही कहेंगे कि वर्तमान परिस्थिति में लंकाकांड का पाठ बिना किये ही हमें उत्तरकाण्ड का पारायण करना होगा। इसी में हमारा कल्याण है।

एक समाधान

राजकुमार जैन साहित्याचार्य

'मधुकर के २२ वें अङ्क के जिस सम्पादकीय लेख में प्रसङ्गवश बुन्देलखण्ड प्रान्त के पुनर्निर्माण का समर्थन किया गया है, उसके विरोध में 'लोकमान्य' और 'जाग्रति' के सम्पादक महानुभावों के लेख पढ़ने को मिले। उन्हें पढ़ कर हमें आश्चर्य और खेद दोनों हुए। आश्चर्य इसलिए कि जिम्मेदार सम्पादक भी विभिन्न प्रान्त, उनकी भाषा और संस्कृति के सम्बन्ध में इस प्रकार की भद्दी भूल कर सकते हैं। खेद इसलिए कि इन्होंने अपने लेखों की भाषा में थोड़ा भी संयम से काम नहीं लिया।

इन लेखों से ये मन्तव्य प्रकट होते हैं:—

(१) बुन्देलखण्ड कोई प्रान्त नहीं है।

(२) बुन्देलखण्डी ब्रजभाषा के सिवाय कोई वस्तु नहीं।

(३) अवध, भिण्ड, भदावर, रुहेलखण्ड, काम्पिल्य, बुन्देलखण्ड और ब्रज की संस्कृति और रीति-नीति में कोई अन्तर नहीं। यह सब ब्रज-संस्कृति और उसकी रीति-नीति के ही अनेक रूप हैं।

(४) भाषा और बोलियों के आधार पर प्रान्तों के पुनर्निर्माण की आयोजना का अर्थ है पाकिस्तान को प्रोत्साहन देना।

'लोकमान्य' के सम्पादक ने अपने आशय को स्वयं अपने शब्दों में स्पष्ट किया है। "पर बुन्देलखण्डी बोली तो सर्वथा ब्रज-भाषा है। बुन्देलखण्डी बोली का ब्रज-भाषा से कोई पृथक अस्तित्व है, यह हम किसी प्रकार नहीं मान सकते।"

बुन्देलखण्डी बोली या भाषा की प्रस्तुत अस्वीकारता के मूल में अन्तर्हित रहस्य को ध्यान से सोचने पर यह तथ्य सामने आता है कि जब बुन्देलखन्ड ही कोई वस्तु नहीं है तब बुन्देली बोली या भाषा का अस्तित्व हो कहाँ से सकता है? और जब बुन्देली ब्रज-भाषा है तब बुन्देलखण्ड को भी ब्रज-खण्ड ही समझिये। लेकिन यह समझना यहीं तक सीमित नहीं है। इसका अर्थ होता है—बुन्देलखण्ड, उसकी संस्कृति, भाषा, उसके अतीत और वर्तमान वैभव और सौन्दर्य पर परदा डाल देना और भव्य भारत-श्री के एक अङ्ग को उससे वियुक्त कर देना। इस अति साहस को भारत मां का कोई सपूत नहीं देख सकता। राष्ट्रीय चेतना के युग में जब कि देश के प्रत्येक ऐतिहासिक स्वरूप को पहिचानना न केवल आवश्यक है, अपितु एक कर्त्तव्य भी है तब आइए, इस भारत श्री के एक अङ्ग—बुन्देलखण्ड—का हम भी कुछ सिंहावलोकन कर लें।

बुन्देलखण्ड का पूर्व इतिहास और सीमा

राजशेखर ने अपनी 'काव्य मीमांसा' में जिस 'पञ्चस्थलम्' का उल्लेख किया है और ह्वेनसांग तथा अन्य चीनी यात्रियों ने जो पाँच

इन्दु (हिन्द) बतलाये हैं, उनमें एक मध्य देश भी है। (स) इश्वाकु के समय के लगभग इसी मध्य देश में एक पुरुखा ऐल नाम का प्रतापी राजा था। उसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी। इनका वंश ऐल या चन्द्रवंश कहलाता है। पुरुखा का पोता नहुष था जिसके पुत्र का नाम था ययाति। ययाति के पाँच पुत्र थे—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु। पुरु के पास प्रतिष्ठान का राज्य रहा और उसके वंशज पौरव कहलाये। उसके दक्खिन-पूरब का प्रदेश तुर्वसु को मिला, अर्थात् उसने भी रूपों को जो पहले उसके देश में थे, अधीन किया। उसके पच्छिम में केन, बेतवा और चम्बल नदियों के आस-पास का प्रदेश यदु को दिया गया। चम्बल के उत्तर और जमुना के पच्छिम का प्रान्त द्रुह्यु को मिला। तथा उसके पूरब में गंगा-जमुना-दोआब का उत्तरी भाग अर्थात् अयोध्या से पच्छिम का प्रदेश अनु के हिस्से में आया। यदु के वंशज यादव कहलाये और उनकी एक शाखा हैहय वंश कहलाई। करन्धम के समय यादव राजा परावृट् हुआ, जिसकी सन्तान ने विन्ध्य और ऋक्षमेखला का पूर्वी भाग मेकल पर्वत तक अधीन किया और उसके दक्खिन एक नया राज्य स्थापित किया, जिसका नाम परावृट् के पोते विदर्भ के नाम पर विदर्भ हुआ। अथच विदर्भ के पोते चिदि के नाम से चर्मण्वती (चम्बल) और शुक्तिमती (केन) के बीच का, यमुना के दक्खिनी हिस्से का प्राचीन यादव-प्रदेश चेदि कहलाने लगा। वही आज कल का बुन्देलखण्ड[1] है।

महाभारत युद्ध से पहले वसुचैद्योपरिचर के समय न केवल उसके पड़ोस के कौशाम्बी (वत्सभूमि, प्रयाग के चौगिर्द का प्रदेश) और अरूष देश (बघेलखण्ड) चेदि के साथ एक ही राज्य में थे, प्रत्युत मगध और मत्स्य भी उसी राज्य में थे। बुद्ध के समय से ठीक पहले महा-जन पद-काल में चेदि या चेति और वत्स की एक जोड़ी गिनी जाती थी। दूसरी शताब्दी ई० पू० में कलिंग का राजा खारवेल चेत या चेति (चेदि) वंश का था।

१—देखिये, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जिल्द नं० १, पृ० सं० १२७, १३८, १४०।

चेदि नाम शुरू-शुरू में चम्बल और केन के बीच जमुना के दक्खिनी प्रदेश अर्थात् केवल उत्तरी बुन्देलखण्ड का था। आधुनिक बुन्देलखण्ड का दक्खिनी भाग उसमें अब से सम्मिलित हुआ, उसका कोई ऐतिहासिक निर्देश नहीं मिला है; किन्तु बोली की एकता सिद्ध करती है कि चेदि लोग बहुत आरंभ काल में ही जमुना प्रदेश से दूर दक्खिन तक समूचे बुन्देलखण्ड में पहुँच गये थे। मध्य काल में इस दक्खिनी बुन्देलखण्ड में जबलपुर के उत्तर तेवर या त्रिपुरा में एक हैहय राज्य था, जो चेदि कहलाता था। यदि यह दक्खिनी बुन्देलखण्ड शुरू से चेदि में न भी सम्मिलित रहा तो मध्यकाल में उसका 'चेदि' नाम पड़ जाने का यह एक कारण हो सकता है कि त्रिपुरी के राज्य ने कालिंजर का क़िला और उसका समूचा उत्तरी बुन्देलखण्ड, जो कि प्राचीन चेदि था, जीत लिया था। जो भी हो, उस समय से समूचे बुन्देलखण्ड का नाम चेदि है'। जो भी हो, उस समय से समूचे बुन्देलखण्ड का नाम चेदि है[1] चिदि के वंशज चेदि और चेदि के वंशज कालान्तर में चन्देल कहलाए। चन्देल वंश में जेजाक या जयशक्ति बड़ा प्रतापी राजा हो गया है। इसलिये कुछ समय तक तो इस प्रदेश का नाम 'जेजाक भुक्ति' हो गया था[2]। कुछ समय बाद बुन्देल राजपूतों के नाम पर

१—देखिए, भारत भूमि और उसके निवासी, पृ० सं० २०५, २०६।

२—दे०, बुन्देल वैभव, पृ० सं० ४२ में इस प्रकार लिखा है:—मदनपुर के सन् ११८२ई० के एक लेख से प्रकट है कि पृथ्वीराज चौहान और चन्देल परमार के युद्ध के समय भी यह देश जेजाक भुक्ति या शक्ति कहलाता था। मदनपुर का शिला लेख निम्नप्रकार है—

इस प्रान्त का नाम 'बुन्देलखण्ड' पड़ा। बुन्देले गाहड़ वालों के वंशज थे जो विन्ध्य में रहने के कारण बुन्देले कहलाये[3]। बुन्देलखण्ड केशरी महाराज छत्रशाल[4] इसी वंश के उज्वल रत्न थे। इनके समय में बुन्देलखण्ड की सीमाएँ, "इत जमुना, उत नर्मदा, इत चम्बल, उत टोंस" तक मानी जाती थीं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से आज भी मानी जानी चाहिए।

बुन्देलखण्ड—एक प्राचीन मार्ग

भारतीय इतिहास में बुन्देलखण्ड-मार्ग का स्थान कम महत्त्व पूर्ण नहीं है। प्रयाग जबलपुर वाला रास्ता ठेठ बुन्देलखण्ड-मार्ग है। बुन्देलखण्ड-मार्ग प्राचीन आर्य-काल में बहुत अधिक चलता था। भगवान् रामचन्द्र उसी रास्ते दण्डकारण्य गये थे। मध्य देश से दक्खिन का और मगध से भी पच्छिमी दक्खिन का रास्ता बुन्देलखण्ड में से ही है। गुप्त साम्राज्य के उदय से ठीक पहले बुन्देलखण्ड, महाराष्ट्र के साथ वाकाटकों के राज्य में था, समुद्रगुप्त ने जब उसे अपने अधीन कर लिया तब महाराष्ट्र के साथ वाकाटक राज्य और गुप्त साम्राज्य की सीमाएँ बुन्देलखण्ड में ही मिलती थीं। फिर सातवीं से दशवीं शताब्दी तक उत्तर भारत का केन्द्र कन्नौज रहा। कन्नौज के दक्खिन बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग अर्थात् प्राचीन चेदि देश में जो तब जेजाक भुक्ति या जुझौती कहलाता था, चन्देलों का राज्य था। और उसके दक्खिन तेवर या दक्खिन बुन्देलखण्ड में—जिसे तब चेदि कहने लग गये थे—कल चुरियों का। उन राज्यों के नाम कन्नौज की लड़ाइयों और मैत्रियों के इतिहास में लगातार सुनाई देते हैं। उनके इतने घनिष्ट पारस्परिक संबंध और लड़ाइयों को निबाहने के लिए बुन्देलखण्ड का मार्ग लगातार काम देता रहा होगा[1]।

बुन्देलखण्ड—एक प्राकृतिक प्रान्त,

श्रीयुत पं० जयचन्द्र जी विद्यालङ्कार ने 'भारत-भूमि और उसके निवासी' पुस्तक में लिखा है:—

"स्वाभाविक प्रान्तों की पहचान एक मात्र भाषा और बोली की एकता से नहीं होती। हमें भौगोलिक एकता और पिछले इतिहास में एक रहने की प्रवृत्ति पर भी साथ-साथ ध्यान देना है। सब बातों को देखते हुए हम कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक के इलाके को अर्थात् बांगरू, खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कनौजी और अवधी बोलियों के क्षेत्र को अन्तर्वेद प्रान्त कह सकते हैं और उसके दक्खिन बुन्देली, बघेली और छत्तीसगढ़ के प्रदेश को मिला कर चेदि-कोशल (बुन्देलखंड का पुराना नाम चेदि और छत्तीसगढ़ का दक्षिण कोशल)।

"या तो हम समूचे पूरबी-हिन्दी-क्षेत्र को एक प्रान्त कहें, अन्यथा यदि उत्तरी मैदान और विन्ध्य-मेखला के हिस्सों को अलग-अलग रखना हो तो अवध-प्रयाग और बघेलखण्ठ—छत्तीसगढ़ दो स्वतंत्र प्रान्त नहीं हो सकते, वे बहुत छोटे हैं। अवध-प्रयाग को अन्तर्वेद में और बघेलखण्ड-छत्तीसगढ़ को बुन्देलखण्ड के साथ रखना होगा।"

इसकी टिप्पणी में आपने लिखा है:—"यदि समूचे पूरबी हिन्दी क्षेत्र को एक प्रान्त मानना अभीष्ट हो तो उसका नाम कोशल बहुत ही सार्थक होगा; क्योंकि अवध प्राचीन उत्तर कोशल है और छत्तीसगढ़ दक्षिण कोशल, दोनों के बीच कौशाम्बी या वत्स भूमि (प्रयाग देश) और करूषदेश (बघेलखण्ड) में भी उत्तर कोशल की ही बोली है। उस दशा में हमारे

अरुणराजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वरसुनुना।
जेजाकभुक्ति देलोऽयं पृथ्वीराजेने लूनिता॥

३—दे०, इतिहास प्रवेश, पृ० सं० २५१।

४—इनकी राज-मुद्रा इस प्रकार है—

जगति विदितमुद्रो शासनो ह्यासमुद्रो (द्रः)।
सुजनजन सुहृद्यो छत्रसाला भिधानम्॥

दे०, मध्य प्रदेश का इतिहास और नागपुर भोंसले, पृ० सं० ७८।

१—दे०, भारत भूमि और उसके निवासी पृ० सं० ७७,७८,७९,

अन्तर्वेद और चेदि-कोशल। और कोशल में यह चार प्रदेश होंगे—उत्तर कोशल, कौशाम्बी, कारूष, दक्षिण।"

इस उल्लेख से 'लोकमान्य' के सम्पादक को समझ लेना चाहिए कि बुन्देलखण्ड भी एक स्वतंत्र प्रान्त है और 'मधुकर' की सम्पादकीय टिप्पणी में यह जो लिखा गया है कि "संयुक्त प्रान्त तथा मध्य प्रदेश में जो बुन्देलखण्ड के जिले अनाथों की तरह जबर्दस्ती घुसेड़ दिये गए हैं, वे अपनी जन्मभूमि में फिर से सम्मिलित हो नवीन जीवन का अनुभव करेंगे। बुन्देली भाषा अपनी भरपूर भेंट विधिवत् राष्ट्र भाषा को दे सकेगी। प्रान्त के मानव-समूह में प्रान्तीय गौरव के भाव उत्पन्न होंगे और एक अन्याय की समाप्ति हो जायगी।"—वह अन्याय का मिथ्यारोप नहीं है बल्कि बुन्देलखण्ड के उत्थान पतन का एक सजीव चित्रण।

क्या बुन्देली ब्रजखण्डी है ?

चूंकि इस प्राकृतिक प्रान्तीय परिगणन का आधार भौगोलिक और व्यावहारिक दृष्टि के साथ-साथ भाषा या बोली की एकता और अनेकता भी है तब अन्तर्वेद के अन्तर्गत ब्रजखण्ड की ब्रजभाषा और बुन्देलखण्डी एक कैसे हो सकती है। यह मानना तो प्रान्तीय परिगणन के मूलाधार पर ही कुठाराघात करना होगा। इस प्रामाणिक जाँच-पड़ताल को भी एक ओर रख दीजिये फिर भी ब्रजभाषा और बुन्देली का कोई भी जानकार दोनों को कदापि एक नहीं मान सकता। आज प्रान्तीय बोलियों के विशुद्ध रूप के नगरों में दर्शन नहीं मिल सकते, उनके सहज दर्शन हम देहातों ही में कर सकते हैं। ब्रजखण्ड के देहातियों की बोली सुनकर उसे ठीक समझ न सकने से बुन्देलखण्ड के देहातियों को हम आज भी आश्चर्यचकित पाते हैं। बुन्देलखण्ड के देहातियों की बोली सुनकर ब्रजखण्ड के देहातियों का भी यह हाल होता होगा, सो हमें नहीं मालूम। हमें इस बात का आग्रह नहीं कि बुन्देलखण्डी और ब्रजखण्डी में आंशिक भी आदान-प्रदान नहीं हुआ है। इसे हम मानते हैं और यह हमारी भारतीय व्यापक सहृदयता और अखण्ड भारतीयता का शुभ चिह्न है, लेकिन इस ऐक्य के रहते हुए भी तथा लिखित अनैक्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। बुन्देली भाषा है या बोली, यह एक अलग विषय है।

सांस्कृतिक विभिन्नता

'लोकमान्य' के सम्पादक महोदय ने अवध, भिण्ड, भदावर, रुहेलखण्ड, बुन्देलखण्ड, काम्पिल्य और ब्रज की संस्कृति को एक बतलाया है। इतना ही नहीं, वह इन खण्डों की संस्कृति को ब्रज-संस्कृति का रूपान्तर बतलाते हैं।

अवध, भिण्ड, भदावर, रुहेलखण्ड, काम्पिल्य और ब्रज की संस्कृति में कुछ अन्तर है या नहीं, इस संबंध में तो वहाँ के निवासी ही अधिकार के साथ प्रकाश डाल सकते हैं, लेकिन जहाँ तक बुन्देलखण्ड और ब्रज की संस्कृति का संबंध है हम दोनों को एक नहीं मान सकते। दोनों की संस्कृति को एक मान लेने का अर्थ है बुन्देलखंड या ब्रज की आत्मा का लोप कर देना। फिर बुन्देली भाषा के सहस्रों ग्राम-गीतों और कहानियों में अर्थात् बुन्देली वाङ्मय (साहित्य) में जो शहर की संस्कृति छिपी पड़ी है, उसे कौन ब्रज संस्कृति कहने का साहस कर सकता है। वेतवा, केन, धामनेर, चम्बल की संस्कृति भी क्या ब्रज संस्कृति है ? बुन्देलखण्ड के अनन्य उद्धारक महाराजा छत्रशाल, भ्रातृ प्रेम के पवित्र नशे में अपना सर्वस्व होमने वाले हरदौल और आल्हा-ऊदल की गौरव-गाथाओं में भी क्या ब्रज संस्कृति बोल रही है ? 'लोकमान्य' के सम्पादक इस बात से सहमत होंगे कि—अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखने वाले प्रफुल्लित फूलों से उपवन की महत्ता घट नहीं जाती। और एक फूल के व्यक्तित्व को दूसरे के व्यक्तित्व में मिला कर न केवल हम उस फूल के व्यक्तित्व का विनाश ही कर सकते हैं, बल्कि इस तरह उपवन की शोभा को विकृत करने के पाप से भी हम मुक्त नहीं हो सकते। ठीक इस प्रकार की दशा अपने भारत

के विभिन्न प्रान्तों की संस्कृति के लोप करने के सम्बन्ध की है।

यह उपेक्षा की वस्तु नहीं है,

भाषा और बोलियों के आधार पर प्रान्तों के पुनर्निर्माण की आयोजना, उपेक्षा की वस्तु नहीं है। हमारा हेतु साहित्यिक और सांस्कृतिक है और इसका यह आशय नहीं है कि हम विघटन नीति का समर्थन कर रहे हैं। हमारा आशय है, विघटित होकर भी जो वैज्ञानिक प्रान्तीय[1]-परिकर है उसकी भाषा और बोलियों में युग-युग से अन्तर्हित विभूति और गौरव को रूसाकार मूर्ति प्रदान करके उसमें नव चेतना डाल दी जाय और माता सरस्वती का मन्दिर उन विजन-विकसित भूलों की महक से भी सूना न रह जाय। यह विघटन कोरा विघटन नहीं है। इस विघटन में संमिलन उसी तरह छिपा है जैसा कि विघटन अखण्ड भारतीयता के इस संघात्मक विघटन को छोड़कर और है क्या ? इसका यह मतलब नहीं है कि हम अखण्ड भारतीयता को खंड-खंड में बांट कर उसके इसी रूप के पुजारी हैं। अखंड भारतीयता के संबंध में हमारी श्रद्धा भी अन्य किसी कदर कम नहीं है, लेकिन अखंड भारत की व्याख्या और मनुष्य की सीमित शक्तियों की ओर लक्ष्य रखते हुए भाषा और बोलियों के आधार पर प्रान्तों के पुनर्निर्माण भी आयोजना असंगत नहीं कही जानी चाहिए। सच्चे अर्थ में यही अखंड भारतीयता होगी, जिसमें प्रत्येक भारतीय अपनी भेंट को मातृ मन्दिर में श्रद्धा, नम्रता और आत्माभिमान के साथ चढ़ाकर अपने को धन्य समझेगा। इसके मूल में पाकिस्तान-जैसी दुर्भावना की संभावना करना अर्थ का अनर्थ करना होगा।

बुन्देलखण्ड-संकीर्तन

कवि-कुल तिलक कालिदास ने अपने एक पद्य[1] में जो दशार्ण देश का सुन्दर चित्र खींचा है। क्या यह बुन्देलखण्ड का संकीर्तन नहीं है ? और विश्व-वंद्य कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपने 'तपोवन' शीर्षक निबन्ध में प्रसंगवश आदि-कवि-चित्रित जिस नयनाभिराम चित्रकूट[2] का उल्लेख किया है, क्या वह बुन्देलखण्ड का गौरव-गान नहीं है ? मिश्र मिश्र ने अपने बृहत् संस्कृत विश्व-कोष (Gencyclopaldia) में जो बुन्देल-तिलक वीरसिंह नरेश का स्मरण[3] किया है, क्या बुन्देलखण्ड के इससे भी अधिक स्पष्ट जय-गान की आवश्यकता है !

१—'भारत भूमि और उसके निवासी' में इस प्रकार प्रान्तों का परिगणन किया गया है—

हिन्दी खण्ड में—१ अन्तर्वेद २ राजस्थान ३ चेदिकोशर ४ बिहार ५ नेपाल, पूरबखण्ड में ६ भूटान तथा आसामोतर प्रदेश ७ आसाम ८ बंगाल ९ उड़ीसा। दक्खिन खण्ड में—१० आन्ध्र ११ तामील नाड़ १२ सिंहल १३ केरल अर्थात् मलावार प्रान्त १४ कर्णाटक १५ महाराष्ट्र १६ गुजरात १७ सिन्ध या सिंध कलात १८ अफगानिस्तान १९ कपिश (काश्मीर) २० पंजाब।

१—पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै—
नींडारंभैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपय दिनस्थायिहंसा दशार्णाः॥
दे०, पूर्वमेघ पद्य सं० २३

२—एकैकं पादपं गुल्मं लतां वा पुष्पशालिनीम्।
अदृष्टरूपां पश्यन्ती रामं पप्रच्छ साबला॥
रमणीयान् बहुविधान् पादपान् कुसुमोत्करान्।
सीतावचन संरब्धः आनयामास लक्ष्मणः॥
विचित्रबालुका-जालां हंससारसनादिताम्।
रेमे जनकराजस्य सुता प्रेक्ष्य तदा नदीम्॥
सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं
नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम्।
ननन्द हृष्टो मृगपक्षि जुष्टां
जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात्॥
न राज्य-भ्रशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः।
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम्॥
दे०, विशाल भारत भाग १७ अङ्क ९

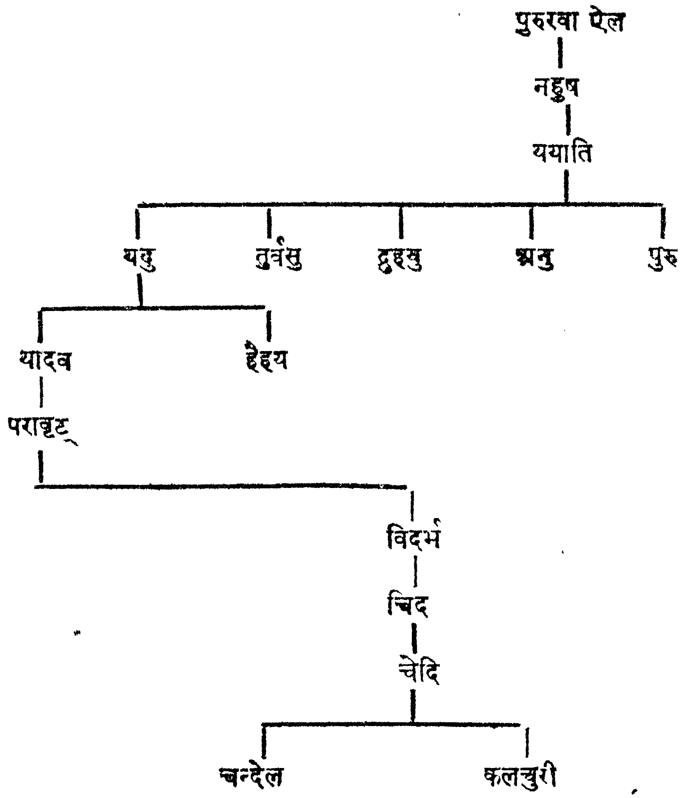
३—बुन्देलक्षितिपालवंशविलसद्रत्नं प्रभवं विना
यः पृथ्वीं निखिलां विधाय वशगां राज्यं
चकाराद्भुतम्।

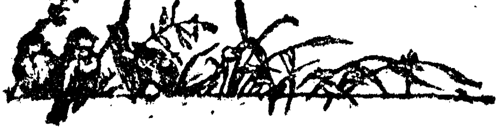
शौर्यौदार्य गुणैरगण्यमहिमा दातावदातांशयः
श्रीमान् कीर्तिसुधा-समुद्रलहरीनिर्धौतदिक्-
मण्डलः ॥
अस्ति स्वस्तिजकायमानकरका-नीहार-हार-प्रभा-
प्रादुर्भावपराभव-व्यसनिभिर्लिम्पन्
यशोभिर्दिशः ।

मुष्णन् वैरिमहांसि विश्वजनतां पुष्णन् समं
बंधुभि-
र्दिग्विख्यातबुँदेलवंशतिलकः श्रीवीरसिंहो
नृपः ॥

दे०, बुन्देल वैभव, पृ० सं० ५८

भारतीय इतिहास की रूप रेखा के आधार पर
बुन्देलखण्ड के प्राचीन शासक और उनकी वंश परम्परा ।





बुन्देलखण्ड-प्रान्त-रचना

श्री० नारायणदास खरे

बुन्देलखण्ड के एकीकरण पर कई दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। मैं यहाँ केवल वर्तमान भारतीय राजनैतिक अवस्था, देशी रियासतों की नीति और बुन्देलखण्ड की मौजूदा शासन-व्यवस्था एवं स्थिति को सामने रखकर यह बताने का प्रयत्न करूँगा कि इस समय उनके राजनैतिक सम्बन्ध कैसे उखड़खाबड़ हैं और राष्ट्रीयता की दृष्टि से उनमें सामंजस्य लाने के लिए क्या-क्या प्रयत्न होने चाहिए।

बुन्देलखण्ड के भूतकाल की ओर न जाकर उसके वर्तमान समय पर जब हम नज़र डालते हैं तो ओरछा निवासी होने के नाते हम अपने चारों तरफ झाँसी, जालौन, हमीरपुर, बांदा, टोड़ी-फतेहपुर, दमोह, खनियाधाना और कुछ-कुछ ग्वालियर, भोपाल, आदि देशी रियासतों तथा अंग्रेज़ी जिलों को फैला हुआ पाते हैं। छुटपन से हम इन जगहों के नाम मदरास, मैसूर, कराची, कानपुर, लाहौर और लखनऊ की अपेक्षा अधिक सुनते आये हैं। आसपास की रिश्तेदारियां, वाणिज्य, व्यापार, मेले-उत्सव, प्रसिद्ध घटनाएं और किस्से-कहानियां सब एक दूसरे से सम्बन्धित और मिलते-जुलते हैं। झाँसी बाजारका भाव घर बैठे मालूम होता रहता है। ओरछा-नरेश वर्तमान छतरपुर नरेशके फुफेरे भाई हैं व इनके चाचा बिजावर के भूतपूर्व नरेश थे। यह सब एक-दूसरे को निकट संपर्क में लाते हैं। बेरीबारन की हवेली, बिजना के दीवान, टोड़ीवारी दुलैयाजू, अछरू की माता ओरछा के चतुर्भुज भगवान इन सबके आम परिचय से हम एक-दूसरे के निकट हैं। बूढ़े बच्चे, स्त्री-पुरुष, सभी इन नामों को सुनते रहते हैं। अगर टीकमगढ़ की लड़की पन्ना ब्याही जाय या समथर का लड़का बीहट ब्याहा जाय तो एक दूसरे को दोनों जगह एक-सा मालूम होगा। एक-सी बोली, एक-सा पहनावा, एक-सी रीति-रिवाज और विचारधारा मिलेगी। रियासतों और अंग्रेज़ी ज़िलों में सामामजिक, धार्मिक आर्थिक या साहित्यिक स्थिति एक-सी है। हां, राजनैतिक विचार-प्रणाली अवश्य कुछ भिन्न हो चली है। इन सब ही जगहों के लोग अपने को बुन्देलखण्डी कहते हैं। रियासतों के अतिरिक्त जालौन, झांसी, बाँदा, सागर, दमोह, सभी जगह बुन्देलखण्ड डिवीजन, बुन्देलखण्ड-एक्ट, बुन्देलखंड एजेंसी तथा बुन्देलखण्डी बोली की चर्चा होती रहती है। इन तमाम समानताओं के बावजूद बुन्देलखंड, प्रान्त की राजनैतिक स्थिति एक चिड़िया-घर की-सी है, जिसमें रंग-बिरंगे घोंसले अलग नजर आते हैं।

फलस्वरूप बुन्देलखण्ड में विषमताएँ भी कम नहीं हैं। ओरछा, दतिया आदि राज्यों में महते को ५ प्रति सैकड़ा कमीशन देकर रैयतवारी प्रबंध है, चरखारी में ६० और ४० फीसदी पर जमींदारी तरीका शुरू किया गया है। झांसी और हमीरपुर में जमीदारों का प्रभुत्व इतना बढ़ गया है कि जनता उन्हें राजा कहती और रूलिंग चीफ़ मानती है। अगर अलीपुरा में पुनर्विवाह टैक्स आदमी देख कर ५ रुपये से १०० रुपये तक लिया जा सकता है तो टीकमगढ़ में ढाई और ५ की दर निश्चित है। यदि अलीपुरा में जुआ का ठेका बन्द कर दिया है तो पड़ोसी रियासतें जुये के मेले लगवाने लगी हैं। यदि एक राज्य में बाहर के निवासियों को सस्ती दर पर भूमि दी जा रही है तो दूसरी जगह सौ-सौ वर्ष की पुरानी खेती मय मकान, कुएँ, बागबगीचा आदि के लेली जारही है। कहीं छतरपुर, अलीपुरा आदि में केन्द्रीय ब्रिटिश सड़कों पर मुसाफिरों की सुविधा का कोई प्रबंध किये बिना पड़ाव-टैक्स ले लिया जाता है तो कहीं बिना किसी टैक्स के सरकारी डाक बंगले बने हैं। कहीं तेल, तमाखू, नमक ठेके पर बेचे जाते हैं

देशी रियासतों के बारे में कांग्रेस की नीति समय-समय पर घोषित की जाती रही है। 'अखिल भारतीय देशी राज्य-लोक-परिषद' भी शुद्ध रियासती जनता के मार्ग-प्रदर्शन का कार्य करती रही है। उन सबके अब तक के वक्तव्यों और नीतिका सार यही है कि छोटी-छोटी रियासतें, जो आधुनिक समय के अनुसार जनता की जरूरतों को पूरा कर स्वालम्बी नहीं रह सकतीं, उन्हें खतम कर दिया जाय। स्वावलम्बी रियासतों में जनता के प्रति उत्तरदायी शासन कायम किया जाय और वे केन्द्रीय सरकार की उसी तरह इकाई (ग) बनकर रहें जैसे कि भारत के स्थायित्व शासन प्राप्य अन्य सर्व प्रान्त। सर स्टफोर्ड क्रिप्स ने भी भारतीय गतिरोध के लिये जो योजना रखी, उसमें भी छोटी रियासतों के वर्तमान रूप को कोई स्थान नहीं है। काठियावाड़ तथा गुजरात की छोटी रियासतों का बड़ी रियासतों में मिलाया जाना इस सवाल के हल को और भी स्पष्ट कर देता है। इससे रियासती जनता की एकीकरण की माँग का कुछ अंशों में समर्थन ही होता है।

बुन्देलखण्ड की रियासतों में अधिकांश एक छोटे-से ग्राम से लगाकर १५–२० ग्रामों तक हैं। कुप्रबन्ध के कारण अथवा अन्य कारणों से पोलीटीकल-विभाग की निगरानी में अधिकांश रियासतों का शासन चल रहा है। वर्तमान व्यवस्था से जनता के तात्कालिक हितों की भी रक्षा नहीं हो पाती। स्थायी हितों की आशा तो कर ही कैसे सकते हैं। ऐसी दशा में बुन्देलखण्ड के सार्वजनिक सेवकों को, चाहे वह अंग्रेज़ी जिलों में हों या रियासतों में, स्थानीय कार्य-क्षेत्र व पड़ोसी-धर्म के नाते सबके राजनैतिक भविष्य की कल्पना करनी ही होगी। हमारा राष्ट्रीय ध्येय स्वराज्य-प्राप्ति है। बड़ी और स्वावलम्बी रियासतें अब तक के प्रकट जनमत के अनुसार उत्तरदायी सरकारें बनाकर स्वतन्त्र केन्द्रीय सरकार में शामिल हो जाँयगी, पर छोटी-छोटी रियासतों तो कहीं बाजार का कोई नियन्त्रण ही नहीं है। ओरछा में गेहूँ ६ सेर का बिक जाता है, पर पांच मील दूर झांसी में ३ सेर मिलना भी एक कठिन समस्या होती है। छतरपुर ओरछा से चोथाई होगा, पर वहां की शिक्षा और स्वास्थ्य का बजट ओरछा के बजट से दुगुना है जब कि होरपालपुर में सारी शिक्षा का उत्तरदायित्व एक मिशन स्कूल पर छोड़ दिया गया है। रियासतों की धाँधली अंग्रेज़ी इलाके के निवासियों के लिए भय का कारण है। अंग्रेज़ी इलाके के कारनामे रियासती जनता को विस्मित करते हैं।

छोटी-छोटी रियासतों में बड़े-बड़े मदरसों, अस्पतालों, पुस्तकालयों तथा संग्रहालयों की तो कल्पना ही नहीं की जासकती। आमदरफ्त के जरिये, पक्की सड़कें, नदियों के पुल, रेलवे लाइन सिंचाई के लिए बड़े बाँध और नहरें, उद्योग-धन्धों के लिये लकड़ी, तिलहन आदि के लिये बड़े कारखाने और व्यापार-वृद्धि के लिए सुविधा-जनक मंडियों आदि के बनाने की बात तो ध्यान में ही नहीं आ सकती, क्योंकि कदम-कदम पर शासन बदलते जाते हैं, जो परस्पर भिन्न, अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी हैं।

बुन्देलखण्डी रियासतों में नव जागरण करने के लिये 'बुन्देलखण्ड-मंडल 'कांग्रेस-कमेटी' की स्थापना की गई थी। परन्तु प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के आदेशानुसार प्रारम्भ से ही आस-पास के बुन्देलखण्डी अंग्रेज़ी जिलों से भी परस्पर सहयोग का आदान-प्रदान होता रहा। कांग्रेस के कार्य में रियासत मंडल के काफी कार्यकर्ता पड़ौसी जिलों के कार्यों में सम्मिलित हुए थे। बुन्देलखण्ड को एक मानकर ही बुन्देलखण्ड मंडल का प्रत्येक कार्य किया जाता है और सम्पूर्ण बुन्देलखण्डी का यथासम्भव प्रतिनिधित्व एकत्र करने के साथ-साथ उसके हित-साधन पर सामूहिक दृष्टि से किया जाता है। अनुभवों से सिद्ध हुआ है कि जब-जब हम बुन्देलखण्ड की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित कर संगठित काम में जुटे तब-तब हमें अधिक सफलता मिली।

का क्या होगा ? क्या हम यह सोचें कि छोटी रियासतों को बड़ी रियासतों में मिला कर उन्हें स्वावलम्बी होने लायक बड़ा कर लिया जाय बुन्देलखण्ड भर की समस्य रियासतों व जिलों को मिला कर एक बुन्देलखण्ड प्रान्त बनाया जाय ?

ऐसी स्थिति में बुन्देलखण्ड की जनता को सम्मिलित प्रान्त के लिए कुछ त्याग करना होगा। अलग-अलग राज्यों की सभाओं, प्रतिष्ठा और स्वार्थ छोड़ कर सम्मिलित बुन्देलखण्ड का गौरव अनुभव करना होगा और अखण्ड भारत के अन्य प्रान्तों के समान धरातल पर रहने की भावना को सर्वोपरि स्थान देना होगा। एक कल्पना उस दशा की भी हो सकती है जैसी, झांसी, बानपुर, जैतपुर, व बांदा राज्यों की १८५७ के विप्लव के बाद हुई। बुन्देलखण्ड जनपद के सांस्कृतिक जीवन की विशेषताओं की रक्षा के लिये आवश्यक होगा कि बुन्देलखंड की एकता कायम रखी जाय, अन्यथा बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक व साहित्यिक चिन्ह मिटते दिखाई देंगे और यह सांस्कृतिक विनाश न केवल इस प्रान्त के निवासियों के लिए वरन् देश के लिए भी दुर्भाग्यपूर्ण होगा। इसके यह मानी नहीं कि यहां आर्थिक व राजनैतिक स्थिति वर्तमान रूप में रहेगी। भारत में स्वतंत्र राजतंत्र शासन होगा और चिरगांव, झांसी, राठ, कालपी और ललितपुर की जो दशा होगी वही रियासती जनता की होगी। यह कल्पना उन घटनाओं को देखकर की जा रही है जो आज घट रही हैं, जिसमें जनता की अपेक्षा ब्रिटिश सरकार का हाथ अधिक है। भारत सरकार के पोलीटिकल विभाग ने बुन्देलखण्ड की छुटाई तथा असमर्थता को दूर करने के जो उपाय किये है, उनमें एक सम्मिलित हाईकोर्ट, एक पुलिस विशेषज्ञ, राजस्व विशेषज्ञ तथा एक प्रबंधक (एडमिनिस्ट्रेटर) की नियुक्ति है। यह सब कार्य बुन्देलखण्ड के एकीकरण के प्रयत्न हैं। परन्तु उनमें जनता को विश्वासपात्र नहीं समझा गया और न ऊपर से लादा हुआ यह घटाटोप जनता को पूर्ण उपयोगी ही हो सकता है। आवश्यक है कि भारत के समस्त अंगों का नव-निर्माण इस प्रकार का हो कि प्रत्येक अंग को पूर्ण राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विकास का अवसर मिले और वे अंग अखण्ड भारतके कल्याण को ही अपना सर्वोपरि कल्याण समझे। मौजूदा राजनैतिक बँटवारे को छोड़ मौलिक सामूहिक एकता का ध्यान दिये बिना हमारी कोई समस्या हल नहीं हो सकती। अंग्रेजी जिलों तथा रियासती कार्यकर्त्ताओं को एक साथ मिल-बैठकर राय देने और सामूहिक जिम्मेदारी अपने सिर पर लेने से ही इस प्रान्त की असली समस्याओं का हल निकल सकेगा और सांस्कृतिक एकता व चेतना भी कायम रहेगी।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी की रियासतों का शासन-सूत्र-संचालक पोलीटिकल एजेण्ट नौगांव में रहता है। उसके अधीन प्रत्येक राज्य को अपनी स्थानीय व सामूहिक समस्याओं के हल के लिए उसके सामने जाना पड़ता है। अधिकांश राज्यों का तो नित्यप्रति का प्रबन्ध भी उसकी देखरेख में उसके नियुक्त कामदारों द्वारा किया जाता है। इन कामदारों में न इतनी कल्पना-शक्ति है और न इतना साहस कि वे राजनैतिक अधिकार, नागरिक स्वतन्त्रता व आर्थिक व सामाजिक विकास के प्रश्नों पर विचार भी प्रकट कर सकें। उन्हें कार्य रूप में परिणत करना तो दूर की बात है। पिछले दिनों हमने नागरिक स्वतन्त्रता के प्रारम्भिक अधिकारों के लिए आन्दोलन किये हैं, या अन्य छोटी-छोटी बातों—बेगार, नाजायज़ टैक्स आदि को बन्द करने तथा स्वास्थ्य, शिक्षा, सफाई आदि के लिए आन्दोलनों को सीमित रखा है। बड़ी रियासतों की देखादेखी हमारा भी पृथक-पृथक रियासतों में उत्तरदायी शासन की माँग का नारा रहा है। पर इन रियासतों की छुटाई देख हमें स्वयं इस राजनैतिक

नाते पर शंका होने लगती है। देखने-सुनने वाले भी हँस सकते हैं कि बंकापहारी में, जो हजार-बारह सौ आदमियों की आबादी के गाँव मात्र का राज्य है, जहाँ के रूलिंग चीफ़ ट्रेंड अध्यापक, डाक्टर व थानेदार भी रख सकने में असमर्थ हैं तो वहाँ उत्तरदायी शासन या स्थायी राजनैतिक व्यवस्था क्या हो सकती है ?

यह क्षेत्र अलग-अलग रियासतों में बँटा है। उनमें एकता पैदा करने के लिए बुन्देलखण्डी रियासतों का संगठन मजबूत करना होगा। जनता की आवाज को वैधानिक ढङ्ग से सरकार तक पहुँचाने के लिए आवश्यक है कि हम सबको मिल-बैठकर बुन्देलखण्ड का राजनैतिक भविष्य सोचना पड़ेगा। इसी एक उद्देश्य को लेकर बुन्देलखण्डी भाई-बहिन परस्पर अधिक नजदीक आ सकेंगे। बुन्देलखण्ड के एकीकरण का महान उद्देश्य यही है। यह हमारी स्थायी और गौरवपूर्ण राजनैतिक माँग है और इसी की पूर्ति द्वारा हम सन्तोष के साथ अपनी, अपने जनपद तथा देश की उन्नति कर सकेंगे।

टीकमगढ़
(बुन्देलखण्ड)

संगम पर*

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

आज कई सौ वर्ष बाद बुन्देलखण्ड में इस भूमि की एकता की आवाज़ बुलन्द की जा रही है, इस भूमि के छिन्न-भिन्न अङ्गों को मिलाकर उनमें ऐक्य की भावना स्थापित की जा रही है। इतने दिनों बाद वह शुभ अवसर आया है, जब कि हम यह अनुभव कर रहे हैं कि यद्यपि दैवदुर्विपाक से हम भिन्न-भिन्न प्रान्तों के अलग-अलग ज़िलों में पड़े हुए हैं, हमारे ऊपर नाना प्रकार के पचासों शासक हैं, पर हमारी आत्माओं के भीतर अखण्ड बुन्देलखण्ड के प्रति प्रेम-भाव व्याप्त होगया है और इस भाव को विरोधी शासनों अथवा अन्यायपूर्ण विधानों द्वारा दबाया नहीं जा सकता।

आज वसन्त पंचमी है। क्या वृक्षों में आने वाली नवीन कोपलों को, आम्र की नवीन मंजरियों को कोई रोक सकता है ? क्या गुलाब की सुगन्ध पर कोई प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है ? क्या वसन्त की शीतल मन्द सुगन्ध पवन को रोकने की शक्ति किसी में है ? जामनेर नदी की जिस चट्टान पर बैठकर अभी थोड़ी देर पहले हम लोग बात-चीत कर रहे थे, वह आधी झाँसी जिले में है और आधी ओरछा राज्य में। क्या इससे चट्टान की एकता छिन्न-भिन्न होगई ? आज से शत शताब्दियों पहले कभी भूकम्प आया था और पृथ्वी के गर्भ से निकल कर लावा ने इस चट्टान का रूप धारण किया था, तत्पश्चात् सैकड़ों बाढ़ें आईं, हज़ारों बरसातें गुज़र गईं और अरबों-खरबों मन पानी इस चट्टान पर से निकल गया, पर यह अपने स्थान पर दृढ़तापूर्वक विद्यमान है। राजनैतिक उथलपुथलों के अनेक युग बुन्देलखण्ड ने देखे हैं और वे इस जनपद के अङ्गों को छिन्न-भिन्न करने में समर्थ भी हुए हैं, पर उसकी अन्तरात्मा को वे नष्ट नहीं कर सके और आज मानों वह गाढ़ निद्रा से पुनः जाग्रत होगई है।

भावना मुख्य वस्तु है

हम सभी साधारण कार्य्यकर्ता हैं और हमारे क्षेत्र भी बहुत परिमित हैं। वैसे किसी

* यह भाषण वसन्तपंचमी (१ फर्वरी) के दिन जमडार तथा जामनेर नदी के सङ्गम पर बुन्देलखण्ड के कुछ कार्य्यकर्ताओं के सम्मुख दिया गया था।

मनुष्य के भाग्य में क्या लिखा है यह कौन बतला सकता है—"पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः"—पर अनुमान द्वारा हम यह अवश्य कह सकते हैं कि हममें से अधिकांश का कार्य्यक्षेत्र अपना ग्राम, अपनी तहसील, अपना ज़िला (अथवा राज्य) ही रहेगा। बुन्देलखण्ड काफी विस्तृत प्रदेश है और अखिल बुन्देलखण्ड का सेवक बनना भी कोई मामूली बात नहीं है। आज इस समय हमारे सामने जो ४०-४५ कार्य्यकर्ता दीख रहे हैं, उनमें से अधिकांश को अपने-अपने ग्राम की सफ़ाई, तन्दुरुस्ती की ओर ध्यान देने में, ग्रामीण जनता के शुष्क जीवन में कुछ रस लाने में और उनमें मनुष्यता तथा समाज-सेवा के भाव भरने में अपना जीवन खपा देना होगा। और मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि आप लोगों का यह कार्य्य किसी विज्ञापित लीडर की सैकड़ों स्पीचों से अधिक महत्त्वपूर्ण होगा। जब भगवान रामचन्द्र जी ने समुद्र का पुल बाँधा था तो किसी गिलहरी ने रेत का एक कण लाकर उस यज्ञ में उनकी सहायता की थी। बस, श्रद्धा की इसी भावना से हमें बुन्देलखण्ड प्रान्त का पुनर्निर्माण करना है।

एक-एक कदम आगे

किसी ने कहा था "One step is enough for me" अर्थात् "मेरे लिये एक कदम आगे बढ़ना पर्याप्त है।" पहाड़ पर चढ़ने वाला यदि बार-बार सिर उठा कर ऊपर की ओर देखे तो उसे चक्कर आने लगेंगे। उसका कर्तव्य तो बस इतना ही है कि मार्ग की बाधाओं को बचाता हुआ वह आगे की और ऊँचे की ओर बढ़ता चले।

पहला काम

हमारा सबसे प्रथम कर्तव्य यह है कि हम अपने जनपद बुन्देलखण्ड को पहचानें। जब तक हम इसे भली भाँति जानेंगे नहीं, इससे प्रेम क्या करेंगे? बन्धुवर हज़ारीप्रसादजी द्विवेदी ने जब पहले-ही-पहल बम्बई-यात्रा की थी, रेल से आस-पास की रमणीक वनस्थली को देखा था और तत्पश्चात् समुद्रतट के दर्शन किये थे तब उन्होंने एक पत्र में लिखा था—"हमारी मातृभूमि इतनी सुन्दर है कि इसकी स्वाधीनता के लिये हम अपने प्राण भी न्यौछावर करदें तो कोई बड़ी बात न होगी।"

हम लोगों ने—जो आज बुन्देलखण्ड की महिमा का गुण-गान कर रहे हैं—क्या समस्त बुन्देलखण्ड देखा है? वास्तव में हम लोगों में से बहुत से कूप-मंडूक हैं और हम में अपने ज्ञान को विस्तृत करने की भावना का—जिज्ञासा का प्रायः अभाव ही है।

सब से बड़ा अपराधी

हम लोग जो अपने को लेखक कहते हैं, वास्तव में सबसे बड़े अपराधी हैं। हमारे और साधारण जनता के बीच में जो खाई खुदी हुई है उसे पाटने के लिए हम लोगों ने क्या प्रयत्न किया है। बुन्देलखण्ड के लेखकों तथा कवियों का कर्तव्य था कि वे इसके कोने-कोने को छान डालते और इसके सुन्दर-से-सुन्दर स्थलों का वर्णन गद्य या पद्य में करके इसका परिचय सर्व-साधारण को देते।

अथर्ववेद में एक मंत्र आया है—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः

अर्थात् यह भूमि माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूँ।"

आज हमारे कितने हिन्दी लेखक गर्व और सचाई के साथ इस मन्त्र का उच्चारण कर सकते हैं? यदि हम लेखक लोग अपने-अपने जनपद के नदी, नद, सरोवर, पशु, पक्षी, वृक्ष-जगत् का ज्ञान प्राप्त करके साधारण जनता को उनसे अवगत करा देते तो इस महती भारत-भूमि का कितना हित होता?

पुराणों के पुण्यात्मा लेखकों ने भारत के एक-एक सरोवर, कुण्ड, नदी और झरने का माहात्म्य गान किया था और उन्हें देवत्व प्रदान किया था। आज बुन्देलखण्ड के सैकड़ों ही सुरम्य-स्थल किसी आधुनिक कवि की ओजस्विनी

वाणी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हिन्दी के यशस्वी लेखक श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल ने ढाई वर्ष पहले 'जीवन-साहित्य' में 'पृथिवी-पुत्र' नामक एक छोटा-सा किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख लिखा था। उसमें उन्होंने इस नवीन (नवीन नहीं, प्राचीन) दृष्टिकोण का बड़ा विशद् वर्णन किया था। अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में क्या ही सुन्दर भाव आया है :—

'हे पृथिवी, जो तेरे वृक्ष, वनस्पति और शेर, बाघ आदि हिंसा जन्तु हैं—यहां तक कि जो सांप और बिच्छू हैं वे सभी हमारे लिए कल्याणकारी हों।'

वेदों के उत्तराधिकारी हम भारतीयों में पृथिवी के साथ यह सौहार्द्र नहीं पाया जाता, किन्तु पश्चिमी विद्वानों में यह खूब पाया जाता है।

इसी 'मधुवन' में कुलांचें मारते हुए बीसियों स्वर्णमृग (चीतल) आपको मिलेंगे, पर चीतलों के विषय में कोई सुन्दर ग्रन्थ या लेख भी किसी हिन्दी पत्र-पत्रिका में आपने पढ़ा है? श्रीयुत अग्रवालजी ने लिखा था :—

"हमने अपने चारों ओर बसने वाले मनुष्यों का भी तो अध्ययन नहीं शुरू किया। देशी नृत्य, लोक-गीत, लोक का संगीत सबका उद्धार साहित्य-सेवा का अंग है। एक देवेन्द्र सत्यार्थी क्या, सैकड़ों सत्यार्थी गांव-गांव घूमें, तब कहीं इस सामग्री को समेट पावेंगे। इस देश में मानों अपरिमित साहित्य-सामग्री की प्रतिक्षण वृष्टि हो रही है। उसको एकत्र करने वाले पात्रों की कमी है। लोक की रहन-सहन, वेश और आभूषण, भोजन और वस्त्र सबका अध्ययन करना है। जनपदों की भाषायें तो साहित्य की साक्षात् कामधेनुएँ हैं। उनके शब्दों से हमारा निरुक्त-शास्त्र भरा-पूरा बनेगा। हिन्दी-शब्द-निरुक्त, बिना जनपदों की बोलियों का सहारा लिये चल ही नहीं सकती। जनपदों की बोलियाँ कहावतों और मुहावरों की खान हैं। हम चुस्त राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए तरस रहे हैं, पर उसकी जो खानें हैं उनको खोदकर सामग्री प्राप्त करने की ओर हमने अभी तक ध्यान नहीं दिया। हिन्दी-भाषा की तीन हज़ार धातुओं को यदि ठीक तरह ढूँढ़ा जाय, तो उनकी सेवा से हमें भाषा के लिए क्या शब्द नहीं मिल सकते? पर हमारा धातु-पाठ कहाँ है? वह हिन्दी के पाणिनी की बाट देख रहा है। खेल और क्रीड़ायें क्या राष्ट्रीय-जीवन के अंग नहीं हैं? मेले, पर्व और उत्सव सभी हमारी पैनी दृष्टि के अन्तर्गत आ जाने चाहिएँ। इस आँख को लेकर जब हम अपने लोक के आकाश में ऊँचे उठेंगे, तब सैकड़ों हज़ारों नई चीजों को देखने की योग्यता हमारे पास स्वयं आ जायगी।..."

हमारे बुन्देलखण्ड में सैकड़ों लेखकों को ज़िन्दगी भर के लिये कार्य पड़ा हुआ है। यदि हम लोग 'काता और ले दौड़े' के सिद्धान्त का परित्याग करदें और एक-एक विषय को ले बैठें तो अपने जीवन में बड़े-से-बड़ा काम कर सकते हैं।

इस जामनेर नदी का जीवनचरित्र ही लीजिये। यह मोटी जिल्द जो आप देख रहे हैं, नील नदी का जीवनचरित्र है, जिसे लुडविग ने लिखा था। क्या हिन्दी में इस प्रकार का कोई ग्रन्थ किसी नदी के विषय में लिखा गया है? बुन्देलखण्डी कवियों तथा लेखकों से मेरा हार्दिक अनुरोध है कि वे इस क्षेत्र में आगे बढ़कर समस्त हिन्दी जनपदों के पथ-प्रदर्शक बनें।

इसी बुन्देलखण्ड के चित्रकूट में आकर भगवान रामचन्द्रजी ने जगज्जननी सीता से ये वचन कहे थे :—

"न राज्य भ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः।
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम्॥"

अर्थात् "इस रमणीय चित्रकूट पर्वत को देखकर राज्य से छूटने का भी मुझे दुःख नहीं होता और सुहृदों के पास से दूर रहना भी मेरे लिये कष्टप्रद नहीं होता।"

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं
नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थां,
ननन्द हृष्टो मृगपक्षि-जुष्टां
जहौ च दुःखं पुर विप्रवासात्।

अर्थात् "अयोध्या नगरी के वियोग से भगवान रामचन्द्र को जो दुःख हुआ था वह सब सुरम्य चित्रकूट पर्वत, सुतीर्थ माल्यावती नदी तथा पशु-पक्षियों द्वारा सेवित वनभूमि के सम्पर्क से जाता रहा।

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवधनरेस।
जिहि पै विपदा परति है सो आवत यहि देस॥

औरों की बात मैं नहीं जानता, पर अपने विषय में तो मैं कह सकता हूँ कि अपने जीवन के घोरतम संकट के दिनों में मुझे आपकी इस भूमि बुन्देलखण्ड ने शरण दी है और मैं जीवन-भर इसके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। आज इस प्रान्त के पुनर्निर्माण का समर्थन जो मैं कर रहा हूँ वह केवल इसी भावना से कर रहा हूँ कि चाहे अल्प अंशों में ही सही, इस प्रान्त के कर्ज़ को अदा करूँ। मेरी कोई राजनैतिक आकांक्षाएँ नहीं हैं, मैं कोई राजनैतिक कार्य्यकर्ता भी नहीं और अब इक्यावनवीं वर्ष में राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण करने की कल्पना भी मेरे दिमाग़ में नहीं आती :—

'आख़िरी वक़्त में क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे।'

पर किसी सजीव लेखक के जीवन को आप एकाङ्गी नहीं बना सकते। उसे किसी दम-घोंटू वायुमण्डल में आप चिरकाल के लिए नहीं रख सकते। कुँए में भला कोई कहाँ तक तैर सकता है?

मैं भी एक क्षुद्र लेखक हूँ, मेरे भी एक छोटा-सा हृदय है, एक आत्मा है जो विस्तृत कार्यक्षेत्र में जाने के लिए तड़फड़ाती है और मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि सन् १६४४ की वसन्त पंचमी को—और यदि होसके तो उससे पूर्व ही—मैं आपके इस प्रेम-बन्धन से मुक्त हो जाऊं। पर यह तो एक व्यक्तिगत बात है और इसकी चर्चा बढ़ाने की ज़रूरत नहीं। आप बुन्देलखण्डी कार्यकर्त्ताओं से मेरा विनम्र निवेदन यही है कि आप स्वयं बुन्देलखण्ड प्रान्त के आन्दोलन को हाथ में लेलें।

इस खेरई नामक जंगल को मैंने 'मधुवन' के नाम से पुकारा था और इस मधुवन के विषय में मैंने आज से पांच वर्ष पहले एक स्वप्न देखा था। उस स्वप्न के दो अंश सफल देखकर मेरा हृदय प्रफुल्लित है। एक तो मैंने उसमें 'मधुवन' नामक पत्र निकालने की कल्पना की थी और वह थोड़े से परिवर्तन के साथ 'मधुकर' के नाम से उपस्थित है। उसके ४८ अड़तालीस अङ्क आप पढ़ चुके हैं। दूसरा आपका यह 'शिविर' है। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस शिविर को आप स्थायी बनादें और इसके द्वारा आप 'वसन्त व्याख्यान माला' की आयोजना का भी प्रारम्भ करदें। जो भाषण टीकमगढ़ में आपने कराये हैं यदि उन्हीं को बुन्देलखण्ड प्रान्त के भिन्न-भिन्न नगरों तथा बड़े-बड़े ग्रामों में दुहरा दिया जाय तो इससे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जागृति में कुछ-न-कुछ सहायता मिल ही सकती है।

आत्मविश्वास की आवश्यकता

हमारा कर्तव्य है कि हम अपने में आत्म-विश्वास की भावना जाग्रत करें। आगरा और मथुरा इत्यादि में जो भयङ्कर आंधियां आया करती हैं, उनका प्रारम्भ राजपूताने के रेगिस्तान के किसी क्षुद्र भाग में हुआ करता है। किसी जगह पर हवा के झोंके से रेती के कुछ कण ऊपर को उठते हैं, हवा ज़ोर पकड़ती है, कणों का समूह बढ़ता जाता है, दूसरे स्थानों के पवन-प्रेरित कण इनमें मिल जाते हैं और ये सब प्रबल वेग से आगे बढ़ते हैं। फिर तो वे ज़बरदस्त आंधी का रूप धारण कर लेते हैं, जो वृक्षों को जड़ से उखाड़ती, छतों को दूर फेंकती और सारी प्रकृति को उलट-पलट करती हुई आगे बढ़ती जाती है। प्रान्त-निर्माण का आन्दोलन भी कभी प्रबल आँधी का रूप धारण कर लेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

यह खिलवाड़ नहीं

यह कोई खिलवाड़ नहीं, यह कोई दिल्लगी नहीं। लाखों आदमियों की सुप्त आत्माओं को जगाना मानों बिजली के सजीव तारों को छूना है,

और इस वन के उपयुक्त यदि उपमा दी जावे तो सोते हुए तेंदुए को जगाना है। बहुत सम्भव है कि जो महानुभाव प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे हैं वे बिल्कुल पिछड़ जावें। जब यह जनता का आन्दोलन बन जावेगा तब जनता स्वयंभू नेताओं को थोड़े ही सहन करेगी। उस समय तो त्याग तथा बलिदान के द्वारा जो कोई आगे आवेगा वही असली नेता बनेगा। पर उतनी दूर की सोचने की हमें ज़रूरत नहीं। हमें तो आज का काम विधिवत् आज करना है।

मैं जानता हूँ कि आप लोगों में से कई ऐसे होंगे, जो प्रान्त-निर्माण को स्वप्न ही समझते हों, अथवा जो कार्य को शङ्का की दृष्टि से देखते हों—चाहे वह शङ्का अपनी असमर्थता के कारण हो या आन्दोलन के वर्तमान कर्णधारों की अयोग्यता का ख़याल करके—कुछ भी क्यों न हो, मैं उन भाइयों से प्रार्थना करूँगा कि वे इस उन्मुक्त वायुमंडल में साफ-साफ इन आशङ्काओं को प्रकट कर दें। वसन्त पंचमी के दिन भी यदि हम अपने मन की बात न कह सकें, यदि आज भी हमारे हृदय की कली अधखिली ही रह जाय तो यह सचमुच बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन के लिये चार दृढ़-प्रतिज्ञ कार्य्यकर्ता चार सौ शिथिल ढीलमढाल आदमियों से कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।

इस समय कोई आपसे यह आशा नहीं करता कि आप बिना समझे-बूझे इस प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन में कूद पड़ें, पर इतनी आशा आपसे अवश्य है कि आप विधिवत् इस आन्दोलन का अध्ययन करें।

बुन्देलखण्ड के राजनैतिक इकाई बनने की बात से आप सहमत हों या न हों, पर साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अपने इस प्रान्त को प्रेम करने से आपको कौन रोक सकता है! क्या आप बरुआ सागर को केवल इसी कारण त्याज्य समझेंगे कि वह ओरछा राज्य में न होकर झांसी ज़िले में है? और माता बेतवा! माता वेत्रवती का, जो भोपाल, ग्वालियर, ओरछा तथा हमीरपुर को मिलाती है, क्या हमारे लिये कोई सन्देश नहीं है? क्या हम ऐसी आयोजना नहीं बना सकते, जो सांस्कृतिक तथा साहित्यिक धारा को ओरछा, भोपाल तथा ग्वालियर राज्य और हमीरपुर इत्यादि ज़िलों तक पहुँचा दे?

क्या ओरछा का तुङ्गारण्य केवल ओरछा राज्य वालों का ही है? हमारे नदी, नद, पर्वत, सरोवर, वन-उपवन केवल बुन्देलखण्ड के ही नहीं, सम्पूर्ण भारत के हैं और सबकी एकता को हमें अनुभव करना है। यदि आज हममें से कोई बेतवा का जीवन-चरित लिख दे तो कल वह ग्रन्थ अखिल हिन्दी-साहित्य की सम्पत्ति बन जायगा।

यदि भारत का कोई भी जनपद साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भली-भाँति संगठित हो जावे तो वह पचासों जनपदों के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित कर सकता है। यदि एक अमरीकन लेखक थोरो एक छोटे से तालाब 'वाल्डन' को अमर बना सकता है तो क्या हम इस प्रान्त के सैकड़ों सरोवरों में से किसी को भी अमर नहीं बना सकते?

हमारी जिस मातृभूमि में भगीरथ इक्कीसवीं पीढ़ी में गंगाजी को स्वर्ग से इस लोक में लाने में सफल हुए थे, किसी को निराश होने की आवश्यकता नहीं। यदि हममें से प्रत्येक यह प्रतिज्ञा कर ले कि हम अपनी सर्वोत्तम भेंट अपने इस जनपद—बुन्देलखण्ड—को देंगे तो कभी-न-कभी आगे चलकर हमारा यह प्रान्त प्राचीन गौरव को अवश्य प्राप्त करेगा। दान की महिमा विचित्र है। कबीर ने ठीक ही कहा था—

ऋतु बसन्त जाचक भया हरखि दिये द्रुम पात।
तातें नव पल्लव भया दिया दूर नहिं जात॥

संगम, मधुवन
टीकमगढ़
बसन्तपञ्चमी, १९९९ वि०

बुन्देलखण्ड प्रान्त क्यों हो ?

श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी

'मधुकर'-सम्पादक ने बोलियों के आधार पर प्रान्त-पुनसंगठन का प्रश्न उठाया है। उनका खास ज़ोर बुन्देलखण्ड को प्रान्त का रूप देने पर है। अतः 'बुन्देलखण्ड' नाम से पुकारे जाने वाले प्रदेश की विश्रंखल परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए उन्होंने लिखा है—"इस प्रकार बुन्देलखण्ड प्रान्त का निर्माण सर्वथा कल्याणकारी ही होगा। छोटे-छोटे राज्यों को विशाल जीवन प्राप्त होगा। क्षीणकाय नाले बृहत्सरोवर में सम्मिलित हो जायगे।" ये शब्द काफी स्पष्ट हैं और 'मधुकर'-सम्पादक के व्यापक दृष्टिकोण के साक्षी हैं। अतः 'लोकमान्य'-सम्पादक के शब्दों में 'विघटन नीति' इन शब्दों के पीछे कहाँ और कैसे छिपी हुई है, यह समझ में नहीं आता।

वर्तमान-राजनीति के प्रसिद्ध लेखक हैराल्ड लास्की ने अपनी एक नवीन पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है—"छोटे प्रजातंत्र राज्यों की हार आश्चर्य का विषय नहीं है। उनके पास उन साधनों का अभाव था, जो किसी स्वतंत्र सत्ता की तटस्थता के सिद्धान्तों को सार्थक बनाते हैं। और जब आत्म-रक्षा के प्रश्न पर उन्होंने वही ढील दिखाई, जो बड़े प्रजातंत्र राज्यों ने तो उन्होंने अपने सामूहिक दुर्भाग्य को निमंत्रण दे डाला।"

'मधुकर'-सम्पादक जब यह लिखते हैं कि छोटे-छोटे राज्यों का युग बीत चला है, और वे एकाकी खड़े नहीं रह सकते तो मानों लास्की के उपर्युक्त शब्द ही उनके वाक्य में प्रतिध्वनित हो उठते हैं। बुन्देलखण्ड को प्रान्त का रूप देने के पृष्ठ में सामूहिक सुरक्षा एवं पारस्परिक सहयोग की भावना ही काम कर रही है—ऐसा मैं 'मधुकर'-सम्पादक के वक्तव्य द्वारा समझ सका हूँ। यदि ऐसा है, तो इस योजना के विरुद्ध कहने को बहुत थोड़ा रहा जाता है। नागरिकता का एक बड़ा भारी सिद्धान्त है—"बड़े समुदाय के अधिक महत्वपूर्ण हितों के लिये छोटे समुदाय के कम महत्वपूर्ण हितों का बलिदान" अतः "बुन्देलखण्डी भाषा अपनी भरपूर भेंट राष्ट्रभाषा को दे सके (इसमें मैं इतना और जोड़ना चाहूँगा कि उस मनोरम प्रदेश में पनपने वाली जन-संस्कृति अपनी श्रद्धांजलि राष्ट्र को अर्पित कर सके,) इसके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि बुन्देलखण्ड के समस्त बिखरे जनपद एक में गुथ जांय, और वह प्रान्त में इसलिये संगठित हो कि एक स्वर में, विपुल शक्ति और उल्लास के साथ वायुमंडल को 'जय मातृ भूमि तेरी' की ध्वनि से परिपूर्ण कर दे।"

एक और भी महत्वपूर्ण बात ध्यान में रखने योग्य है। प्रान्तों का निर्माण स्थानीय शासन की सुविधा की दृष्टि से भी किया जाता है। भारतवर्ष जैसे लम्बे-चौड़े देश का शासन किसी एक केन्द्र से नहीं हो सकता। अतः संघ-शासन ही यहाँ के लिये सर्वोत्तम सिद्ध हो सकता है। जिन मामलों को एक केन्द्र से भली-भांति संचालित किया जा सकता है, उन्हें केन्द्रीय विषय रखना होगा। शेष विषयों को स्थानीय संघों के अधिकार में देना होगा। ब्रिटिश भारत के वर्तमान प्रान्त-विभाजन की तह में यही नीति काम कर रही है। भाषा की दृष्टि से यदि प्रान्त-विभाजन किया गया होता तो हिन्दी-भाषी प्रान्त इतना विस्तृत होगया होता कि उसका सुचारुरूप से शासन करना सम्भव न होता। अतः संयुक्त-प्रदेश आगरा व अवध, बिहार, एवं मध्य-प्रदेश इन तीनों को अलग करने की आवश्यकता पड़ी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि संयुक्त-प्रान्त की सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, रीति-रिवाज़ आदि लगभग एक रखने पर भी सरकार को उसका नाम देना

पड़ा—'संयुक्त प्रदेश, आगरा व अवध', तथा लखनऊ में एक चीफ़ कोर्ट की स्थापना करनी पड़ी। यह भी विचारणीय है कि उड़ीसा को बिहार से एवं सिन्ध को बम्बई से अलग करने पर इन प्रदेशों के निवासियों में वही आग नहीं धधक उठी जो बंग-भंग पर बंगालियों के हृदय में प्रज्वलित हो उठी थी। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि बिहार और उड़ीसा एवं बम्बई और सिन्ध की बोलियों में नाम मात्र की ही समानता है, अधिकांश में उनका अलग अस्तित्व है। आगरा प्रदेश व अवध की बोलियों में सिन्ध व बम्बई तथा बिहार व उड़ीसा की बोलियों से अधिक समानता है, फिर भी उनकी विभिन्नता ठोस सत्य है। अतः इन दोनों प्रदेशों का अलग अस्तित्व मानने पर सरकार को विवश होना पड़ा। ठीक यही तर्क बुन्देलखण्ड एवं ब्रज की बोलियों के विषय में लागू हो सकता है।

बुन्देलखण्ड को प्रान्त का रूप देने और पाकिस्तान की माँग उपस्थित करने को एक कहना तो किसी प्रकार भी उचित प्रतीत नहीं होता। पाकिस्तान की योजना सर जोगेन्द्रसिंह के शब्दों में—"Separation in the name of distinct—distinctions of cultures."—की योजना है। पाकिस्तान की योजना के सूत्रधार भारतीय संस्कृति के घोर विरोधी के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। अरब तथा मुस्लिम संस्कृति के नाम पर वे प्रदेश क़ायम करना चाहते हैं। पर बुन्देलखण्ड तो उन नदी-नालों की ओर अभिलाषापूर्ण दृष्टि उठा रहा है, जो इसलिये उल्लास-युक्त व्याकुलता के साथ गंगा में मिल जाना चाहते हैं, जिससे सागर की असीमता का वे शीघ्र अनुभव कर सकें। बुन्देलखण्ड के प्रान्त होने में यदि भारतवर्ष के टुकड़ों में बँटने का भय है, तो बुन्देलखण्ड जैसे सहस्र प्रान्तों की बलि द्वारा भी हम उस ऐक्य की रक्षा करेंगे। पर यह सम्भावना उठती ही कहाँ है? बुन्देलखण्ड तो शृङ्खला, संगठन और सहयोग पथ का पथिक होना चाहता है। वह तो मानवता के एक अंश की प्रकृत मनोहरता का विकास करना चाहता है। यह कार्य सरल नहीं है। अतः 'लोकमान्य'-सम्पादक के इस कथन से मैं अक्षरशः और हृदय से सहमत हूँ कि बुन्देलखण्ड-वासियों को बुद्धि-व्यायाम की आवश्यकता है। आक्षेपों के उत्तर द्वारा यह कार्य सिद्ध न होगा। यह योजना तो अनिवार्य उपयोगिता की नींव पर ही खड़ी हो सकेगी। 'लोकमान्य' एवं 'जाग्रति' के विज्ञ सम्पादकों द्वारा योजना की जो आलोचना उपस्थित की गई है, उसके द्वारा हमें विचारोत्तेजन प्राप्त हुआ है। हम इस योजना को स्पष्ट और पूर्ण एवं साभिप्राय बनाने की ओर बढ़ रहे हैं। रही विरोध की बात, सो हम 'पेरिकिल्स' के शब्दों द्वारा सान्त्वना प्राप्त कर सकते हैं—"हम प्रसन्नतापूर्वक दूसरों की रायें सुनते हैं और हम उनकी ओर से विमुख नहीं होजाते जो हमसे सहमत नहीं हैं।"

कानपुर]

विरोध—परिहार

श्री गोविन्दराय जैन शास्त्री, काव्यतीर्थ

'मधुकर'—सम्पादक ने जिस समय 'बिहारी विश्वकोष' 'जयन्ती स्मारक ग्रन्थ' के सम्बन्ध में अपनी साहित्य-गोष्ठी में चर्चा की, उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था। सभी लोग उनकी इस बात से सहमत हुए कि इसी प्रकार का बुन्देलखण्ड का भी एक विश्वकोष हम लोगों को तैयार करना चाहिये, क्योंकि बुन्देलखण्ड भी अतीत और वर्तमान गौरवों से भरपूर है। इसी

बात का उल्लेख 'मधुकर'—सम्पादक ने 'मधुकर' में किया। साथ ही यह भी लिखा कि प्रान्तों का निर्माण यदि भाषा और संस्कृति की दृष्टि से किया जाय तो प्रत्येक प्रान्त सजीव हो उठेगा, जिससे राष्ट्र की शोभा आशातीत बढ़ जायगी।

उनके इस वक्तव्य को पढ़कर कलकत्ते के 'लोकमान्य' तथा 'जाग्रति' नामक पत्र आवेश में आगये और इसी आवेशवश उन्होंने अपने-अपने पत्रों में इसका विरोध किया। उनके विरोध-सूचक लेख में निम्न-लिखित दो आपत्तियाँ पाई जाती हैं:—

१—बुन्देलखण्ड को एक पृथक प्रान्त बनाने की मांग करना अखण्ड भारत को पाकिस्तान के समान खण्ड-खण्ड में विभक्त करना है। अर्थात् देशद्रोह करना है।

२—बुन्देलखण्ड की बोली कोई स्वतंत्र बोली नहीं। वह एक प्रकार से ब्रजभाषा ही है। इस सम्बन्ध में अपने अंतर्गत भावों को निवेदन करना हम बुन्देलखण्ड वासी अपना कर्तव्य समझते हैं।

प्रत्येक पुष्प अपना-अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता हुआ जब पूर्ण रीति से योग्य वातावरण में पुष्ट होकर, खिलता है, तभी तो पेड़ या पौधा पूर्ण श्री को प्राप्त होता है। योग्य जल, प्रकाश, और योग्य वायु यदि उसे नहीं मिलती तो वह मुरझाया रहता है। और अपने उत्पादक पादप को शोभा-हीन किये बिना नहीं रहता। यदि चतुर और उद्यान-प्रेमी माली नहीं मिलता तो बगीचे के झाड़ और पुष्प-पत्रादि का एक प्रकार से पूरा फ़जीता हो जाता है। ठीक यही बात इस समय भारतवर्ष रूपी उद्यान पर लागू होरही है। इसका प्रबन्ध उन विदेशी लोगों के हाथ में है, जिनकी न इसके साथ कोई आत्मीयता है और न दुःख-सुख में हाथ बटाने की भावना, फलतः इसका जो दुष्परिणाम होना चाहिये, वह हम सब भुगत ही रहे हैं। नदियां और सागर दोनों ही हमारे लिये उपयोगी हैं। नदियाँ इसलिये कि उनसे सिंचाई होती है और सागर की वजह से मेह बरसता है। दोनों में से कोई भी निस्सार नहीं। यही बात भाषा और उपभाषाओं के बीच में है। भाषा वह है, जिसका राष्ट्र समान रूप से उपयोग करता हो और उपभाषाएं जिसकी ओर अनुधावन कर उसकी छाया-सी दिखलाई पड़ती हों। भाषा व्यापक अंश में काम करती है, उपभाषाएं सीमित अंश में। दोनों में ही कर्तृत्व-शक्ति समान है। एक का क्षेत्र विशाल है तो दूसरी का संकुचित, स्मरण रहे कि बोली, भाषा और उपभाषा दोनों से भिन्न चीज है, क्योंकि बोली बारह कोस के बाद बदल जाती है, जब कि भाषा या उपभाषा में यह बात नहीं पाई जाती। विशाल क्षेत्र में प्रयुक्त होकर भी ये परिवर्तित नहीं होतीं। अतएव जो लोग बुन्देलखण्ड की भाषा को बोली समझते हैं, मेरी राय में वे भ्रम में हैं। वह हिन्दी भाषा की उपभाषा है। वृक्ष के लिये जल उपयोगी है, क्योंकि उस पर ही उसका जीवन अवलम्बित है। ठीक इसी प्रकार किसी देश या प्रान्त की संस्कृति को जीवित रखने के लिये उस देश की भाषा को सजीव रखना अत्यावश्यक है। उच्चभाव भाषा का ही आश्रय पाकर अमर बनते हैं। भाव और भाषा एक दूसरे से कभी पृथक नहीं होते। अतएव किसी भी देश के निवासियों को अपने पूर्वजों के भावों का भंडार भाषा द्वारा ही प्राप्त होता है। वीरता, कष्ट, सहिष्णुता, विद्याप्रेम, न्यायप्रियता, ऐश्वर्य, वैभव, भोग, कीर्ति, सत्संग आदि मनुष्योचित अमृतमयी भावों को भाषा-रूपी माता दूध के समान पिलाती है।

भाषा और संस्कृति की दृष्टि से यदि बुन्देलखण्ड स्वतन्त्र प्रान्त बनाया जावे, जैसा कि वह पहले था, तो यह न्यायसंगत ही होगा। इसके न होने से क्या-क्या अनर्थ हो रहे हैं, यह बात सभी जानते हैं। जिस समय त्रिपुरी, जबलपुर आदि स्थान बुन्देलखण्ड में सम्मिलित थे, उस समय बुन्देलखण्डी बच्चा अभिमान से यह गाकर, "ताल तो भोपाल ताल और हैं तलैयाँ" इत्यादि फूला नहीं समाता था। पर

अब ऐसा नहीं होता। किं दुःख मतः परम्। किसी समय भेड़ा घाट के धुँआधार प्रपात को बुन्देलखण्ड में मान कर यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति उसके सौन्दर्य पर गर्व करता था।

विदेशियों ने अज्ञानवश या लापरवाही से जो ग़लतियाँ की हैं, उनकी पुनरावृत्ति स्वदेश-वासियों के द्वारा तो नहीं होनी चाहिये। प्रान्त-निर्माण का अर्थ यह नहीं कि बुन्देलखण्डी भाषा राष्ट्र-भाषा से पृथक होरही है। मैं पहले लिख आया हूँ कि बुन्देलखण्डी एक उपभाषा है, जिसका प्रवाह सदैव राष्ट्र-भाषा की ओर ही रहेगा। कहीं झाड़ से शाखा अलग होती है? और न इसका अर्थ यह ही समझना चाहिये कि हम अखंड भारत को पाकिस्तान की योजना की तरह खंड-खंड में विभक्त करना चाहते हैं। अन्य भारतवासियों की तरह बुन्देलखण्ड वासी भी पाकिस्तान का विरोध करते हैं। महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब आदि प्रान्त यद्यपि जुदे-जुदे हैं, फिर भी वे अखंड भारत से पृथक नहीं हैं, क्योंकि उन सब में एक ही संस्कृति अनुप्रोत है। उसी तरह हम बुन्देलखण्ड-वासियों की भी भावना है और हमारी यह भावना अखंड भारत की गौरवपूर्ण पूजा की ही योजना है।

राजनीति-कला अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे सब उसके प्रकाश से प्रकाशित, विकसित और पूर्णता को प्राप्त होती हैं। जो कलाएँ मुरझाई-सी पड़ी हैं, वे भी राजनीति का बल पाकर हरी-भरी होकर सर्वांग सुन्दर बन जाती हैं, इसीलिये बुन्देलखण्ड-भाषा-भाषियों का एक प्रान्त बनाने की बात लिखी गई, जिससे यहाँ की सब कलाएँ उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होकर जगमगा उठें। राजनैतिक रचनाएँ तो धूमकेतु के समान उदित और अस्त होती रहती हैं। पर भाषा मानव-जाति की तरह अमर होती है।

बुन्देलखण्डी भाषा को ब्रजभाषा कहना सर्वथा अनुचित कार्य है। उन दोनों में कितना अन्तर है, यह नीचे के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगाः—

ब्रजभाषा में कहते हैं—

"अरी लाली, लहौरौ लाला रोवत ऐ बेगि आ।"
"आवतिऊँ अम्मा गली में कंकरी तो चुभति ऐं।"

इसी बात को बुन्देलखण्डी में इस प्रकार कहा जायगा—

"ओरी बिटिया, नन्नौ भैया रोउत है झट्ट आ।"
"ओ मताई आउत हौं गैल में ककरा गड़त हैं।"

इस उदाहरण से पाठक जान सकते हैं कि इन दोनों उपभाषाओं में कितना फ़र्क है।

अनेक भेद-प्रभेद इन उपभाषाओं में भाषा-कोविदों को मिलते हैं। बुन्देलखण्डी भाषा का ब्रजभाषा के अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं, यह कहना सर्वथा अनुपयुक्त है।

मातृभाषा माता के समान वन्दनीय तथा हितकारिणी है। माता उसे दुग्ध-पान के साथ ही बच्चे को देती है। जिस प्रकार एक माता के बेटे 'भाई-भाई' कहलाते हैं, उसी प्रकार एक भाषा-भाषी भी 'भाई-भाई' होते हैं। हमारे भाई हमसे पृथक कर दिये गए हैं, यह बात हम लोगों को बंग-भंग के समान ही दुःखद है। भाँति-भाँति के रंग देकर भाई से भाई को जुदा करना या यहाँ की सभ्यता तथा गौरव को लुप्त करना अन्याय नहीं तो क्या है? अंग-भंग को पाकर सुखी भी कौन हो सकता है? बुन्देलखण्डी भाषा में भिन्न-भिन्न भाव-सूचक जिन शब्दों का प्रयोग होता है, वे अन्यत्र अलभ्य हैं इसलिये वे अपनी ओर भावुक हृदय को खींच कर मंत्रमुग्ध-सा कर देते हैं। साहित्यिक क्षेत्र में यदि बुन्देलखण्डी भाषा प्रकाश पा जावे तो राष्ट्र भाषा (हिन्दी भाषा) को वह भरपूर भेंट दे सकेगी। और स्वयं भी समृद्ध होकर सजीव हो जावेगी।

बुन्देलखण्ड का असली नाम 'विन्ध्यइलाखंड' है और उसका यह नाम विन्ध्याचल की तराई में बसने के कारण पड़ा है, संस्कृत में 'इला' का नाम पृथ्वी होता है। इसके पहले इस प्रदेश

का नाम 'दशार्ण' था। ईसा से पूर्व कात्यायन, कौटिल्य तथा कालिदास आदि ने अपने-अपने ग्रन्थों में इसी नाम का उल्लेख किया है :—

"प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे" "दशार्णो देशः नदी च दशार्णा" यह वार्तिक सिद्धान्त कौमुदी में कात्यायन के नाम से लिखा है। अर्थ-शास्त्र में भी कौटिल्य ने "दशार्णत्रवापराजितः" कह कर बुन्देलखण्ड में पैदा होने वाले हाथियों को उत्तम कहा है। कालिदास अपने मेघदूत में ये दो श्लोक लिखते हैं:—

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुल ग्राम चैत्याः।
त्वय्यासन्नेपरिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः ,
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसादशार्णाः॥
तेषांदिक्षुप्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं,
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्यलब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्,
सभ्रूभंगं मुखमिव पयोवेत्रवत्याश्चलोर्मि॥

'दशार्ण' शब्द का अर्थ होता है 'दश जलवाला' या दश दुर्ग भूमि वाला "ऋणशब्द दुर्गभूमौजले च इति यादवः" जिस तरह से पंजाब का नाम पाँच नदियों के कारण पड़ा मालूम होता है, उसी प्रकार बुन्देलखण्ड का दशार्ण नाम धसान, पार्वती, सिन्ध, बेतवा, चम्बल, जमुना, नर्मदा, केन, टोंस और जामनेर इन दस नदियों के कारण। इन नदियों में कुछ तो ऐसी हैं, जो बुन्देलखण्ड की भूमि को सींचती हैं और कुछ उसे घेरे हुए हैं।

जिस प्रकार ब्रह्माजी चतुर्मुख होकर भी एक ही हैं, उसी प्रकार प्रत्येक प्रान्त में विभक्त होकर भी जीवित राष्ट्र अविभक्त ही रहता है। कारण हृदय तो एक ही है। प्रान्त की उन्नति मुख्य वस्तु अवश्य है, पर दृष्टिकोण और भी अधिक विशाल होना चाहिये। जिस प्रकार समाज महान् है, उसी प्रकार व्यक्ति भी महान् है। इनमें एक भी उपेक्षणीय नहीं, दोनों ही पृथक-पृथक रहकर परस्पर के सहयोग से एक ध्येय में जुटे रहें तथा सबल बने रहें, यही चाहिये।

महरौनी झाँसी]

बुन्देलखण्ड का एकीकरण

श्री प्रेमनारायण खरे

बुन्देलखण्ड में बुन्देलखण्ड-एजेन्सी की तैतीस रियासतें भी हैं। यह छोटी-छोटी और अलग-अलग हैं। देशी रियासतों का भविष्य क्या होगा और भावी शासन-विधान में इनकी ठीक-ठीक स्थिति क्या होगी, यह तो देश के धुरन्धर नेता ही बता सकते हैं। हां, हमारे सामने जो और छोटी-छोटी समस्याएं हैं, उन्हें बुन्देलखण्ड के निवासी मिल-जुल कर बहुत अंशों में हल कर सकते हैं। ब्रिटिश सरकार और उसके आश्रित देशी नरेश तो अपनी जरूरतों को पूरा कर ही लेते हैं। जरूरत पड़ने पर अलग-अलग कई रियासतों पर भी एक ही कामदार निगरानी और शासन-प्रबन्ध करने लगता है। कभी-कभी एक रियासत में भी कई शासक भेज दिये जाते हैं। इसी तरह खर्च का भी सवाल है। सरकार की जरूरतों को पूरा करने के लिये नये टैक्स लगाना जनता के मत्थे कर्ज लेना और बड़े अफसरों के लिये अनेकों छोटे कर्मचारियों को अलहदा कर देना सहज बातें हैं। हमारे सामने तो सवाल जनता की उन्नति का है और इसी प्रश्न पर हमें गम्भीरता-पूर्वक विचार करना है।

हमारा संगठन

बुन्देलखण्ड में शिक्षा की कमी है। जनता गरीब है, सामयिक उन्नति के साधनों की कमी है। जो थोड़े बहुत साधन हैं भी, अलग-अलग होने के कारण हम उनका भी उपयोग नहीं कर

पाते। अगर किसी प्रकार हम अँग्रेजी इलाके या किसी रियासत में सभा करने और भाषण देने की इजाजत पा भी लेते हैं तो पड़ोस के दूसरे राज्य में नहीं जा सकते। इसी तरह जनता भी एक जगह प्राप्त साधन और सुविधाओं से दूसरी जगह लाभ नहीं उठा सकती। बुन्देलखण्ड जैसे लम्बे-चौड़े क्षेत्र में जो थोड़े से सुशिक्षित व्यक्ति, राजनैतिक एवं सामाजिक नेता और विद्वान हैं वे अलहदगी के कारण भिन्न-भिन्न रियासतों या अंग्रेजी जिलों की सीमाओं में बंधकर रह जाते हैं। उनसे भी सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को समानरूप से फायदा नहीं पहुँच पाता और न वे ही संपूर्ण बुन्देलखण्ड के साधनों का उपयोग कर पाते हैं। इससे जनता तथा देश के विकास में बहुत बड़ी कमी रह जाती है। वर्तमान स्थिति यह है कि बंका पहाड़ी, बिजना जैसी एक दो गाँव की छोटी रियासतों की जनता को तो सिरतोड़ परिश्रम करने पर भी अपने ही घर का मिडिल पास शिक्षक, सुधारक या पथप्रदर्शक पाने की आशा नहीं हो सकती। छोटे-छोटे ठिकानों में तो प्रजा को राजा और उसके कुटुम्बियों के सुख-साधनों को पूरा करने के लिये पाल रक्खा गया है। सरकार का पोलीटिकल विभाग अपने बड़े और सामूहिक संगठन के बल पर वहां की जनता पर शासन करने के लिए कभी भी और कहीं से भी हर दरजे की योग्यता के हाकिम और सिपाही-प्यादे भेजता रहता है। बुन्देलखण्ड भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टिपों से तो एक इकाई में बँटा है, राजनैतिक दृष्टि से भी इसके संगठन और एकता की जरूरत है। जनता सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की है उनके दुख-सुख और साधन भी बहुत-कुछ एक-से ही हैं। शासकों के मुकाबिले जनता का एक प्रभावशाली संगठन करने की जरूरत है, चाहे वह बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी इलाके की हो, अथवा किसी रियासत की।

हमारा कार्यक्रम

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में मिलकर नई सड़कें, नदियों से सिंचाई के लिये बांध और नहरें, शिक्षा और स्वास्थ्य के बड़े-बड़े केन्द्र तथा उद्योग-धन्धे और कल-कारखाने चलाने की योजनाएं संभव हो सकती हैं। अभी तो अलग-अलग हमारी ऐसी हालत होरही है, जैसी छोटे-छोटे पानी के गड्ढों और पुखरियों के जीवधारियों की होती है। न पुखरियों में बाहर से पानी आ सकता है और न बाहर जा सकता है। जो कुछ प्रवाहशून्य जल भरा है, वह वहांपर सड़ और सूख रहा है। रियासती जनता को तो जीवन-धारण करने योग्य जलराशि की खास कमी महसूस हो रही है। सबका कुछ न कुछ राजनैतिक भविष्य है, एक निश्चित क्षेत्र और उद्देश्य है। उसी के अनुसार स्पष्ट कार्यक्रम और साधन हैं। पर हम तो यह भी नहीं सोच पाते कि अखण्ड और स्वतन्त्र भारत में बुन्देलखण्ड का रूप कैसा रहेगा और उसके लिए अभी हम अपने यहाँ क्या करें? इतने अंधेरे में शायद बहुत कम जगहों की जनता होगी। इस अंधकार को मिटा कर हम प्रकाश में आना चाहते हैं। हम एक अखंड और स्वतन्त्र भारत के पुजारी हैं। न हम अपने लिए पाकिस्तान चाहते हैं और न कोई साम्प्रदायिक शासन। क्या हम प्रकाश पा सकते हैं?

हमारा कार्यक्षेत्र

हम यह खोज नहीं कर रहे कि बुन्देलखंड कहाँ-कहाँ है। हम जिस वायुमण्डल और देश-काल में रह कर बड़े हुए हैं, उसमें हमें सीख मिली है कि श्री गोस्वामी तुलसीदास महाराज, छत्रसाल, महारानी लक्ष्मी बाई आदि मानव-विभूतियाँ, कालिंजर, खजुराहो और चँदेरी की इमारतें तथा वेतवा, केन और धसान नदियाँ विशाल क्षेत्र में भारत की तो हैं ही, पर अलग-अलग और छोटे दायरे में भारत के अनेक दूरस्थ भागों की अपेक्षा वे हमारे अधिक निकट हैं। हम जिस बोली को बोलते हैं उसका नाम बुन्देलखण्डी कहा, सुना और लिखा जाता है। आज भी राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त, पं० परमानन्द और विश्व-विजयी गामा के हम अनेक भारतीय भाइयों की अपेक्षा अपने को

अधिक नजदीक समझते हैं। क्या इससे कोई संकीर्णता का अपराध हम पर लगाया जा सकता है ?

झाँसी और दतिया, ललितपुर और सागर, एरछ और पूंछ तथा बाँदा, हमीरपुर और चरखारी के बीच जितना फासला आज है, वही कल भी रहेगा। आज हम शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से भी एक-दूसरे से कुछ दूर मालूम पड़ने लगे हैं। कल सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के निवासी एक राज्य के समान ही अधिकारों वाले पड़ोसी नागरिक भी बन सकते हैं।

शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से बुन्देलखण्ड का वर्तमान बँटवारा जनता की उन्नति में बाधा डालता है। अंग्रेजी वालों को यह बात मौके आने पर ही अनुभव होती है, पर रियासतों की जनता को तो दिन-रात अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है, वह यह कि सरकार को भी अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिये अनेक रद्दोबदल स्वीकार करने पड़े हैं। अनेक बुन्देलखन्डी रियासतों के लिये शासन और न्याय का प्रबन्ध इकजाई होना शुरू होगया है।

अनेक विद्वानों का यह भी मत है कि भाषाओं के आधार पर भारत का पुनः संगठन किया जायगा, जिससे एक प्रकार की भाषा बोलने वाली जनता अनेक राजनैतिक इकाइयों में बँट कर अपनी सुविधानुसार रह सकेगी। वास्तव में यह सब कुछ जनता की उन्नति के लिए है और जनता ही उसका अन्तिम फैसला करने वाली है। जनता की आज की ज़रूरतों और सरकारी योजनाओं को देखकर इस समय यह नीति हमारे लिए लाभदायक सिद्ध होगी कि हम बुन्देलखण्ड के निवासियों का एक घनिष्ट और मजबूत संगठन बनालें और उसी के द्वारा बुन्देलखण्ड के सब मसलों को हल करते रहें। इस नये संगठन का पिछले संगठनों के साथ ऐसा सामंजस्य बिठाया जाय कि सब परस्पर एक-दूसरे के सहायक और पूरक सिद्ध हों। इस आयोजन से हमारी अबतक की अनेक कमियों की पूर्ति हो जावेगी। भावी बुन्देलखण्ड की नींव सुदृढ़ आधार पर रक्खी जा सकेगी और बुन्देलखण्ड-प्रेम का यह हमारा क्रियात्मक उदाहरण होगा। इसी में हमारा कल्याण है।

टीकमगढ़
(बुन्देलखण्ड)

ब्रजभाषा और बुन्देलखण्डी

श्री पं० मदनलाल चतुर्वेदी

'दैनिक लोकमान्य' में (और पश्चात् साप्ताहिक में भी) एक लेख इस आशय का लिखा गया था कि बुन्देलखण्ड भाषा अथवा बोली के आधार पर पृथक प्रान्त नहीं बनाया जा सकता। सांस्कृतिक आधार पर भी बुन्देलखण्ड प्रान्त बनने योग्य नहीं है। भाषा और बोली की दृष्टि से बुन्देलखण्ड युक्तप्रांताश्रित है और सांस्कृतिक दृष्टि से भी यही बात है। इसी प्रसंग में हमने लिखा था कि बुन्देलखण्ड की कोई पृथक बोली नहीं है। जो बोली वहाँ बोली जाती है सो ब्रजभाषा ही है। जो संस्कृति बुन्देलखण्ड की है सोई संस्कृति ब्रज की और युक्त-प्रांत के अन्य स्थानों की। लेख में "गम्भीरता संयम और समझदारी" से ही काम लिया गया था। किन्तु एक बुन्देलखण्डी लेखक ने अन्यथा समझा और जो उत्तर उसने दिया उसकी भाषा स्वयं कर्कश और कुरुचिपूर्ण है। उसकी बातों पर प्रकाश डालकर उक्त लेख के लेखक का भ्रम-भंजन करना हम उचित समझते हैं।

बुन्देला लेखक ने इस विषय में लिखा है—

"यह देखकर कि बुन्देलखण्डी बोली भी कोई चीज़ है और भारत के एक प्रदेश में उसके बोलने वाले भी मौजूद हैं 'लोकमान्य' के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।" वास्तव में हमें भी आश्चर्य है और अभी तक हम नहीं समझ पाये कि बोली कैसी होती है, क्योंकि हम यही समझते हैं कि बुन्देलखण्ड में ब्रजभाषा ही बोली जाती है। और उस समय से बोली जाती है जब 'बुन्देलखण्ड' नाम की भी सृष्टि न हुई थी। ब्रज और उसकी भाषा दोनों ही बहुत पूर्व से विख्यात चले आ रहे हैं। ब्रज और बुन्देलखण्ड में जो भाषा या बोली प्रचलित है, वह शौरसेनी प्राकृत से समुद्भूत हुई है, और संस्कृत भाषा के संयोग से वह परिमार्जित होते-होते वर्त्तमान स्वरूप को प्राप्त हुई है। बुन्देलखण्ड और ब्रज में जो बोली प्रचलित है वह एक ही व्याकरण से अनुशासित है। एक ही प्रकृति, एक ही प्रत्यय और एक ही प्रकार के क्रियापद, विशेषण सर्वनामादि हैं। किम्बहुना वे ही शब्द, वे ही कथनिकाएँ और सब कुछ वे ही हैं। ऐसी एकरूपता ब्रजभाषा के साथ अन्य बोली की नहीं है जैसी कि बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली बोली की है।

संस्कृत भाषा भारत-भर में एक सी ही है, क्योंकि वह एक व्याकरण से जटित है। हमने कभी नहीं सुना कि मद्रास के लोग संस्कृत भाषा को मद्रासी भाषा कहें और बङ्गाल में समझी जाने वाली संस्कृत भाषा को बङ्गाली बताने का साहस करें। हमने यह भी नहीं सुना कि जिस खड़ी बोली को आगरे वाले बोलते हैं उसे वे ब्रजभाषा कहने लगें और उसी खड़ी बोली को बुन्देलखण्ड के लोग बुन्देलखण्डी नाम दे दें, जबकि दोनों स्थानों में बोली, लिखी और समझी जानेवाली खड़ी बोली (आधुनिक हिन्दी) एक ही है, क्योंकि एक ही व्याकरण से अनुशासित है। आश्चर्य है कि एक ही व्याकरण से अनुशासित एक ही भाषा को कुछ लोग ब्रज में बोले जाने के कारण ब्रजभाषा नाम देना चाहते हैं और उसी को बुन्देलखण्ड में बोले जाने के कारण बुन्देलखण्डी। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने "मनसुखा और कक्का" शीर्षक लेख में लिखा है—कक्का बोला, "हमैं लेऊ काटि खाओ। मोय गुलगुलो लगो तो।" कुम्हारिन आँसू टपकाती हुई बोली, 'जैसी विपता मेरे ऊपर परि गई वैसी काऊ पै न परी होइगी।....हां, टीका को आयो तो बेटा, तुम्हारे ढिंग। मदद देबेकों को धरो है? विपता में को कीकौ होई।" ये सभी वाक्य पं० बनारसीदासजी ने कक्का और कुम्हारिन के मुख से कहे हुए ही लिखे हैं। ये तथाकथित बुन्देलखण्डी बोली के उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त, "तेरी मति कौने हरी धनसिंग, तेरी मति कौने हरी। छींकत घोड़ा पलानियो अरु बरजत भये असवार।' तथा ईसुरी के वाक्य "जानें कसाइन डारे जा कँकरा कसकनके"—ये सब भी तथोक्त बुन्देलखण्डी बोली के उदाहरण हैं। यदि किसी में सत्य का लवलेश भी अवशिष्ट है तो वह यही कहेगा कि उपर्युक्त सभी उदाहरण ब्रजभाषा के ही हैं, गद्य-पद्य दोनों ही के।

बुन्देला लेखक ने पूछा कि "बुन्देलखण्ड में जब सब कुछ ब्रजखण्ड का है तो बुन्देलखण्ड नामकी जगह फिर है कहाँ? मथुरा या अलीगढ़ के चौगरदे में, या गोकुल और वृन्दावन के करील कुञ्जों में?" इसका उत्तर हम क्या दें? यही उत्तर है कि मथुरा, अलीगढ़, गोकुल, वृन्दावन और ब्रज, बुन्देलखण्ड सभी अपने-अपने स्थान पर हैं, पर भाषा इन सभी स्थानों की एक है, जिसका नाम ब्रजभाषा है, बहुत दिनों से जो विख्यात चला आरहा है। लेखक ने लिखा है—"सहयोगी के लिए बुन्देलखण्डी, अवधी ब्रजबोली, बघेली आदि बोलियों में कोई अन्तर नहीं। वे सब एक हैं, और ब्रजभाषा का ही रूप हैं। सीधे शब्दों में 'लोकमान्य' यह क्यों नहीं कहता कि वे सब ब्रजभाषा से ही निकली हैं। न जाने क्यों बुन्देलखण्डी पर उसकी विशेष कृपा है? इसलिए विशेष ज़ोर देकर वह कहता है कि

बुन्देलखण्डी बोली तो सर्वथा ब्रजभाषा है।" वास्तव में हमारा आशय यही है जो बुन्देले लेखक ने उपर्युक्त पैरा में लिखा है। बुन्देलखण्डी पर विशेष कृपा का कारण यह है कि भृंगी-कीट न्याय से ब्रजखण्ड और बुन्देलखण्ड की भाषा एक ही है। प्रिय वस्तु पर मोह और कृपा किसे न होगी?

बुन्देला लेखक पुनः जिज्ञासा करता है कि "यदि अवधी ब्रजभाषा का ही एक रूप है और बुन्देलखण्डी भी ब्रजभाषा ही है तो निस्सन्देह समस्त भारत में ही नहीं, बल्कि उत्तरा-खण्ड के अधिकांश प्रदेशों में भी ब्रज-बोली का ही बोलबाला रहा होगा। भारतीय इतिहास के किस युग में ऐसा हुआ, हमें इस बात का ज्ञान नहीं। क्या सहयोगी इस बात का दावा कर सकता है कि सारा जबलपुर और दमोह के जिलों में जो भाषा बोली जाती है वह ब्रजभाषा ही है?" उत्तर भारत की सभी बोलियां विभिन्न प्राकृत भाषाओं और संस्कृत के मिश्रण से बनी हैं। प्राकृत भाषाओं में थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। जब प्राकृत भाषाएँ विकृत होने लगीं और संस्कृत का मिश्रण उनमें होता गया तो अल्प-स्वरूप भेद से जो बोलियां विकसित हुईं, वे भी एक ही प्रकार की हुईं। सब बोलियों में प्रधान और साधु शौरसेनी और संस्कृत के मिश्रणवाली बोली मानी गयी, क्योंकि वह मधुर थी। उसमें साहित्य-निर्माण भी होने लगा। सर्वत्र वह मान्य हुई। उसकी मुद्रा अन्य बोलियों पर भी पड़ी और इतनी अधिक पड़ी कि वे सभी शौरसेनी में घुल मिल गईं। अत्यन्त सूक्ष्म व्याख्या करने पर ही उनका भेद समझने में आ सकता है। पर शौर-सेनी की छाप से वे बची नहीं हैं। शौरसेनी से उत्पन्न होने वाली बोलियों में प्रधान भाषा ब्रज-भाषा ही है। अन्य प्राकृत भाषाओं पर भी उसने अपनी मुद्रा अङ्कित कर दी है और वे इसी में समा गई हैं। गुजराती भाषा तक ब्रजभाषा के प्रभाव से नहीं बची। गुजराती का प्राचीन साहित्य बहुत कुछ ब्रजभाषा का साहित्य है। सुदूरस्थ गुर्जर लेखकों ने ब्रजभाषा में कविता की है। राजस्थानी भाषा का साहित्य ब्रजभाषा का साहित्य है। मारवाड़ी कवियों ने ब्रजभाषा में कविता लिखी है। गुरु नानक और गुरु गोविन्द-सिंह तथा अन्य कवियों ने भी ब्रजभाषा को अपनी भाषा बनाया और ग्रंथ लिखे, यद्यपि पंजाबी भाषा पृथक रही है, जिसके और ब्रज-भाषा के संयोग से खड़ी बोली बन गई। अवध के कवियों ने ब्रजभाषा को अपनाया और अवधी ब्रजभाषा में घुल-मिल गई। अवध के कवि मलिक मुहम्मद जायसी अलाउद्दीन खिलजी के समय में हुए हैं। इनकी भाषा अवधी संयुक्त ब्रजभाषा ही है। बिहार में विद्यापति ने ब्रजभाषा में कविता लिखी। बङ्ग-भाषा के आदि कवि चण्डीदास १४ वीं शताब्दी में हुए हैं। उन्होंने जो भाषा लिखी वह और विद्यापति की भाषा बङ्ग देश में "ब्रज बुलि" के नाम से विख्यात है। मद्रास और महाराष्ट्र देश में अभी तक ब्रजभाषा में रचे हुए गीत ही गाये जाते हैं। संस्कृत के पश्चात ब्रजभाषा ही भारत की राष्ट्र-भाषा और साहित्य की भाषा रही है। वैष्णव सम्प्रदाय के विकास से ब्रजभाषा अधिक फैली। अब ब्रजभाषा और पंजाबी भाषा के मेल से बनी खड़ी बोली भारत की राष्ट्र-भाषा है। अब यदि जबलपुर, सागर और दमोह में वैसी ही बुन्देलखण्डी बोली जाती है जैसी झाँसी, बांदा, ओरछा, ग्वालियर आदि में तो वह ब्रजभाषा के अतिरिक्त और कोई भाषा हो ही कैसे सकती है? विभिन्न प्राकृत बोलियों के प्राधान्य से स्थान-स्थान पर बोलियों में कुछ अन्तर हो सकता है और होगा, पर देखिये यह कि मुद्रा किस भाषा की है।

ब्रज और बुन्देलखण्ड की संस्कृति एक है, इस पर भी बुन्देला लेखक को आपत्ति है। खान-पान, रहन-सहन, भाषा-भाव, वेश-भूषा आदि उपकरण संस्कृति के द्योतक हैं। हमें ब्रज और बुदेलखण्ड की इन सब बातों में एकरूपता दिखाई देती है। ऐसे तो पार्थक्योपकरण कण-कण में विद्यमान है और उन्हें यदि महत्व देंगे।

तो सर्वत्र भेदभाव ही दृष्टिगोचर होंगे। जो भेदभाव और भूल-भ्रान्ति के भँवर में भ्रम रहे हैं, उन्हें ब्रज और बुन्देलखण्ड के संस्कारों में अवश्य ही भिन्नता मिलेगी।

चेदि और त्रिपुरी, देवगढ़ और पद्मावती आदि स्थल अपने-अपने स्थानों पर हैं। बुन्देला लेखक के कथन से भी ज्ञात होता है कि वे पृथक-पृथक राज्य थे। हम नहीं समझते कि इन राज्यों के निवासियों में यदि स्वाभिमान और स्वराष्ट्र भावना जाग्रत होगी तो ये अपने को बुन्देलखण्डी क्यों कहेंगे? क्यों न अपने-अपने प्राचीन गौरव स्मरण कर अपने-अपने राष्ट्र के नाम से विख्यात होने में गौरव अनुभव करेंगे? बुन्देलों की वीरता वन्दनीय है, पर आल्हा-ऊदल की वीरता का तो भाई-भाई का गला काटने में ही व्यय हुआ, और स्त्रियों के पीछे। आल्हा-ऊदल के साथ उरई के माहिल का नाम बुन्देला लेखक ने न जाने क्यों स्मरण नहीं किया। वह भी एक कला में निपुण था। हो सकता है बुन्देलखण्ड की संस्कृति का वही प्रतिनिधित्व करता हो। निश्चय ही ब्रज और बुन्देलखण्ड में जहाँ एक रूपता है, वहाँ उपर्युक्त वीर बुन्देला माहिल की कला के विषय में विभिन्नता है। सत्तरहवीं और अठारहवीं शताब्दी के बुन्देले-चित्रों की पोशाक अवध और रुहेलखण्ड के नवाबों की पोशाक से क्यों मिलेगी? हिन्दू और मुसलमानों की संस्कृति में तो अन्तर है ही। इसी समय के ब्रज और बुन्देलखण्ड के हिन्दुओं की पोशाक अवश्य एक मिलेगी और अब तक एक चली आ रही है।

भाषा के माधुर्य पर यह कहना है कि हमें ब्रजखण्ड या बुन्देलखण्ड की बोलियों के माधुर्य का समर्थन नहीं करना। यह इस लेख का विषय नहीं। हाँ, यह अवश्य कहना है कि दोनों स्थानों की भाषा एक है और यदि एक स्थान का माधुर्य विख्यात है तो दूसरे स्थान को उससे गौरवान्वित होना ही पड़ेगा। ब्रज में यदि ब्रजभाषा का माधुर्य नष्ट हो गया तो वास्तव में खेद की बात है, पर सन्तोष इतना ही है कि बुन्देलखण्ड उसके माधुर्य की रक्षा किये है। आगे से कोई पूछे कि ब्रजभाषा का माधुर्य कहाँ मिलेगा तो कह देना उचित है कि ब्रजभाषा अब अपने माधुर्य सहित बुन्देलखण्ड में चली गई है। इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं। बुन्देला लेखक ने एक सहस्र बुन्देलखण्डी ग्रामगीत भेजने को कहा है। सो वे भेज दें। बड़ा उपकार होगा। बुन्देलखण्डी और ब्रजभाषा में कहानी लिखने की बात उचित है; किन्तु उनमें कोलभिल्लों और अनार्यों के देशज शब्द न हों। वही साधु भाषा हो जो केशव, लाल, छत्रसाल, रघुराज तथा ईसुरी और बुन्देलखण्ड निवासी प्रसिद्ध सतसईकार बिहारीलाल ने लिखी है। ब्रजभाषा भी साधु होनी चाहिये। उसमें जाटों, गूजरों की भाषा के और अन्य देशज बोलियों के शब्द न हों; क्योंकि ये शिष्टजन मण्डलों में ग्राह्य नहीं हैं और सर्वत्र समझे भी नहीं जाते। ब्रज चौरासी कोस में होगा, पर ब्रजभाषा बुन्देलखण्ड के ७०–८० हजार वर्गमील में भी बोली जाती है, यह स्पष्ट है और बुन्देलखण्ड का साहित्य ब्रजभाषा का ही साहित्य है, इसमें सन्देह नहीं है। हमें बुन्देलखण्ड के ब्रजभाषा के साहित्य-निर्माण पर गौरव अनुभव होता है, क्योंकि वह ब्रजभाषा का साहित्य है।

रही पृथक प्रान्त बनाने की बात, सो यह प्रश्न न बुद्धिमत्तापूर्ण है, और न दूरदर्शितापूर्ण। इससे अनेक अरुचिकर प्रश्न उठ खड़े होंगे। बुन्देलखण्ड में अनेक देशी राज्य हैं। क्या उनके शासक राजसिंहासन-च्युत कर दिये जायँगे? यदि नहीं, तो एक प्रान्त कैसे बनेगा? क्या यह उचित होगा कि बुन्देलखण्ड का कुछ खण्ड ब्रिटिश भारत में हो और कुछ खण्ड विभिन्न देशी राज्यों में हो—एक स्थान में प्रजातन्त्रवादी शासन हो और अपर खण्डों में अनियन्त्रित राजतन्त्र? —'लोकमान्य' ५ मार्च १९४३

बुन्देलखण्डी बोली नहीं, भाषा है

श्री श्यामसुन्दर बादल 'श्याम'

'लोकमान्य' के 'बुन्देलखण्ड की मांग' शीर्षक अग्रलेख को पढ़कर मुझे विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। दैनिक तथा साप्ताहिक 'जाग्रति' भी उसीके अश्लील और ग्रामीण अनुगामियों के रूप में दुहाई देते नज़र आते हैं। 'लोकमान्य' कहता है कि "बुन्देलखण्डी बोली का ब्रजभाषा से कोई अलग अस्तित्व है, यह हम किसी प्रकार नहीं मान सकते।" इस कथन की समीक्षा अवश्य होनी चाहिये। उक्त कथन में यदि दुराग्रह का आभास नहीं है, तब तो वह आसानी से मान लेंगे कि बुन्देलखण्डी बोली तभी से एक भाषा बन गई है जब से ब्रज की बोली ब्रजभाषा बनी है।

बुन्देलखण्डी को ब्रजभाषा के समान ही आदर देनेवालों में हिन्दी साहित्य-क्षेत्र के महारथी श्री बालकृष्ण भट्ट हैं। उनका कथन है—"इसमें संदेह नहीं कि विस्तार में हिन्दी अपनी बहनों में सबसे बड़ी है। ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी, बैसवाड़ी तथा भोजपुरी इसके कई एक अवान्तर भेद हैं।"

बुन्देलखण्डी का प्रभाव

बुन्देलखण्डी के प्रभाव को तो डा० धीरेन्द्र वर्मा प्रभृति विद्वान मानते हैं। उनका कथन है :—"बिहारी और सूरदास की ब्रज भाषा में बहुत भेद हैं। बुन्देलखण्ड तथा राज्य-स्थान के देशी राज्यों से सम्पर्क में आने के कारण इस काल के बहुत से कवियों की भाषा में जहाँ-तहाँ बुन्देली तथा राज्यस्थानी बोलियों का प्रभाव आ गया है।" कितने आश्चर्य की बात है कि एक भाषा अपना प्रभाव दूसरी भाषा पर डाल सकती है, पर अपना कोई अस्तित्व नहीं रखती। आगे वह कहते हैं—"भाषा की दृष्टि से प्रायः समस्त ब्रजभाषा ग्रन्थ-समूह सन्दिग्धावस्था में है। भाषा का अध्ययन बिना मान्य संस्करणों के नहीं हो सकता।"

बुन्देलखण्डी और तुलसीदास

तुलसीदास जी को आज कल के अधिकांश विद्वानों ने विशुद्ध ब्रजभाषा का कवि नहीं माना है। लेखक के मत में गोस्वामी जी इन तीनों भाषाओं, ब्रजभाषा, अवधी और बुन्देली के अन्तर को भली भाँति जानते थे। उनके विचारण क्षेत्र में प्रायः ये तीनों भाषाएँ आ जाती हैं। अतएव उन्होंने अपने आराध्य देव भगवान रामचन्द्र के चरित्र का चित्रण उपर्युक्त तीनों भाषाओं में ही विशद् रूप से किया है। उन्होंने 'मानस' अवधी में, 'गीतावली' ब्रजभाषा में और 'कवितावली' को बुन्देलखण्डी में लिखा है। श्रद्धेय श्री रामचन्द्र जी शुक्ल ने भाषा की पहिचान का सिद्धान्त यह लिखा है—"भाषा का समझा जाना अधिकतर उसकी शब्दावली पर अवलम्बित है।" इसी सिद्धान्त से हम कवितावली की भाषा की परीक्षा करेंगे। नीचे संक्षेप में कुछ उसकी शब्दावली और क्रियाएँ दी जाती हैं :—

शब्द :—सरीकता, घरीक, खपुआ, दाढ़ीजार, वारेबूढ़े, अटापौर, ओत, खोर, तै, मैं, उवन, गली, चटकनें, घरौंदा, नहिकै (जोतकर,) खुरपा, खरिया, कथरी, करवा, रूख, खवास, तैंकैकी, पतौवा आदि।

कियाएँ—हते, टेई (तेजकी) खुनसाना, ओंजना, छोरना, फेकरना, वरना, अवारना, ललाना आदि उपर्युक्त शब्दावली बुंदेलखण्डी भाषा की है। 'कविताबली' में ब्रजभाषा के भी प्रयोग हैं, पर तुलना करने पर बुन्देलखण्डी के प्रयोग अधिक मिलते हैं। इसमें विभक्तियों के प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। उदाहरणार्थ अपादान कारक में 'सों' और कहीं 'तें' एवं अधिकरण कारक में 'परि' और 'महँ' के स्थान में कहीं-कहीं 'पै' और 'मैं' अधिकता से आये है। उत्तम पुरुष सर्वनाम 'हो' भी प्रयुक्त हुआ है

तथा 'मैं' भी अधिकता से आया है। ओकारान्त क्रिया रूपों में कहीं अन्त में यकार जोड़ा भी गया है और नहीं भी—अर्थात् मारो, डारो, जारो आदि के मार्‌यो, डार्‌यो, जार्‌यो, आदि दोनों प्रकार के रूप मिलते हैं। मुहावरे तो बुन्देलखण्डी ही के प्रायः प्रयुक्त हुए हैं। यदि कवि चाहता तो 'बाप-बाप तू पराहि पूत-पूत तू पराहि रे के' स्थान में 'बाप-बाप तू पराहि लाल लाल तू पराहि रे' एवं 'देखौ देखौ लखन लरन हनुमान कीं' के स्थान में 'लखो लखो लखन लरन हनुमान कीं' लिख सकता था। एक स्थान पर 'कुंभऊ करन' ने लिखा है। इस प्रकार के प्रयोग आज भी बुन्देलखण्ड में बोले जाते हैं। 'रामचरण को भी खिला दो' न कह कर 'रामऊ-चरण को खवा दो' कहते हैं। इत्यादि कई ऐसे प्रयोग हैं, जिनसे 'कवितावली' की भाषा बुन्देल-खण्डी अधिक ठहरती है।

बुन्देली और ब्रजभाषा यमल बहिनें हैं। अतएव इनके वास्तविक रूप को पहिचानने के लिये इनका आत्यन्तिक सामीप्य अपेक्षित है। वह इनके ग्रामीण साहित्य के पर्याप्त अध्ययन या इनके क्षेत्रों के चिर-ग्राम्य निवास द्वारा ही मिल सकता है। नगर के निवासी साहित्य के अस्थिर आदर्श में पड़े हुए प्रतिबिम्बों के सहारे इनके स्वरूपों को पहिचान सकें, यह कदापि संभव नहीं। 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने अपने 'हिन्दी साहित्य विमर्श' में लिखा है कि "जो विद्वान यह समझते हैं कि किसी विद्वत्परिषद् अथवा साहित्य-सम्मेलन द्वारा किसी भाषा का आदर्श निश्चित हो सकता है वे भ्रम में हैं। भाषा के साथ मनुष्यों का जो सम्बन्ध है उस पर विद्वानों की दृष्टि नहीं जाती।" तथा "भाषा जनता का अनुसरण करेगी और विद्वान भाषा का अनुसरण करेंगे। भाषा मृत तभी होती है जब वह विद्वानों की सम्पति हो जाती है।"

बख्शी जी के इस कथन से हमारे उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो जाती है। नरोत्तमदास एवं ठाकुर के भी कई छंद बुन्देलखण्डी के मिलते हैं। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ पढ़िये:—

कोदों समा जुरती भर पेट,
तो चाहती ना दधि, दूध मठोती।
—नरोत्तमदास

वीर की सों जर किवार न देऊं,
तो मैं होरहारिन हात परीती।
—ठाकुर

बुन्देलखण्ड के ग्राम्य-गीत

बुन्देलखण्ड के ग्राम्यगीत अपना एक अलग महत्व रखते हैं, जिनमें ख्याल, तड़ाका भजनों और फागों का बाहुल्य है। इसके संग्रह से एक वृहदाकार ग्रंथ बन सकता है। पाठक एक फाग का रसास्वादन करें।

**बखरी रैयत हैं भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींत उठी माटी की छुई फूस चारे की,
बे बन्देज बड़ी बेबाड़ा जेह में दस द्वारे की।
किवार किवरियां एकौ नइयां बिना कुची तारे की,
ईश्वर चाय निकारौ जिदना हमें कौन बारे की।**

कबीर के रूपकों से यह किसी प्रकार कम नहीं है। अलंकार के मोह में आकर कवि ने नौ द्वारे के स्थान में दस द्वारे लिख कर कालिदास जैसी निरंकुशता अवश्य दिखलादी है। इस पद में जो 'वारे' शब्द आया है, इसके समानार्थक शब्द हिन्दी में दूसरा नहीं है। 'सुविधा' शब्द इतनी व्यापकता नहीं रखता। ऐसे महत्वपूर्ण और व्यापक अर्थवाले शब्द जब हम अन्य भाषाओं से ले लेते हैं तो क्या कारण है कि अपने ही शब्दों का हम साहित्य-क्षेत्र में प्रचार न करें। ऐसा हम तभी कर सकते हैं जब भाषाओं को बोलियां न बना कर बोलियों को भाषा बनाने का प्रयत्न करें। हम दृढ़तापूर्वक कह सकते है कि बुन्देलखण्डी बोली नहीं, भाषा है। अतः ऐसी भाषा का अस्तित्व न मान कर हम हिन्दी के वक्ष पर कुठाराघात ही करेंगे।

'लोकमान्य' और 'मधुकर'-सम्पादक

'मधुकर'-सम्पादक को लक्ष्य करके 'लोकमान्य' एक तरफ तो यह कहता है कि

चतुर्वेदीजी विघटन नीति का समर्थन कर बुन्देलखंड को पृथक प्रान्त बनाने में आदर्शवादिता ही नहीं, दूरदर्शिता भी मान रहे हैं और दूसरी ओर स्वयं ठोस विघटन नीति का परिचय देता है। वह कहता है कि यदि अवध पृथक होना चाहे तो कुछ कारण मिल सकते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि 'लोकमान्य' की राजनैतिक दृष्टि अत्यन्त तीव्र है। 'मधुकर'-सम्पादक को इस ओर घसीटना उनके साथ अन्याय करना है। इसी प्रश्न को लेकर दैनिक 'जाग्रति' ने पाकिस्तान की मिसाल देकर अपना अलग बेसुरा राग अलापा है। संभवतः यह असम्बद्ध अलाप उसने 'लोकमान्य' के उपर्युक्त कथन के आधार पर ही किया है। 'मधुकर-सम्पादक ने आलोचित लेख में अपना उद्देश्य प्रकट किया है, जो निम्न प्रकार है :—

"हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि बुन्देलखण्ड प्रान्त अपनी सर्वोत्तम भेंट भारत-माता की सेवा में उपस्थित कर सके।"

यदि उनके इस कथन पर गंभीरतापूर्वक ध्यान दिया जाता तो पाकिस्तान की खींचतान का व्यर्थ ही कष्ट उठाने से 'जाग्रति'-सम्पादक अवश्य ही बच जाते।

प्रान्त-निर्माण

प्रान्त तो प्रत्येक देश में आधार स्तम्भ के रूप में रहे हैं और रहेंगे। उनके निर्माण के आधार भले ही भिन्न हों। एक गृहस्थ के छोटे से निवास में सुविधानुसार पाठशाला, गोष्ठ, बैठक, उत्सर्ग, प्रकोष्ठ आदि विभाग दृष्टिगोचर होते हैं। फिर एक विशाल राष्ट्र के प्रान्तों का होना कितना आवश्यक है। यदि उनका निर्माण भाषा एवं संस्कृति के आधार पर होता हो तो इसमें हानि ही क्या है? मध्य-प्रान्त के आधे हिन्दी-भाषी और आधे महाराष्ट्री बोलने वाले प्रतिनिधि, यदि नागपुर में किसी शासन-व्यवस्था के लिए सम्मिलित हों तो यह तो न हो कि अंग्रेजी की सहायता के बिना वे कुछ विचार विनिमय कर ही न सकें। उक्त प्रकार से प्रान्तों का निर्माण देशोत्थान में सहायक ही होता है। पाकिस्तान से इस सदुद्योग की तुलना करना सर्वथा अनुपयुक्त है।

राठ]

बुन्देलखण्ड का पुनःसङ्गठन

श्री चन्द्रभानु विशारद

प्रान्तों का पुनर्निर्माण

'मधुकर' के सम्पादकीय स्तम्भ में जो यह बात लिखी गई है कि जनपदों के आधार पर नवीन प्रान्तों की रचना हो, सर्वथा माननीय है। बुन्देलखण्ड प्रान्त बनाने की मांग पूर्ण-रूपेण ग्रहणीय है। जो भाग अपने प्राचीन जनपद से पृथक करके दूसरे प्रान्त में सम्मिलित कर दिये गये हैं वे अपने प्रान्त से संबद्ध होने पर अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त कर सकेंगे। बुन्देलखण्ड प्रान्त के बन जाने से सब अंग एक साथ मिलकर कार्य करने लगेंगे और उसकी श्री वृद्धि होने में देर न लगेगी।

हिन्दी क्षेत्रों का विभाजन

यह बात निश्चित सी है कि बहु-धंधी साहित्य प्रेमियों को प्रकाश में नहीं ला सकता। साधारण लेखक जो थोड़े से पथ-प्रदर्शन से ही अच्छे लेखक बन सकते हैं, उचित सहायता न पाकर अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण नहीं कर पाते। उनकी दशा वाटिका के उन छोटे-छोटे पुष्प वृक्षों के समान है जो किंचित जल-बिन्दुओं को पाकर वाटिका को शोभा-युक्त कर देते हैं। जल न मिलने से वे सूख जाते हैं। अतएव आवश्यक है कि प्रान्तीय और उपप्रान्तीय साहित्य सम्मेलनों की सृष्टि की जाय। इस

तरह के विभाजन से हिन्दी-माता की श्रीवृद्धि बहुत ही अल्पकाल में हो सकेगी। बड़े हर्ष की बात है कि इधर 'बुन्देलखण्ड साहित्य मंडल' तथा 'व्रज साहित्य मंडल' स्थापित हो चुके हैं और इन प्रान्तों में ग्राम-साहित्य संकलन के कार्य का सूत्रपात्र हो गया है।

विघटन नीति

'लोकमान्य' के सम्पादक महोदय ने 'बुन्देलखण्डियों की मांग' शीर्षक लेख में इस प्रान्तीय विभाजन को विघटन-नीति बता कर इसे अयुक्ति तथा अन्याय संगत माना है। परन्तु छिद्रान्वेषण की दृष्टि को मूँद कर इस पर विचार किया जावे तो सबको यह सृजन-नीति ही प्रतीत होगी। ब्रिटिश सरकार ने शासन की सुविधा के लिये जिस प्रकार संयुक्त प्रान्त को ५२ ज़िलों और १० कमिश्नरियों में विभाजित करके शासन-व्यवस्था स्थापित की है, उसी प्रकार बुन्देलखण्ड और अवधखण्ड आदि-आदि जनपदों को राजनतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक उन्नति की दृष्टि से प्रान्त बनाना क्या विघटन नीति है? 'लोकमान्य' के सम्पादक पुराने जनपदों में केवल सात ही के नाम गिना कर रह गये हैं, परन्तु क्या भारत में जनपदों का इतना बाहुल्य है कि उनके आधार पर क्षेत्र या प्रान्त बनाना हानिकारक होगा?

बुन्देलखण्डी का अस्तित्व

'लोकमान्य' सम्पादक ने बुन्देलखण्डी को अस्तित्व-रहित माना है। किन्तु वास्तव में क्या कोई भी ज़िम्मेदार व्यक्ति ऐसा कह सकता है? यहां के राछरे, बिरहे, मंदरी, ईसुरी, की फागें, बुन्देलखण्डी में नहीं हैं तो फिर किस भाषा में हैं? ईसुरी को बुन्देलखण्डी भाषा का कवि कहने में किसे आपत्ति होगी? उसने ठेठ बुन्देलखण्डी में वह पद्य रचना की है, जिसे देख कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। नीचे एक उदाहरण देता हूँ, जिससे व्रजभाषा तथा बुन्देलखण्डी का फ़र्क मालूम हो जायगाः—

बहुतक इलकी सी ननबुलिया,
लागी देन बिंदुलिया।
ऐसी निगन निगत लरकम में,
डारें हात हतुलिया।
छूटी नहीं लरम मुइयां से,
जा तोतली बतुलिया।
ईसुर फिरत पान सो खाये,
मिस्सी लगी दतुलिया।

उक्त रचना से व्रजभाषा और बुन्देलखण्डी का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। व्रजभाषा तथा बुन्देलखण्डी के एक ही व्याकरण होने से दोनों का एक होना सिद्ध नहीं होता। इस नियम से तो अवधी, छत्तीसगढ़ी, व्रजभाषा, आदि सबको अपना अस्तित्व छोड़ देना पड़ेगा। यह बात हो सकती है कि व्रज के समीपवर्ती बुन्देलखण्ड के कुछ भाग की भाषा व्रजभाषा से मिलती-जुलती हो, परन्तु हमीरपुर तथा बांदा की बोली और व्रजभाषा में अन्तर नहीं है यह कोई भी भाषा-शास्त्री नहीं मान सकता।

बुन्देलखण्ड प्रान्त क्या कल्पित है?

'लोकमान्य' के सम्पादक महोदय ने बुन्देलखण्ड प्रान्त को कल्पित बुन्देलखण्ड प्रान्त के नाम से पुकारा है। परन्तु छत्रशाल के ज़माने से ही यह प्रान्त बुन्देलखण्ड के नाम से विख्यात है और अब भी उसी नाम से पुकारा जाता है। अगर ऐसा नहीं है तो मैं पूछता हूँ कि पोस्ट आफ़िस डिपार्टमेंट ने जो सरकिल बनाया है, उसका नाम 'बुन्देलखण्ड सरकिल' क्यों रक्खा है और बुन्देलखण्ड का उल्लेख इतिहास के ग्रंथो में क्यों आया है? बुन्देलखण्ड की निम्नलिखित सीमा तो प्रसिद्ध ही है:—

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस,
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस।
उत्तर समथल भूमि गंग जमुना सुहवति है,
प्राची दिसकै मूर सोना कासी सुलसति है।
दक्खिन रेवा बिन्ध्याचल तन शीतल करनी,
पछिचम में चम्बल चंचल सोहत मन हरनी।

तिन मधि राजे गिरि वन सरिता सरित मनोहर,
कीर्तिस्थल बुन्देलन कौ, बुन्देलखण्ड वर।

आशा है, इतने से बुन्देलखण्ड के कल्पित होने की आशंका दूर हो जायगी।

रैपुरा, (बांदा)]

बुन्देलखण्ड बुन्देलखण्ड है, ब्रज ब्रज

अध्यापक गोविन्ददास 'विनीत'

प्रान्त-निर्माण सम्बन्धी 'मधुकर'-सम्पादक के लेख को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा और यह समझने की कोशिश की कि उसके पीछे मूल भावना क्या है। बोलियों के आधार पर प्रान्त-संगठन या और कुछ? और उसका आशय जो मैं समझा वह यह है कि बुन्देलखण्डी भाषा तथा संस्कृति अपना निजी व्यक्तित्व रखती हैं और यदि उनके आधार पर प्रान्त का संगठन किया जाय तो बुन्देलखण्ड बहुत ही शक्तिशाली बन सकता है। बात कुल इतनी है, लेकिन लोगों ने उसका ऐसा बतंगड़ बना डाला है कि 'सूत न पुहनी कोरी से लठा लठी' वाली कहावत चरितार्थ होती है। लोकमान्य' को अपनी मान्यता की किसी प्रकार रक्षा करनी ही थी और 'जाग्रति' को किसी-न-किसी तरह जगाना इष्ट था। 'लोकमान्य' के सम्पादक-महोदय तो एकदम बुन्देलखण्ड और ब्रज को एक कर गये। भला यह कोई दाल-भात और कढ़ी थोड़े ही है कि एक-एक चम्मच मिलाये और कालोनी तैयार हो गई! उन्हें जानना चाहिये कि बुन्देलखण्ड बुन्देलखण्ड है और ब्रज ब्रज। इन दोनों की बोलियों में सामंजस्य तो क्या, कोटियों तक में सामंजस्य नहीं है। "चौरे छोरा नांय मान्तु?" और "कायरे मोंड़ा, मानत नइयां" में जितना सामंजस्य है, उतना ही ब्रज और बुन्देली बोली में है। अब 'लोकमान्य' और 'जाग्रति' के सम्पादक स्वयं ही हल करलें कि ये दोनों बोलियां एक हैं या नहीं।

शहरी दुनिया का जिक्र जाने दीजिये, क्योंकि वह तो चाहे ब्रज की हो चाहे बुन्देलखण्ड की वहाँ तो बात ही दूसरी है, मगर दोनों प्रान्तों की देहाती दुनिया में आज भी ज़मीन-आसमान का अन्तर है। इससे यह न समझा जाय कि दोनों प्रान्तों के निवासियों का एक-दूसरे से कोई सरोकार ही नहीं। प्रति वर्ष ब्रज के बहुत से देहाती हमारे बुन्देलखण्ड में आते हैं और 'माखन चोरी लीला' आदि खेल कर हँसते-खेलते ही हमसे रुपये छीन ले जाते हैं और फिर भी वे हमें प्रिय ही लगते हैं।

सन् १९३० के सत्याग्रह में मुझे ब्रजराज की जन्मभूमि में जाने का शौक़ हुआ था। वहाँ एक ब्रजवासी माली का लड़का भी आ पहुँचा था। वह मीठा ठग मेरी रोटियों का आधा भाग केवल अपनी जादूगरनी ज़बान की करामात से प्रतिदिन ही छीन लिया करता था और मैं बड़ी खुशी से दे डालता था। कहने का मतलब यह कि ब्रज का अपना मिठास है, बुन्देलखण्डी का अपना, पर बोलियों के या संस्कृति के विचार से ब्रज और बुन्देलखण्ड न कभी एक रहे हैं और न रह सकते हैं। हाँ, यह दूसरी बात है कि—

"वफ़ा को तर्क करें हम, जफ़ा को तुम छोड़ो,
कुछ इश्तहार तुम्हें हो, कुछ इश्तहार हमें।"

अब रहा प्रान्त-निर्माण संबंधी मसला, उसके लिए मुझे यही निवेदन करना है कि एक-न-एक दिन हमारा हिस्सा हमें मिल ही जायगा। वह तो ब्रिटिश सरकार की कारिस्तानी है कि अपनी शासन की दृष्टि से उसे जिसमें सहूलियत दिखाई दी उसी में किसी प्रान्त का सिर ठूंस दिया तो किसी की नाक। और आख़िर उसे भी प्रान्त बनाने ही पड़े।

हमें अपने यहाँ की हरेक चीज़ को तरतीब से लगा कर रखना ही होगा। कौन ऐसा प्रान्त है जो अपने तीन टपरियों वाले ऊजड़ गाँव को भी दूसरे प्रान्त में जोड़ना पसंद करेगा ? इस प्रकार पुनर्संगठन की बात तो एक-न-एक दिन उठती ही। 'मधुकर'-सम्पादक ने यदि उसका श्रीगणेश कर दिया तो उसमें अनुचित क्या है ? पता नहीं 'जाग्रति' के सम्पादक महोदय कैसे इस योजना में पाकिस्तान की छाया देखते हैं ? यह योजना तो देश को मज़बूत ही बनाने के लिए है, कमज़ोर करने के लिए नहीं। शरीर सुदृढ़ हो, इसके लिए आवश्यक है कि उसका प्रत्येक अंग सशक्त हो। प्रान्त का संगठन देश के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

बार झाँसी]

बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण क्यों आवश्यक है ?

श्री शम्भुनाथ सक्सेना, सम्पादक, 'आनन्द'

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा संचालित बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण आन्दोलन संबंधी लेखों को हमने मनोयोग पूर्वक पढ़ा है तथा प्रान्त-निर्माण की समस्या को लेकर विद्वानों से विचार-विनिमय भी किया है। तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्रान्तों का निर्माण वहां की स्थानीय बोली, जो काफी प्रचलित हो, जिसमें साहित्य की प्रचुरता हो और जिसका भविष्य विकासात्मक और प्रगतिशील हो, उसके आधार पर होना आवश्यक है।

भाषा और बोली—

भाषा और बोली में ठीक निर्बोध बालक और विवेकी युवक का-सा अन्तर मानना असंगत न होगा। बोली का बालक की तुतलाहट से अधिक कोई स्थायित्व, कोई अस्तित्व नहीं होता, लेकिन भाषा ठीक उसके विपरीत अपना चिरशाश्वत अस्तित्व रखती है उसकी अपनी संस्कृति होती है और उससे प्रणोदित अपना साहित्य। अतः जिन प्रान्तों की बोलियाँ अपनी अबोधावस्था से निकल कर यौवन प्राप्त कर चुकी हैं, वे इतनी विकसित हो गई है कि उनकी अपनी संस्कृति तथा अपने साहित्य का अलग उदय हो गया है, वे इतनी अधिक प्रचलित हो गई हों कि उनके प्रश्रय में समस्त प्रान्त निवासी चल रहे हों तो उन बोलियों की गणना भाषा में करना मान्य और उचित ही होगा।

यह तो प्राकृतिक नियम है कि प्रत्येक जड़ या चेतन वस्तु अपनी यौवनावस्था प्राप्त करने पर अधिक समय तक अपने दायित्वों की ओर से विमुख नहीं रह सकती—वह अपने पद-दलित अधिकारों की मांग करेगी ही और उस समय उसकी आवाज़ की—उसकी मांग की अवहेलना करना दूसरे वर्ग के लिये हितकर नहीं हो सकता। आज समय आ गया है कि बुन्देली बोली अपने वैभव के साथ भाषा में परिवर्तित हो गई है। उसके पीछे उसका ठोस साहित्य है, जिसका प्रभाव आस-पास की बोलियों पर इतना अधिक पड़ा है कि उनका अस्तित्व अधिकाधिक क्षीण होकर उसमें ही एक रस हो गया है।

जिस बोली में जगनिक के आल्हा जैसा वीर रस का उत्कृष्ट महाकाव्य हो उसको भाषा न कहना हिन्दी साहित्यिकों की अविवेकता, अदूरदर्शिता तथा असहिष्णुता ही कही जायेगी।

संस्कृति, भाषा और साहित्य—

संस्कार जन्म-जात हैं। जिस वातावरण में हम पलते हैं उस समाज-निहित संस्कार का हमारे व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ना ध्रुव सत्य है। ठीक यही बात साहित्य के साथ है। संस्कृति चाहे वह

मौलिक हो या उपार्जित, उसके आधार पर ही साहित्य निर्मित होता है। हमने समस्त बंगाल प्रान्त में भाषा तथा साहित्य के इस सत्य को साक्षात् देखा है। बंगाली बोली और उसके साहित्य की व्यापकता के कारण वहाँ की संस्कृति तथा वहाँ के रहन-सहन, में ऐक्य भाव विद्यमान है, जिससे आन्तरिक नहीं तो बाह्यरूप में साम्प्रदायिकता की कटुता गौणतम है—आप बंगाल प्रान्त के एक कोने से दूसरे कोने तक चले जाइये, लेकिन भाषा तथा साहित्य की व्यापकता के कारण रहन-सहन और संस्कृति में तिल भर भी अन्तर नहीं पायेंगे। भाषा तथा साहित्य की यह व्यापकता एक दूसरे सत्य की ओर इंगित करती है, कि यदि हम हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की समस्या को सुलझाना चाहते हैं, तो वहाँ की स्थानीय भाषा की व्यापकता की ओर ध्यान दें और उनके आधार पर प्रान्त-निर्माण के पुण्य कार्य में सहयोग दें।

आज भी आप किसी गाँव में जायें तो वहाँ के मुसलमान या हिन्दू में इतनी समानता होगी कि पहिचानना कठिन होगा—वही रहन-सहन, वही बोली और वही संस्कृति, इसका कारण संस्कृति और बोली ही तो है जो इस प्रकार के प्रान्त-निर्माण के पश्चात् और दृढ़तर हो सकती है। इस प्रकार के भाषा-संगठन से हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी को लाभ ही है। यह तो एक प्रकार से उसकी उन्नति का, उसके प्रचार का तथा उसके साहित्य का आयोजन होगा, जिससे साधन उपलब्ध कर हम अपनी राष्ट्र-भाषा के चरणों पर भिन्न-भिन्न बोलियों के मथित साहित्य की पुष्पांजलि चढ़ा सकेंगे।

भाषा के आधार पर प्रान्त-निर्माण—

भाषा के आधार पर भिन्न प्रान्त के निर्माण की योजना पुरानी है। 'लीडर' प्रेस से सन्-१९३० में प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डा० धीरेन्द्र वर्मा का 'हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान' नाम से छोटा-सा पुस्तक के आकार में पैम्फ़लैट निकला था, जिसमें डा० वर्मा ने संयुक्तप्रान्त के पुनर्नामकरण तथा भाषा के आधार पर प्रान्त की सीमाओं का उल्लेख करते हुए 'प्रान्त' (सूबा हिन्दुस्तान) की आवाज़ उठाई थी। इतने बड़े प्रान्त का आयोजन अक्रियात्मक और खोखला ही था। हममें तो इतना विवेक होना चाहिये कि अपना-अपना घर साफ और व्यवस्थित करलें राष्ट्र तो अनायास ही व्यवस्थापूर्ण हो जायगा। उनका यह कहना था कि बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और छत्तीसगढ़ के एक अलग प्रान्त बनने से निम्न प्रान्तीयता तथा अनैक्यता का ही उदय होगा, इस कारण इस प्रकार के प्रान्त बनाना अनावश्यक है। यह बात इस रचनात्मक काल और राष्ट्रीय ऐक्य की क्रान्तिकारी गति में कल्पना भी सिद्ध हो सकती है। संयुक्त-प्रान्त की इन निम्न-लिखित बोलियों—खड़ी बोली, बाँगड़ू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, मालवी, जयपुरी, मारवाड़ी, गढ़वाली, और कमायूनी का अलग अस्तित्व उनसे प्रभावित बोलियों का एकीकरण कर निर्मित किया जा सकता है। और इस प्रकार प्रान्त-निर्माण की समस्या प्राचीन जनपदों के सहारे सुगमता से सुलझ सकती है। उपरोक्त बोलियाँ हमें क्रम से निम्न-लिखित जनपदों का स्मरण दिलाती हैं—कुरू, कुरूजाँगल, शूरसेन, पाँचाल, चेदि, कोशल वत्स, महाकोशल, काशी, मिथला, मगध, अवन्ति, वत्स्य, और मरु देश।

प्रत्येक बुन्देलखण्डी-भाषा-भाषी का कर्तव्य है कि अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए, अपनी बोली तथा साहित्य को सजीवता प्रदान करने के लिए बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण की आवाज़ को बुलन्द करे और उसे क्रियान्वित करने के लिये यथायोग्य चेष्टा करे।

['आनन्द' का अग्रलेख।

बुन्देलखण्ड प्रान्त का संगठन

श्री श्रीराम पांडे

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी तथा उनके कतिपय साथी बुन्देलखण्ड को एक पृथक प्रान्त बनाने का आन्दोलन कर रहे हैं। इसका प्रधान कारण ये सज्जन यह बताते हैं कि बुन्देलखण्ड की बोली, उसका कथा-साहित्य और संस्कृति पृथक है। पृथक प्रान्त बनाने से इसका विकास होगा। इसके उत्तर में पं० मदनलालजी चतुर्वेदी ने 'लोकमान्य' दैनिक-साप्ताहिक में लेख लिखा है और इस धारणा का खंडन किया है। उनका कहना है कि बुन्देलखण्ड की बोली, उसका कथा-साहित्य तथा संस्कृति ब्रज की बोली, कथा-साहित्य और संस्कृति से भिन्न नहीं।

श्री मैथिलीशरणजी क्या कहते हैं—

पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने बुन्देलखण्डी बोली के संबंध में स्व० मुंशी अजमेरीजी और श्री मैथिलीशरणजी गुप्त के मत का उल्लेख किया है और कहा है कि उनका मत यही है कि बुन्देलखण्डी बोली ब्रज-भाषा से मधुर है। इससे प्रतीत होता है कि अजमेरीजी और गुप्तजी दोनों बोलियों को पृथक-पृथक मानते हैं। स्व० अजमेरीजी तो आज नहीं हैं, परन्तु श्री मैथिली-शरणजी गुप्त हमारे बीच वर्तमान हैं। उन्हें इस विषय पर अपना मत देकर बताना चाहिये कि वे क्यों बुन्देलखण्डी को ब्रज से पृथक मानते हैं?

प्रान्त का प्रश्न—

प्रान्त बनाने का प्रश्न राजनैतिक है। आज भारत में प्रान्तों का जिस प्रकार विभाजन होरहा है और जैसा उनका विधान है, वह समाज के जीवन के लिए बहुत अंश में घातक होता है। हमें स्वाधीन भारत में इनके विधानों में बड़ा परिवर्तन करना होगा। अतः बुन्देलखण्डी भाइयों से अनुरोध है कि वे सांस्कृतिक मंडल बनायें। जिन दोनों की बोली को वे एक समान समझते हों उन्हें एक सांस्कृतिक संघ में सम्बद्ध करने की चेष्टा करें।

['लोकमान्य' से

नवीन संगठन से प्रान्त सबल ही होगा

श्री रामसेवक रिछारिया, हैडमास्टर, राठौर स्कूल, ग्वालियर

'लोकमान्य' दैनिक और साप्ताहिक 'जाग्रति' के लेख देखकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ कि ऐसे विद्वान सम्पादक भी इतनी अदूरदर्शिता से काम लेते हैं। 'जाग्रति' के सम्पादक तो पाकिस्तान की योजना से डर कर जनपदों की भाषाओं के अस्तित्व को भी स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं तथा जनपदों की भाषा के आधार पर बने हुए प्रान्त को भी एक खतरनाक चीज़ समझ कर भयभीत होरहे हैं।

हमारे यहाँ के प्रत्येक जनपद में बोली जाने वाली उपभाषाओं (बोलियों) में कुछ ही शब्द उर्दू, फ़ारसी या अरबी के हो सकते हैं, न कि सम्पूर्ण भाषा उर्दू, फ़ारसी, या अरबी से पूर्ण हो। प्रान्तीय भाषाएँ, संस्कृत, शौरसेनी, मागधी आदि से युग परिवर्तन के साथ ही साथ अपने ढांचे भी बदलती रहीं, किन्तु उन उपभाषाओं पर उर्दू, फ़ारसी, अरबी की छाप नहीं बैठी। मुस्लिम सत्ता होने पर भी यहाँ पर उसने संस्कृति, वेष और भाषा पर अपना अधिकार नहीं जमा पाया। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि विदेशी भाषा के जो शब्द हमारी भाषा में आसानी के साथ खप सके, उन्हें

शामिल करने में हमारे यहाँ के जनपदों ने कोई कसर न रक्खी। चाहे हिन्दू हो या मुसल्मान, जिस प्रान्त में वे रहे, वहीं के वातावरण में पलकर उसी जनपद की भाषा का उपयोग करने लगे। आपसी व्यवहार में भी उसी भाषा का इस्तैमाल करने लगे। बंगाल में रहने वाले मुसल्मान और हिन्दू दोनों ही बंगला का प्रयोग करते हैं। गुजरात में रहने वाले गुजराती का। तात्पर्य यह कि कोई किसी भी प्रान्त या देश का निवासी हो, जहाँ वह रहता है। वहीं की भाषा का प्रयोग करता है। अतः अगर जनपदी भाषा के आधार पर कार्य किया जाय, प्रान्त बनाए जांय तो फिर कोई झगड़ा ही न रहेगा। राजनैतिक दृष्टिकोण से सम्प्रदाय-धर्म विशेष के सिद्धान्तों के आधार पर प्रान्तों का बटवारा तो झगड़े की जड़ माना जा सकता है, पर भाषा की एकता के आधार पर किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह हिन्दू हो या मुसल्मान, सिख हो या पारसी, किसी भी किस्म का मतभेद न होगा। भाषा के द्वारा प्रान्तों का बटवारा होते ही सारे झगड़े समाप्त हो जांयगे। भारत अखण्ड है और अखण्ड ही रहेगा। हम धार्मिकता की ओट में दंगे नहीं चाहते और न उसका कलंक जनपदी भाषाओं पर लादा जा सकता है। हम तो उपभाषाओं की एकता के आधार पर ही धार्मिक और राजनैतिक झगड़े खत्म कर देना चाहते हैं। जनपदी भाषा के सहारे जाग्रति, अपनत्व, और संगठन की अभिवृद्धि होना संभव और स्वाभाविक है, क्योंकि उनके आधार पर हुए प्रान्त-निर्माण द्वारा किसी फ़िरके विशेष को महत्व नहीं दिलाया जा रहा है और न इससे किसी संकीर्णता का बोध होता है!

इस योजना का ध्येय तो प्रान्तीय भाषाओं को प्रोत्साहन देकर उन्हें राष्ट्रीय भाषा के कोष में जोड़ देना है, ताकि हमारी राष्ट्र-भाषा सुसंस्कृत और परिपूर्ण हो सके। हम जो शब्द संस्कृत या अन्य भाषाओं से गढ़ कर बनाने की आवश्यकता महसूस करते हैं, वह प्रान्तीय भाषाओं के संग्रह से पूर्ण हो सकेगी, ऐसा मेरा अनुमान है। हो सकता है कि प्रान्तीय भाषा के शब्दों का रूप बिगड़ा हुआ हो। हम उनका संशोधित रूप में प्रयोग कर सकते हैं। जिससे पाठकों को उन शब्दों के प्रयोग में बार-बार कोष छूने की आवश्यकता न होगी।

शोसित वर्गों की बढ़ती हुई माँग—साम्राज्यवादी, पूंजीवादी, एवं तानाशाही युद्ध ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि अब "छोटे-छोटे राज्यों का युग बीत चला है। वे एकाकी खड़े नहीं रह सकते। काल की गति उन्हें ज़बरदस्ती आपस में मिला कर छोड़ेगी"। इसका अर्थ तो यह है कि वर्तमान राजनैतिक कशमकश में राज्यों का कोई अस्तित्व न रहेगा। राजनैतिक विभाजन छिन्न-भिन्न होगा ही। किन्तु जनपदों की भाषाओं के आधार पर किया हुआ विभाजन कोई राजनैतिक चाल नहीं कही जा सकती। लेकिन 'लोकमान्य' के सम्पादक तो प्रान्तीय भाषाओं की अभिवृद्धि और उसके आधार पर प्रान्तीय विभाजन की राजनीति का खेल समझ साँप के धोखे में रस्सी से ही डर रहे हैं।

प्राचीन इतिहासों में जहाँ रुहेलखण्ड, बघेलखण्ड का वर्णन आता है, वहाँ लोगों की आँखें नक्शे के धरातल पर दौड़ जाती हैं और हम अनुभव करते हैं कि अब उनका विभाजन ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन की सुविधा से किया है। उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा को राजभाषा का रूप देकर यहाँ की प्रान्तीय भाषाओं का ज़बरदस्ती गला घोंट कर अपनी भाषा का प्रचार किया है। इस प्रकार उन्होंने एक प्रान्त के कुछ भाग को दूसरे ही प्रान्त में सम्मिलित कर दिया, जहाँ वे अनाथ जैसे प्रतीत होते हैं।

'लोकमान्य' सम्पादक तो इतना तक कहते हैं कि बुन्देलखण्डी कोई भाषा ही नहीं। अगर है तो वह ब्रजभाषा। उनसे मेरा निवेदन है कि वह श्रीयुत श्यामसुन्दरदास जी के 'भाषा विज्ञान'

को एक बार उठा कर देखें। उनका भ्रम दूर हो जायगा। उन्होंने लिखा है।

"भाषा और विभाषा के भेद को समझने के साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि एक भाषा की भिन्न-भिन्न विभाषाओं को बोलने वाले एक दूसरे को समझ लेते हैं। एक भाषा की विभाषाओं में कितना ही भेद हो, पर उनमें एकता के सूत्र कुछ मिल ही जाते हैं। शब्दकोष के अधिकांश को समानता, कालरचना आदि व्याकरण सम्बन्धी एकता और बहुत कुछ मिलता-जुलता ध्वनि-विज्ञान, सहज ही स्पष्ट कर देता है कि भिन्न-भिन्न विभाषाएं एक सूत्र में बंधी हुई हैं"।

'भाषा-विज्ञान' में भारत की आर्य भाषाओं के परिवार वाले भाषाचार्ट में ब्रज, बुन्देलखण्डी, अवधी, कन्नौजी और खड़ी बोली इन सभी को प्रान्तीय भाषाओं के रूप में माना है। लेकिन फिर भी 'लोकमान्य' और 'जाग्रति' के सम्पादक जैसे अध्ययनशील व्यक्ति बुन्देलखण्डी को प्रान्तीय भाषा नहीं मानते। उक्त भाषाचार्ट के अनुसार जब बुन्देलखण्डी प्रान्तीय भाषा मानी गई है, तब फिर बुन्देलखण्ड को प्रान्त न मानना, अनध्ययनशीलता का परिचय देता है।

सम्पादक महोदय ज़रा बुन्देलखण्ड और ब्रज का भ्रमण करके दोनों जगह की भाषा का अध्ययन करें। बुन्देलखण्ड के एक किसान को ले जाकर या ब्रज के एक किसान को यहाँ लाकर देखें कि एक दूसरे की भाषा के कितने शब्द समझते हैं, कितने नहीं। तभी दोनों भाषाओं का अन्तर स्पष्ट होगा। मेरा तो विश्वास है कि इस नवीन संगठन से प्रान्त सबल ही होगा।

प्रान्त-निर्माण आवश्यक है

श्री गयाप्रसाद गुप्त

हिन्दी-साहित्य को पूर्णोन्नति के शिखर पर आसीन करने के लिए प्रान्त-संगठन की योजना पर जो वाद-विवाद चल रहा है, उसमें बुन्देलखण्ड का यह सेवक 'वीरेन्द्र' भी श्री बनारसीदास जी के विचारों के समर्थकों में अपने आपको पाता है। वास्तव में इस विभाजन में विनाशकारी विघटन नहीं, किन्तु सुदृढ़ संगठन-ही-संगठन दृष्टिगोचर होता है। अखिल भारतवर्षीय संगठन की छत्रछाया में साहित्यिक दृष्टि से प्रान्त-निर्माण हमारे कार्य को अत्यन्त सरल और सुगठित रूप में ही हमारे सम्मुख उपस्थित कर देगा, इसमें संदेह का कोई स्थान ही नहीं है। इसमें अलग-अलग ढपली और अपना-अपना राग का दोषारोपण पूर्णरूपेण व्यर्थ है। ऐसे विशाल देश के लिए प्रान्तीय शाखाएं तो आवश्यक हैं ही। उनमें केवल देखना इतना ही है कि भौगोलिक दृष्टि से इनका पारस्परिक सम्बन्ध भी बैठता है या नहीं। अतः यदि निकट भविष्य में पूर्ण प्रस्फुटित यौवनावस्था में हिन्दी को देखने की अभिलाषा है तो अबतक की कार्यशैली का एक बार सिंहावलोकन कीजिये और यदि उसमें नई स्फूर्ति लाने की आवश्यकता है तो खुले मस्तिष्क से किसी नवीन योजना की आवश्यकता महसूस कीजिए और उसे शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत होने दीजिए। निश्चय ही भाषा और भूगोल की दृष्टि से साहित्यिक प्रान्तों की नवीन रचना हमारे साहित्य की उन्नति में बड़ी सहायक होगी।

इस योजना से हम लोग एक-दूसरे के अत्यधिक सम्पर्क में रह सकेंगे तथा शीघ्र-शीघ्र विचार-विनिमय का अवसर भी मिलता रहेगा। साहित्यिक अनुसन्धान, संकलन, निर्माण और विस्तार सम्बन्धी सामग्री जुटाने में बड़ी सफलता मिलेगी। अपनत्व के नाते स्थानीय धनीमानी व्यक्तियों द्वारा स्थानीय लेखकों, कवियों तथा

अन्य साहित्य-सेवियों को प्रोत्साहन मिल सकेगा। इस प्रकार होड़ बाँध कर पृथक-पृथक प्राप्त हुई सामग्री से भारत के भारती-भवन को सुचारुरूप से सुसज्जित कर हम अपनी आत्मा और अपनी आँखों को अधिकाधिक सन्तोष दे सकेंगे। हमें प्रसन्नता है कि हमारे बुन्देलखण्ड के ख्याति प्राप्त साहित्यसेवी इस योजना का समर्थन कर रहे हैं। हम अपने ज़िले जालौन के साहित्यानुरागियों को भी, जिनमें पं० मन्नीलाल पाँडे, चेयरमैन डि० बो०, पं० बेनीमाधव जी तिवारी एम० एल० सी आदि के नाम अग्रगण्य हैं, इसी श्रेणी में पाते हैं।

[साप्ताहिक 'वीरेन्द्र' का अग्रलेख ३१-३-४१

प्रान्त-निर्माण की माँग सराहनीय है

श्री रामकृष्ण वर्मा

'मधुकर'-सम्पादक ने बुन्देलखण्ड प्रान्त के पृथक-निर्माण की जो आवाज़ उठाई है, उसके विपक्ष में 'लोकमान्य' तथा 'जाग्रति' द्वारा प्रकट किये गये विचार मैंने पढ़े। 'लोकमान्य' के अग्रलेख ने पृथक प्रान्त के स्वप्न को भावुक हृदय की कल्पना मात्र सिद्ध करने का प्रयास किया है और साथ ही एक आश्चर्यजनक आविष्कार किया है कि बुन्देलखण्डी का ब्रज-भाषा से अलग कोई अस्तित्व ही नहीं। उसने जो कुछ कहा है वह संयम के साथ कहा है। इसके विपरीत 'जाग्रति' ने योजना का विरोध करते हुए पाकिस्तान का भय दिखाया है, और उसके साप्ताहिक संस्करण ने तो व्यंग की आड़ में शिष्टता का सर्वथा उल्लंघन किया है।

समस्या का प्रत्येक बुन्देलखण्ड निवासी से सीधा संबंध होने के कारण मैं इस विषय में दो शब्द प्रकट कर देना आवश्यक समझता हूँ। साप्ताहिक 'जाग्रति' के नोट में कोई तर्क नहीं। वह केवल कीचड़ उछालना मात्र है। इसलिये हमें उसके संबंध में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं। दैनिक 'जाग्रति' ने जो अखंड भारत का नारा लगाने की सामयिक आवश्यकता बताई है, उसका मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। किन्तु 'मधुकर'-सम्पादक ने अपने सम्पादकीय में जो विचार प्रकट किये हैं, उनका यह अर्थ कदापि नहीं कि समस्त भारतवर्ष की एकता नष्ट कर दी जाय। अखंड भारत में भी शासन की सुविधा की दृष्टि से कतिपय प्रान्त अथवा जनपद होने ही चाहिये, और आज भी जब भारत अंग्रेज़ों की एक ही शासन-सत्ता के अधीन हैं, तब भारत में पंजाब, राजपूताना, बंगाल जैसे प्रान्त बने ही हुए हैं। हमारी सम्मति में तो 'मधुकर'-सम्पादक के लेख का आशय इतना ही है कि जिस प्रकार बंग-विच्छेद से बंगालियों में अनैक्य की आशंका प्रबल हो उठी थी उसी प्रकार बुन्देलखण्ड भी आज अपने अनियमित बटवारे के कारण उन्नति के क्षेत्र में पीछे है। यदि समस्त बुन्देलखण्ड अपनी उपयुक्त सीमाओं के अन्दर संगठित हो जाता है तो साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उसमें एक नई चेतना का संचार होगा। उक्त मत में मुझे तो अनौचित्य कहीं भी दिखाई नहीं देता और न इससे भारत की एकता को कोई आघात पहुँच सकता है। आज भी शासन की सुविधा की दृष्टि से मध्य-भारत की देशी रियासतें दो एजेन्सियों में बँटी हुई हैं। 'मधुकर'-सम्पादक कोई अनहोनी क्रान्तिकारी उलट-फेर नहीं चाहते। मैंने तो उनके पृथक प्रान्त-निर्माण का यही अभिप्राय समझा है कि आज की बुन्देलखण्ड की एजेन्सी का संगठन कुछ इस प्रकार से किया जाय कि

उसमें प्रान्त के बिछड़े हुए ज़िले आकर सम्मिलित हों। वस्तुतः यह माँग सर्वथा सराहनीय है। आज जो संयुक्त प्रान्त और मध्य प्रान्त के सूबे बने हैं उनका कोई भी तो निश्चित आधार नहीं बताया जा सकता। मैं आशा करता हूँ कि 'जाग्रति' और 'लोकमान्य' के सम्पादक महोदय पृथक निर्माण के प्रश्न पर इसी रूप में विचार करेंगे और तब उन्हें किसी ऐसे क्षोभ का कारण न रह जायगा।

'लोकमान्य' ने जो दूसरी बात बताई है कि बुन्देलखण्डी का ब्रज-भाषा से अलग कोई अस्तित्व ही नहीं, यह सचमुच एक आश्चर्यजनक आविष्कार है। अपने अनोखे उत्साह में वे हिन्दी भाषा और साहित्य के अनेक धुरन्धर विद्वानों को भी नीची निगाह से देख गये हैं, परन्तु उनके धूल डालने से उन विद्वानों की विद्वत्ता की हानि नहीं होती। इस विषय में श्री कृष्णानन्द गुप्त ने जो उत्तर दिया है उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। क्या सम्पादक महोदय को विदित है कि ब्रज केवल चौरासी कोस के घेरे में सीमित रहा है और बुन्देलखण्ड उससे कहीं बाहर स्थित है यदि सम्पादकजी का भौगोलिक ज्ञान उनके साहित्यिक और ऐतिहासिक ज्ञान की भाँति विलक्षण न होता तो वे कदाचित ऐसी बेतुकी सूझ उपस्थित न करते। सम्पादकजी के पास कोई तर्क भी है, जिससे वे ब्रजभाषा और बुन्देलखण्डी दोनों को एक कह सकें? यदि बुन्देलखण्डी को उसका वास्तविक गौरव देने में मधुकर सम्पादक की कोई भावुकता समझी जाती है, तो क्या ब्रजभाषा की यह लचर वकालत 'लोकमान्य-सम्पादक' की निरी भावुकता का द्योतक नहीं? ब्रज-मंडल और बुन्देलखण्ड की संस्कृति को एक बताकर सम्पादक महोदय ने हमारे निकट यही सिद्ध किया है कि दोनों संस्कृतियों में से वे किसी को भी नहीं समझे। उचित है कि वे पहले इन प्रान्तों की रहन-सहन, उनकी रीति-नीति और उनके साहित्य से पूर्ण परिचय प्राप्त करें और तब उनके विषय में अपनी कोई धारणा बनाएँ। मुझे प्रसन्नता होगी, यदि सम्पादक महोदय इन पंक्तियों पर ठण्डे दिमाग़ से विचार करते हुए अपना योग्य दृष्टिकोण बनायें अथवा अपने पास के उन तर्कों को ही उपस्थित करें, जिनके आधार पर वे इतना उलटा-सीधा समझने के पक्षपाती हैं। अभी तो उन्होंने केवल अपनी अनोखी सूझें लिखकर सर्व साधारण को यों ही भरमाना चाहा है और अपनी बात का प्रमाण कुछ भी नहीं दिया।

दतिया]

बुन्देलखण्ड प्रान्त की योजना

श्री गोवर्द्धनदास त्रिपाठी, साहित्यरत्न

इधर उपरलिखित विषय पर बहुत से लेख पढ़ने को मिले, कुछ समर्थन-स्वरूप और कुछ विपक्ष में। 'मधुकर' की योजना है कि बुन्देलखंड प्रान्त का अलग से निर्माण होना चाहिए, पर कलकत्ते के कुछ पत्र इस योजना के विरुद्ध हैं। खैर, विषय तो बड़ा विवादग्रस्त है; पर मैं पूर्व इसके कि अपनी व्यक्तिगत राय ज़ाहिर करूँ, इतना अवश्य कहने की धृष्टता करूँगा कि विपक्ष में जो ये लेख लिखे गये हैं, वे शुद्ध और स्वस्थ आलोचनात्मक दृष्टि से नहीं लिखे प्रतीत होते हैं। केवल विवाद की दृष्टि से ही लिखे गये मालूम होते हैं। ऐसी झलक उनकी प्रत्येक पंक्ति से दृष्टिगोचर होती है। परिणाम यह है कि विषय विशेष पर तर्कपूर्ण सम्मति कहीं भी दिखाई नहीं देती। सरल और सुबोध तर्क विश्वास के पोषक होते हैं। मनुष्य उनके बाहर कहीं नहीं जा सकता, यदि वह अपनी मानवी दुर्बलता 'हठ' को जीत ले। हमें इन समालोचनात्मक लेखों के पढ़ने से

केवल यही प्रतीत होता है कि सम्पादकीय उत्तरदायित्व अपनी उचित सीमा के बाहर जा रहा है।

'लोकमान्य' की राय में पृथक प्रान्त का स्वप्न चरितार्थ करने की लालसा न युक्तिसंगत है, न न्यायपूर्ण और न प्रोत्साहन देने योग्य। केवल इसलिये कि प्रत्येक कमिश्नरी में एक प्रान्त का निर्माण करना पड़ेगा और इस प्रकार कई प्रान्त बनाने पड़ेंगे, क्योंकि इनकी बोलियाँ वैसे तो एक हैं, पर अल्प भेद से पृथक-पृथक प्रतीत होती हैं। इनकी राय में यदि खोज की जाए तो और भी अनेक पार्थक्य तत्व प्राप्त होंगे। इन सब खंडों की भाषा 'लोकमान्य' की राय में अल्पभेद से ब्रजभाषा ही है। जनता की संस्कृति और रीति-नीति में कोई भी अन्तर नहीं है। उसकी सम्मति में तो बुन्देलखण्डी सर्वथा ब्रजभाषा है। बुन्देलखण्डी बोली का ब्रजभाषा से कोई पृथक अस्तित्व है, वह 'किसी भी प्रकार नहीं मान सकते'। बस यही भावना कि 'किसी भी प्रकार नहीं मान सकते' सम्पूर्ण लेख की पंक्तियों से मुखरित होती है।

यहीं तक नहीं कि सम्पादकजी स्वयं इस धारणा का पोषण करके सन्तोष कर लेते, वे उन लोगों पर, जो उनके विरुद्ध अपनी सम्मतियाँ रखते हैं, ज़बर्दस्ती अपनी सम्मति ठूँसने की कोशिश भी करते हैं। वे उनको भ्रम-जाल में बद्ध तथा अनुभवहीन भी पाते हैं। उनकी राय में यदि वैसे लोग प्रकाश-प्राप्ति के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करें तो उत्तम है। मैं नहीं समझता कि 'लोकमान्य' की राय लोकमान्य होने की कहाँ तक अधिकारिणी है, पर मैं तो इस धारणा पर पहुँचा हूँ कि विवाद-क्षेत्र में भविष्य में आने वाले आक्षेपों पर पर्दा डालने के लिए कटुतापूर्ण तर्क देना और अपनी सम्मति को ही सर्वोपरि मान कर ज़बर्दस्ती दूसरों पर उसे लादना पांडित्य का खोखलापन प्रकट करता है, गाम्भीर्य नहीं। अशिष्ट और उच्छृङ्खल तर्क वास्तविकता से बहुत दूर ही देखे जाते हैं।

सम्पादकजी ने अभी बुन्देलखण्ड के अन्दर आकर न तो बुन्देलखण्डी बोली का भली प्रकार अध्ययन किया है और न वे ब्रजभाषा पर ही प्रामाणिक रूप से कुछ कह सकते हैं। बुन्देलखंड के देहातों में प्रचलित इसका साहित्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि बुन्देलखण्डी, शौरसेनी, प्राकृत के समानान्तर भाषा की देन है। ब्रजभाषा भी शौरसेनी प्राकृत का रूपान्तर है। अतएव दोनों में समानता है। ब्रजभाषा ख्याति पागई राजनैतिक कारणों से, धार्मिक विश्वासों से, जैसा कि हमारे कविरत्न सत्यनारायणजी ने कहा है :—

"वर्णन को कर सकें भला तेहि भाषा कोटी,
मचल मचल जामें माँगी हरि माखन रोटी।"

पर यह निर्विवाद है कि बुन्देलखण्डी का अस्तित्व अपना है। बुन्देलखण्डी का 'सैर' साहित्य, जो बुन्देलखण्ड की रियासतों में तथा झाँसी प्रान्त के इर्द-गिर्द अब भी प्रचलित है, साहित्य के लिये नई वस्तु है। यह साहित्य-शृङ्गार में, शूरता और वीरता में, और कहीं-कहीं राष्ट्रीयता में ओतप्रोत है। सैर जो सोलह पंक्तियों की होती हैं प्रायः हर जगह गाई जाती है। बुन्देलखण्ड के कुछ प्रान्तों में इन सैरों के अखाड़े होते हैं, जिनमें दो पार्टियाँ रहती हैं और घंटों प्रतिद्वन्द्विता चलती है। यह साहित्य ऐसा है कि यदि संगठित किया जावे और बुन्देलखण्डी के समालोचकों को दिखाया जावे तो उन्हें मालूम होगा कि बुन्देलखण्डी और ब्रजभाषा में क्या अन्तर है। पर शर्त उसमें यही है कि 'लोकमान्य' सम्पादक अपनी हठ कि 'किसी प्रकार नहीं मान सकते' छोड़ दें और उसे निष्पक्ष दृष्टि से देखें। उन्हें स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगा कि यह साहित्य एक ऐसी भाषा में है जो बुन्देलखण्ड में प्रचलित प्रतिदिन की बोली की देन है। वह यह भी अनुभव किये बिना न रहेंगे कि यह बोली अत्यन्त ही व्यापक तथा रसपूर्ण है और भाषा एवं साहित्य-सृजन में महत्वपूर्ण योग दे सकती है। यह एक ऐसी बोली है जो प्रकाश में आने पर बोलियों की रूपरेखा आँक सकती है। सचाई तो

यह है कि बुन्देलखण्डी अभी तक विज्ञापन के अभाव में पूर्णतया प्रकाश में नहीं आ सकी। 'बुन्देलखण्डी विश्वकोष' इस कार्य को पूरा करेगा, ऐसी आशा है। प्रान्त-निर्माण की योजना सर्वथा उपयुक्त, सामयिक तथा प्रोत्साहन की पात्र है।

वह समय आगया है जब हमें अन्वेषण करके बुन्देलखण्ड के साहित्य, भाषा और बोली के अस्तित्व को प्रकाश में लाना है, पर यह काम एक-दो व्यक्तियों का नहीं है। इसमें सहयोग की आवश्यकता है। साहित्यिकों की, लेखकों की, कवियों की और धनी-मानी सज्जनों की। इसके लिये संस्थाएं, जो इस समय बुन्देलखण्ड में हिन्दी की सेवा कर रही हैं, अपना विशेष ध्यान दें।

मैं कह चुका हूँ कि प्रान्त-निर्माण की योजना सामयिक और युक्तिपूर्ण है। इसे पाकिस्तान की माँग कहकर उसका त्याग उचित नहीं है। बुन्देलखण्ड प्रान्त की माँग की पाकिस्तान से तुलना करना न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि इस प्रान्त-निर्माण का ध्येय कोई अनहोनी बात करना नहीं है। आज के प्रान्तों का विभाजन भी इसी आधार पर है, जिस पर बुन्देलखण्ड प्रान्त की योजना है। बंगाल अपनी बोली लिए है, पंजाब अपनी और गुजरात अपनी। सभी प्रान्त अपनी-अपनी बोली और अपनी-अपनी भाषा लिए हैं। हम यह मान सकते हैं कि प्रान्त-विभाजन में राजनैतिक कारण प्रमुख होते हैं, पर बोली और भाषा राजनैतिक कारणों में भी त्याज्य कदापि नहीं हो सकती। बोली और साहित्य अपना राजनैतिक महत्व भी रखते हैं। वे राजनीति से विलग नहीं हैं और न कभी होंगे।

भाषा राजनैतिक कारणों से पर्याप्त रूपेण प्रभावित होती है। अतएव राजनैतिक विभाजन भाषा से दूर नहीं जा सकते। भाषा का आधार बोली है। अतएव बोली को हम सर्वथा त्याज्य नहीं कर सकते हैं। यदि आज के विभाजित प्रान्तों के आधार पर ही 'मधुकर' की राय ली जावे तो कोई बात उसमें ऐसी नहीं है जिस पर कलकत्ते के पत्रों को आपत्ति हो।

'मधुकर'—सम्पादक की भावुकता और साहित्यिकता चाहे जैसी हो, पर प्रस्तुत लेख में हमें कोई अनहोनी बात नहीं दिखाई दी। हम समालोचक सज्जनों से प्रार्थना करेंगे कि वे बुन्देलखण्ड की भाषा, बोली और साहित्य, जो बुन्देलखण्ड प्रान्त में प्रचलित है, देखने का प्रयत्न करें और फिर अपनी धारणाएं बनाएं।

ओरछा का राज-वंश सदैव से हिन्दी का प्रेमी और रक्षक रहा है तथा उसकी उन्नति की ओर ध्यान दे रहा है। यह उसकी कीर्ति और प्रशंसा का ही द्योतक नहीं है, बल्कि उसके असीम प्रान्तप्रेम का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

मऊ छीबौ, बाँदा]

प्रान्त-निर्माण ज़रूरी है

श्री ग्यासीलाल गुप्त

किसी आदमी की बोली सुनकर हम कह सकते हैं कि वह किस प्रान्त का है। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो हम इतना भी बता देते हैं कि वह किस ज़िले का है। वास्तव में बात यह है कि आदमी जिस प्रान्त में रहता है, उसे उसी प्रान्त की बोली बोलनी होती है, चाहे वह अन्य अनेक बोलियों का ज्ञान क्यों न रखता हो। प्रान्त की बोली की छाप आदमी पर पड़े बिना रह नहीं सकती। 'मधुकर'-सम्पादक ने बोली के आधार र प्रान्त-निर्माण की जो योजना उपस्थित की है, वह मेरी समझ में इसीलिये है कि हमारे प्रान्त की बोली उत्तरोत्तर समृद्धिशाली हो।

आज जो स्थिति है, किसी से छिपी नहीं है। अंग्रेजी ने अपना ऐसा प्रभुत्व जमाया है कि प्रान्तीय भाषाओं का महत्व नहीं के बराबर रह गया है। भारत के किसी भी हिस्से में जाकर देख लीजिये, साधारण अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों की बातचीत में आधे से अधिक अंग्रेज़ी के शब्द मिलेंगे। हर तरफ़ अंग्रेज़ी का ही बोल-बाला है। यदि प्रान्तीय भाषाओं को प्रोत्साहन न दिया गया तो शीघ्र ही उनका रहा-सहा अस्तित्व भी नष्ट हो जायगा, जो हमारे लिये बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। अध्ययन की दृष्टि से हम कोई भी भाषा सीख सकते हैं। उसमें बुराई नहीं, किन्तु अपनी प्रान्त की भाषा का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। मैं मानता हूँ अंग्रेज़ी से, जिसने कि आज अंतर्राष्ट्रीय बाना पहिन लिया है, आसानी से छुटकारा नहीं मिल सकता। अंग्रेज़ी का इतना साहित्य हमारे यहाँ आगया है कि आज़ादी मिल जाने पर भी उससे पूरी तौर पर सम्बन्ध-विच्छेद करना संभव न होगा। लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं कि हम अपने यहाँ की भाषाओं की कीमत पर अंग्रेज़ी को प्रोत्साहन दें।

प्रश्न हो सकता है कि हिन्दी जब राष्ट्र भाषा है तो विभिन्न प्रान्तों की भाषाओं को आगे बढ़ाना उसके मार्ग में बाधक न होगा? मेरी राय में यह आशंका निर्मूल है प्रान्तीय भाषाएँ उन्नत होकर राष्ट्र-भाषा को सहायता ही पहुंचायेंगी। 'मधुकर'-सम्पादक ने इस आशंका का निराकरण करते हुए स्वयं लिखा है। "बुन्देली भाषा अपनी भर पूर भेंट विधिवत राष्ट्र भाषा को दे सकेगी।"

प्रान्त-निर्माण के सम्बन्ध में प्राप्त हुए लेखों का अध्ययन करने पर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि बहुत से लोगों ने इस योजना पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया, कोई सज्जन तो उसके पीछे किसी राजनैतिक आकांक्षा के होने का अंदेशा करते हैं और कोई उसकी तुलना पाकिस्तान की योजना से करते हैं। यदि वे निष्पक्ष होकर व्यापक दृष्टि से इस समस्या पर विचार करें तो ये सब चीज़ें उन्हें दिखाई देंगी। कहना न होगा कि इस योजना के कार्यान्वित होने पर समूचा राष्ट्र शक्तिशाली ही बनेगा।

बुन्देलखण्डी अपना पृथक अस्तित्व रखती है अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में अधिक कहना आवश्यक नहीं है। ब्रजभाषा और बुन्देलखण्डी का अन्तर थोड़ा-सा सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर साफ़ दिखाई दे जाता है। जो बंधु बुन्देलखण्डी को ब्रजभाषा बताते हैं, उनसे मैं अनुरोध करूँगा कि वे इन दोनों भाषाओं का अच्छी तरह से अवलोकन करें। ऐसा करने पर, मुझे आशा है, वे इतनी ग़ैर जिम्मेदारी की बात नहीं कहेंगे।

संभव है कुछ महानुभावों को यह योजना असंभव दिखाई दे, किन्तु ऐसी बात नहीं है। बहुत सी बातें, जिनकी हम स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते, सामने आ जाती हैं। इसलिये इस योजना को कार्यशील बनाने के लिये हम सबको चेष्टा करनी चाहिये।

अंत में अपने बंधुओं से मैं यही अनुरोध करूँगा कि इस महान् यज्ञ की पूर्ति के लिये हम लोग जो कुछ कर सकें, करें। कोरे लेखों या बातचीत से काम न चलेगा। इसके लिये त्याग चाहिये और उसके लिये हम सबको तैयार रहना चाहिये।

'मधुकर'-सम्पादक से हमारी प्रार्थना है कि वह 'बुन्देलखण्डी विश्वकोष' को शीघ्रातिशीघ्र तैयार करके जनता के समक्ष लावें, जिससे लोगों को पता तो चले कि बुन्देलखण्ड में कैसी-कैसी अमूल्य चीज़ें हैं। प्रान्त की सीमा तथा बोली और साहित्य आदि पर तो भली प्रकार से प्रकाश डाला ही जायगा। आशा है आज जो सज्जन प्रान्त-निर्माण की योजना के प्रति सशंक हैं उनका समाधान 'विश्वकोष' से हो जायगा।

हरपालपुर (सी० आई०)]

प्रान्त-निर्माण की योजना

(देश को सबल ही बनायगी)

श्री तुलसीदास शर्मा वकील

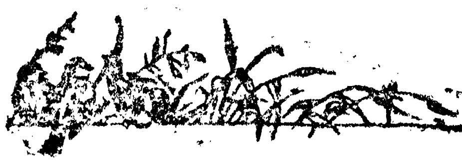
'मधुकर'—सम्पादक की प्रान्त-निर्माण सम्बन्धी योजना के विपक्ष में 'लोकमान्य' और 'जाग्रति' ने जो विचार प्रकट किये हैं, वे न केवल आश्चर्यजनक हैं, बल्कि खेदजनक भी हैं। सम्पादक के लिये साहित्य के साथ राजनीति का ज्ञान होना भी ज़रूरी है और जहाँ तक प्रान्त-निर्माण की समस्या को मैं समझा हूँ, कह सकता हूँ कि बुन्देलखण्ड प्रान्त का निर्माण कर 'मधुकर'—सम्पादक उसके डिक्टेटर या नेता नहीं बनना चाहते और न देश का विभाजन ही करना चाहते हैं। इस योजना से तो देश सबल ही बनेगा।

'लोकमान्य' का यह कहना कि ब्रज से पृथक् बुन्देलखण्डी भाषा अपना कोई अस्तित्व नहीं रखती, बड़ी विचित्र-सी बात जान पड़ती है और ऐसा कहना उनकी अनधिकार चेष्टा भी है। जब हम बुन्देलखण्डी साहित्य पर दृष्टि डालते हैं, उसकी कहानियाँ, कविताओं, ग्राम्य-गीतों, फागों तथा बुझौअल आदि को देखते हैं तो हम इसी निर्णय पर आते हैं कि बुन्देलखण्डी का अपना अस्तित्व है और रहेगा। बुन्देलखण्डी भाषा की सजीवता और सुन्दरता से कौन इन्कार कर सकता है? जो लोग उसके साहित्य से अनभिज्ञ हैं, मेरी राय में, उन्हें इस सम्बन्ध में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है, 'लोकमान्य' और 'जाग्रति' के सम्पादक महोदय बुन्देलखण्ड में आकर यहाँ के प्राकृतिक रूप भाषा, भावना, रहन-सहन, पहनावा, बन, नदी आदि का अध्ययन करें और तब बतायें कि उनकी उक्त धारणा में कितनी सचाई है।

'जाग्रति' को जो इस योजना के पीछे पाकिस्तान की गंध आई है, कहाँ पाकिस्तान की गंदी योजना और कहाँ भाषा और संस्कृति के आधार पर बुन्देलखण्ड प्रान्त का निर्माण! मेरी समझ में 'जाग्रति' के सम्पादक ने इस प्रश्न पर केवल राजनैतिक दृष्टिकोण से ही विचार किया है और वह भी एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति को लेकर, अन्यथा इस पाकिस्तानी आशंका के लिये इस योजना में कोई अधिकार ही नहीं। अपने घर में यदि चीज़ें इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं और कोई उन्हें उठाकर व्यवस्थित रूप से यह सोचकर रखता है कि घर सुन्दर लगने लगे और कुटुम्बी जनों को इस बात का पता भी लग जाय कि घर में क्या-क्या चीज़ें हैं तो इसमें बुराई क्या है? बुराई तो घर के बटवारे में है, उसे संगठित कर शक्तिशाली बनाने में नहीं। प्रान्त-निर्माण की यह योजना भी इसी प्रकार की है। बुन्देलखण्ड रूपी विशद् परिवार में अस्त-व्यस्त या अन्धकार में पड़ी चीज़ों को ढंग से रख कर उसे सबल बनाना इस योजना का ध्येय है। देश के टुकड़े-टुकड़े करने की तो स्वप्न में भी कल्पना नहीं है।

'मधुकर'-सम्पादक की इस विचार योजना पर साधुवाद देना चाहिये।

ओरछा]



प्रान्त-निर्माण-योजना का आधार

(सद्भावना और विश्वास है)

श्री किरणबिहारी 'दिनेश'

संसार की घटनाएँ साक्षी हैं कि जब-जब आम जनता में प्रचलित सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक धारणाओं और परिस्थितियों के विरुद्ध, चाहे वे कितनी ही भ्रमपूर्ण और अहितकर ही क्यों न हों, कभी किसी स्पष्ट वक्ता ने आवाज़ उठाई है तो उसे अवश्य विरोध का सामना करना पड़ा है; किन्तु पक्ष-विपक्ष में भली प्रकार विचार विनिमय होने का परिणाम शुभ ही होता है। परन्तु कभी-कभी मानव स्वभाव की निर्बलता सिद्धान्तों की आड़ में ऐसे वितंडावादों की सृष्टि करती है, जो केवल विरोध करने के लिए होते हैं।

ऐसा ही एक वितंडावाद, 'मधुकर' में प्रकाशित श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी लिखित सम्पादकीय लेख 'बुन्देलखण्डी विश्वकोष' को लेकर उठ खड़ा हुआ है। मेरे सामने इस वितंडावाद के विषय में कलकत्ते के हिन्दी दैनिक 'लोकमान्य', साप्ताहिक 'जाग्रति' और दैनिक 'जाग्रति' के लेख हैं। प्रान्त-निर्माण के इस आन्दोलन में मुझे तो साहित्यिक और सांस्कृतिक आधार ही नज़र आरहा है। श्रीमान् ओरछेश आज तक राजनैतिक क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़े और इस आन्दोलन में अपना राज्य तक उत्सर्ग कर देने की भावना में उनका एक भावुक साहित्यिक का रूप ही दिखाई देता है। तब साप्ताहिक 'जाग्रति' ने इस आयोजन में राजनैतिक नेता बनने के षड्यंत्र की कल्पना न जाने किस आधार पर कर डाली है? 'मधुकर' के सम्पूर्ण लेख को पढ़ जाने पर भी उसमें कहीं राजनैतिक कूट-नीति की छाया तक नहीं मिलती। जिस स्वप्न को 'लोकमान्य' कोरा सपना और भावुक हृदय की कल्पना-मात्र मानता है और पृथक प्रान्त की लालसा को न तो युक्ति संगत ही, न न्यायपूर्ण और न प्रोत्साहन देने योग्य, मुझे तो उसके मूर्त रूप ग्रहण करने में कोई सन्देह ही नहीं दिखाई देता, यदि सत्य ही श्रीमान् ओरछेश पृथक प्रान्त बनाने की अभिलाषा-पूर्ति में अपना राज्य तक उत्सर्ग कर देने, और बुन्देलखण्ड की जनता साधना-यज्ञ के लिए कटिबद्ध होजाय। साधना और हुल्लड़बाजी में अन्तर है। साधना में प्रतिपक्षी को हानि पहुँचाये बिना त्याग, तप और आत्म-बलिदान के द्वारा अपने इष्ट तक पहुँचना होता है और हुल्लड़बाज़ी में प्रतिपक्षी को कष्ट पहुँचा कर। पाकिस्तानी-आन्दोलन की तह में दुराग्रह है, साधना नहीं और यही कारण है कि दिखाने के लिये पाकिस्तान का नारा सर्वसम्मत सिद्धान्त आत्म-निर्णय का अधिकार होते हुए भी उसका इतना विरोध हो रहा है। असल में देश के संगठन की मज़बूती केन्द्रीय शासन की शक्ति तथा जनता के नैतिक बल पर निर्भर है। मुग़ल-काल के अन्त में सारा साम्राज्य, एक सम्राट के अधीन होते हुए भी देश इतना कमज़ोर था कि एक व्यापारिक कम्पनी के हाथ में शासन-सत्ता चली गई। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रान्तों के बटवारे से देश के संगठन में कोई निर्बलता नहीं आती, वरन् केन्द्रीय शासन-सत्ता और जनता की मनोवृत्तियाँ सबलता और निर्बलता का कारण होती हैं।

बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण की योजना के पीछे एक रचनात्मक भावना है, जिसको लेख के अन्त में श्री बनारसीदासजी ने अपने इन शब्दों में व्यक्त कर दिया है—"(१) हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि बुन्देलखण्ड प्रान्त अपनी सर्वोत्तम भेंट भारत माता की सेवा में उपस्थित कर सके। (२) बुन्देलखण्ड का प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने मानवोचित गौरव का अनुभव करें और उसे अपनी राजनैतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक उन्नति के लिए सम्पूर्ण साधन सुलभ हों।" इस

प्रकार इस योजना का आधार सद्भावना और विश्वास है। यदि पृथक प्रान्त बन सकना संभव हुआ तो बुन्देलखण्ड देश के लिए बरदान सिद्ध हो सकता है।

जनता की इच्छाओं की पूर्ति होना पराधीन देशों में कठिन ही होता है। अभी जनता की इच्छाओं की पूर्ति का एक-मात्र साधन तो पहले राजनैतिक शक्ति प्राप्त करना ही है। अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करते हुए तबतक साहित्यकार और कलाकार अपने-अपने आदर्श के अनुसार सात्विकता के साथ पृष्ठभूमि की तैयारी कर सकते हैं। वितंडावादों से कुछ नहीं होने का यही कारण है कि बुन्देलखण्ड के पृथक प्रान्त बनाये जाने की मांग का भारतीय राजनैतिक क्षेत्र से कोई विरोध नहीं हुआ, जहाँ से कि सबसे पहले होना आवश्यक था। भारतीय राजनीतिज्ञ जानते हैं कि प्रान्तों के निर्माण और संगठन की शक्ति राजनैतिक सत्ता के हाथ में है। पराधीन देशों में शासन-सत्ता अपने हितों और सुविधाओं को दृष्टि में रख कर ही प्रत्येक कार्य करती है। उसकी दृष्टि में जनमत का अधिक महत्व नहीं होता। बम्बई से सिन्ध-प्रान्त आर्थिक कठिनाई होते हुए भी सम्भवतः शासन-सत्ता के हितों के लिए आवश्यक समझ कर पृथक कर दिया गया। ब्रह्मा प्रान्त को इतने लम्बे गठबंधन के बाद भारत से पृथक देश माना गया। इसी प्रकार अदन को सैनिक दृष्टि से भारत से पृथक रखना शासक सत्ता ने अपने लिये आवश्यक समझा। इन पृथकरणों के लिये, जहाँ तक मुझे ज्ञात है, कोई जन-आन्दोन का प्रभाव नहीं कहा जा सकता। और आन्दोलन होने पर भी आन्ध्र और तामिलनाड पृथक नहीं हो सके।

प्रान्तों का निर्माण तो, चाहे स्वाधीन देश हो चाहे पराधीन, शासन-सत्ता शुद्ध राजनैतिक व्यवस्था की सुविधा के आधार पर करती है। प्रान्तों का निर्माण संस्कृतियाँ और भाषाओं के चौगान नहीं होते। हाँ, स्वतंत्र देशों में जनमत का अवश्य आदर होता है। इस दृष्टि से शासन-सत्ता के भारतीयों के हाथ में आने पर यदि बुन्देलखण्ड की जनता अपना प्रान्त पृथक करना चाहेगी और वह स्वावलम्बी हो सकेगा तो उसे अवश्य ही प्रान्तीय संगठन करने की सुविधा दी जायगी और शक्तिशाली स्वतंत्र भारत के हजार संगठित प्रान्त भी देश के संगठन में कमज़ोरी के कोई कारण नहीं होंगे। सम्भवतः 'लोकमान्य' और 'जाग्रति' प्रान्तों को पृथक देश मानने की भ्रमपूर्ण स्थिति में आ पड़े हैं। जिस दिन उनका यह भ्रम दूर हो जायगा, उस दिन अधिक प्रान्तों के बन जाने पर देश के लिये किसी संकट की आशंका उनके मस्तिष्क में उत्पन्न ही न होगी। इस समय तो प्रान्त बनाना शासन-सत्ता के आधीन है और बुन्देलखण्ड के पृथक प्रान्त बन जाने की कोई सम्भावना नहीं है। साहित्यिकों को इस प्रकार अशिष्टता पूर्ण ढंग से आकाश-पाताल एक करना दूरदर्शिता नहीं कही जा सकती। फिर भी यदि किन्हीं कारणों से शासन-सत्ता पृथक प्रान्त बना ही दे तो जिस प्रकार उड़ीसा पृथक होकर भी देश के लिये अनिष्ट-कारक सिद्ध नहीं हुआ, 'लोकमान्य' और 'जाग्रति' को विश्वास करना चाहिये कि बुन्देल-खण्ड यदि उपयोगी सिद्ध न हुआ तो घातक भी सिद्ध न होगा।

जब ब्रजभाषा को उसके विकासोन्मुख और प्रगतिशील साहित्यिक काल में भी अनेक भाषाओं की जननी होने का पद प्राप्त नहीं हो सका, तब आज गद्य-साहित्य के विकास के युग में, जब ब्रजभाषा संयुक्त-प्रान्त के कुछ ज़िलों की बोली मात्र रह गई है, 'लोकमान्य' का ब्रजभाषा को भाषा-जननी के पद पर बिठाने का प्रयत्न हास्या-स्पद, अनुभव-हीनता और भ्रम-जालबिद्धता है। यदि यह मान भी लिया जाय कि ब्रजभाषा किसी काल में भाषा के पद पर आसीन थी, फिर भी आज उसे उस भाषा ने पद-च्युत कर दिया है, जिसके नाम के साथ भाषा शब्द भी नहीं है और वह है खड़ी बोली। इस बोली नाम की भाषा ने न केवल भाषा का पद प्राप्त किया है,

बल्कि वह राष्ट्रभाषा मानी जा रही है। 'लोकमान्य' का अल्प भेद व्याकरण भी ब्रजभाषा के लिये हितकर सिद्ध होगा, इसमें संदेह ही है। भाषा-जगत में इस व्याकरण के स्वीकार कर लेने पर, बिहार जैसा भूकम्प आये बिना न रहेगा और उसके फलस्वरूप ब्रजभाषा का 'लोकमान्य' निर्मित विशाल-भवन भी धराशायी होता नज़र आवेगा।

जिन्हें इस आन्दोलन का विरोध के लिये विरोध करना है अथवा जिन्हें 'लोकमान्य' का समर्थन के लिये समर्थन करना है, उन्हें छोड़कर किसी भी भाषा-शास्त्री से लेकर मोटी-से-मोटी बुद्धि वाला साहित्यिक एक 'लोकमान्य' के कथनानुसार बुन्देलखण्डी बोली को सर्वथा ब्र-भाषा स्वीकार न करेगा। दो भाषाओं में कितना ही अल्पभेद क्यों न हो, उसके साथ सर्वथा शब्द लगाकर समझ दर्शाना शब्दों के साथ व्यभिचार करना है। जब बुन्देलखण्डी और ब्रजभाषा में भेद मौजूद है तो साहित्य संसार को उसका स्वतंत्र अस्तित्व मानना ही होगा। हाँ, इन प्रान्तीय भाषाओं को राष्ट्रभाषा का अङ्ग माना जा सकता है। विभिन्न भाषाओं ('लोकमान्य' के शब्दों में बोलियों) का शुद्ध रूप सुरक्षित रखना भी साहित्यिक साधना का एक प्रधान और आवश्यक अङ्ग है। एक भाषा को दूसरी भाषा में मिला देने की 'लोकमान्य' की नीति को भाषा-जगत में या बोली-जगत में, जो भी कहिये, अवाँछनीय ही माना जायगा और मैं देखता हूँ कि 'मधुकर'-सम्पादक अपने इसी पवित्र और विनम्र कार्य में प्रयत्नशील है।

ग्वालियर]

बुन्देलखण्ड प्रान्त क्यों ?

कुँवर भगवानसिंह राजपूत

बुन्देलखण्ड-प्रान्त आज एक पदाक्रान्त प्रदेश के रूप में पड़ा हुआ कराह रहा है। विजेताओं ने, जान में अथवा अनजान में, हमारी राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलने तथा अपने शासन की सुविधा के विचार से हमारे प्रान्त के टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं। एक प्रकार से उन्होंने हमारे अस्तित्व को ही मिटा दिया है, परन्तु सहभाषा-भाषिता के सम्बन्ध को वे नहीं मिटा सके। यही कारण है कि समय के कुचक्र में फंस कर हमारी राष्ट्रीय भावनाएँ कुछ समय तक के लिए दब अवश्य गई थीं, परन्तु मिटी न थीं और आज अनुकुल अवसर पाकर पुनः पल्लवित हो रही हैं।

कुछ लोग इस प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन को पाकिस्तान की भाँति आशंका की दृष्टि से देखते हैं। कुछ लोगों का यह भी ख्याल है या हो सकता है कि ओरछेश पूरे प्रान्त को हड़पने की चेष्टा में हैं, परन्तु बुन्देलखण्ड की जनता, जो इस आन्दोलन के सम्पर्क में आ चुकी है, इस बात को भली भांति जानती है कि ये शंकाएँ कितनी निर्मूल हैं।

भारतवर्ष की अखंडता के हम उतने ही की पक्षपाती हैं जितना एक भारतवासी हो सकता है। भारत की स्वतंत्रता में ही बुन्देलखण्ड स्वतंत्रता सन्निहित है। भारत से पृथक अपना अस्तित्व बनाना हमारा ध्येय नहीं है। स्वतन्त्र भारत से अंतर्गत जिस प्रान्तीय स्वतंतत्रा का अन्य प्रान्त उपभोग करेंगे, केवल वही हम अपने लिए चाहेंगे। हमारे आन्दोलन का ध्येय केवल इतना है कि आज जो हमारे प्रान्त का मस्तक यू० पी० में, धड़ सी० आई० में और पैर सी० पी० में मिला कर उसका अस्तित्व ही मिटा दिया गया है,

उसका पुनः एकीकरण करके बुन्देलखण्ड को एक स्वतंत्र प्रान्त का रूप दे दिया जाय।

हमारी बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण की माँग किसी व्यक्ति-विशेष की महत्वाकाक्षाओं के फल स्वरूप न होकर स्वयं हमारी आवश्यताओं के कारण है। सहभाषा-भाषी ही एक-दूसरे के भावों, आवश्यकताओं एवं विचारों को अन्य भाषा-भाषियों की अपेक्षा अधिक समझ सकते हैं और अपने कष्टों को दूर करने के लिये मिलकर समुचित उपाय कर सकते हैं। यदि वर्तमान दशा में भारतवर्ष स्वतंत्र हो जाता है तो भी बुन्देलवासियों की दुर्दशा का अंत न होगा। यू० पी०, सी० पी० एवं सी० आई० तीनों ही में बंट जाने के कारण बुन्देलखण्डी तीनों प्रान्तों में ही अल्पमत में पड़ जाते हैं। अतः बहुमत के आगे हमें सर झुकाना पड़ेगा, यह एक निश्चित बात है। हमारे लिए फिर भी तुलसीदास जी की यह कथनी चरितार्थ होती रहेगी :—

"कोउ नृप होइ हमें का हानी,
चेरी छांड़ न होउब रानी।"

ऐसी दशा में आज जब कि सारा संसार पुनर्निर्माण की दिशा में प्रयत्नशील हो रहा है, हमारा फ़र्ज़ है कि हम भी अपने कर्तव्य के ऊपर विचार करें, अन्यथा हम तो कष्ट भोग ही रहे हैं, आगे आने वाली हमारी संतति भी हमारे नाम को रोयेगी।

संसार में सबसे बड़ा सम्बन्ध सह-भाषा भाषिता का होता है। इसके ऊपर जो राष्ट्र की नींव खड़ी होगी, वह पक्की और दृढ़ होगी, ऐसा हमारा अटल विश्वास है। भविष्य बतलावेगा कि भाषा के आधार पर जिन जनपदों का निर्माण होगा वही सच्चे राष्ट्र के द्योतक होंगे। हमारी ही भाँति और जितने प्रान्त पदाक्रान्त हैं, उनके प्रति हमें पूर्ण सहानुभूति है और हमें आशा ही नहीं, अपितु विश्वास है कि यदि आज नहीं तो कल हमारे संकल्प की दृढ़ता एवं निष्कपटता से प्रभावित होकर समस्त भारत हमारी माँग का समर्थन करेगा।

हमारे लिए बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण का प्रश्न जीवन-मरण का प्रश्न है। स्वतन्त्र भारत में हमारा अस्तित्व बिना स्वतन्त्र प्रान्त-निर्माण के असम्भव है। अतः प्रत्येक प्रान्त-निवासी का कर्तव्य है कि वह इसके आन्दोलन में भरसक सहयोग दे। अपनी माँग के पीछे हमारा संगठन आवश्यक है। जब तक हम में आपसी फूट रहेगी, ब्रिटिश सरकार हमारी माँग को कभी भी स्वीकार न करेगी। अतः ब्रिटिश भारत में हमारे प्रान्त का जो भाग पड़ता है, उसकी प्रजा में प्रचार करने के साथ-ही-साथ देशी राज्यों की प्रजा का प्रथम कर्तव्य है कि वह सब छोटे-छोटे राज्यों को प्रथम एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न करे। श्रीमान् ओरछेश सेवा-संघ के अधिवेशन में कह ही चुके हैं कि जन-बल महान बल है। वह जन-बल की पुकार को सहर्ष अपनाने के लिए तैयार हैं। हमें आशा है कि बुन्देलखण्ड के अन्य राजा-महाराजा भी अपनी प्रजा की आवाज़ को सुनेंगे। आवश्यकता केवल इस बात की है कि जन-बल द्वारा यह माँग उनके सामने संगठित रूप में रक्खी जावे। संगठित माँग के ठुकराने का साहस किसी में नहीं है, न हो सकता है।

यदि बंगाली बंग-विच्छेद को रोक सकते हैं, सिन्धी एवं उड़िया अपने स्वतन्त्र प्रान्त बनवा सकते हैं, तो हम बुन्देलखण्डी, जिन्होंने देश के लिए चिरकाल से अपने रक्त को पानी की तरह बहाया है, क्या अपने प्रान्त के निर्माण में पीछे हट कर असफल रहेंगे? कदापि नहीं। केवल आवश्यकता है सच्चे कार्यकर्ताओं की।

हमारी माँग सीधी और सच्ची है तथा हमारे साधन भी अहिंसक हैं। हम रक्तपात द्वारा किसी क्रान्ति के उपासक नहीं। हम तो अपने पक्ष की सहायता द्वारा अपने विपक्षियों का हृदय परिवर्तन करके अपने उद्देश्य की सफलता चाहते हैं।

हमें आशा है कि हमारे लेखक, शिक्षक एवं लोक-सेवक जनता को ठीक दिशा में शिक्षित

करके जन्म-भूमि के ऋण से उऋण होने को तुरन्त ही सचेष्ट हो जावेंगे और वह दिन भी दूर नहीं है जब हम अपनी आशा को फलवती देखेंगे।

ओरछा, बुन्देलखण्ड]

बुन्देलखण्ड का संगठन

श्रीमती भगवती देवी नायक

जिस भूमि में हमारा जन्म हुआ है, जिसकी मिट्टी में पालन-पोषण पाकर हम इतनी बड़ी हुई हैं, उसकी उन्नति के सम्बन्ध में विचार करना और प्रयत्नशील होना प्रत्येक बुन्देलखण्डी का कर्तव्य है। कर्तव्य ही नहीं, अधिकार भी है। हमारे लिए यह अत्यन्त ही खेद की बात है कि अबतक हम उसके लिये कुछ भी नहीं कर सकीं, लेकिन अब समय आ गया है कि हमें अपनी निद्रा का परित्याग करके अपने कर्तव्य को समझना और उसका पालन करना चाहिये।

बुन्देलखण्डी हम हैं, इस बात से कोई इन्कार कैसे कर सकता है? जिस किसी प्रान्त में हम जाती हैं, हमारा यह कह कर परिचय दिया जाता है कि 'यह बुन्देलखण्डी हैं।' नकशों में बुन्देलखण्ड का उल्लेख आता है। किताबों और लेखों में हम बुन्देलखण्डी बोली और भाषा की बाबत पढ़ती हैं। हमारे बारे में एक कहावत भी प्रचलित है—"सौ दंडी और एक बुन्देलखण्डी।" इतना ही नहीं, बुन्देलखण्ड की नदियों, तालाबों के जल से हमारा जीवन चलता है। हमारे अपने मेले हैं, त्यौहार हैं, तीर्थ हैं। हमारे महापुरुषों की वीर गाथाएँ हैं। ऐसी दशा में अपने प्रान्त से हमारा प्रेम हो, यह स्वाभाविक ही है। हम जानती हैं जीवन-पर्यन्त यहीं की भूमि में हमें भला-बुरा सब कुछ करना और भोगना है। इसलिए हमारी ज़िन्दगी के साथ उसका अभिन्नतम सम्बन्ध है।

प्रान्त की उन्नति के लिये प्रान्तवासियों का संगठन आवश्यक है और संगठन के लिये प्रान्त का पुनर्निर्माण ज़रूरी है। हमारी जो शक्तियाँ आज बिखरी हुई हैं, उन्हें एकत्र किये बिना संगठन होगा कैसे?

हमें हर्ष है कि उस दिशा में कदम उठाया जा रहा है। उसमें प्रत्येक बुन्देलखण्डी को प्रान्त-प्रेम और उससे भी अधिक देशप्रेम के नाते अपना भरसक सहयोग देना चाहिये। प्रान्त की उन्नति देश की ही उन्नति है, क्योंकि प्रान्त देश का ही तो एक अंग है।

प्रान्त-निर्माण के कार्य में अबतक अकेले भाई ही जुटे हैं। बहनों का भी कर्तव्य है कि इस पुण्यकार्य में उन्हें अपना पूर्ण सहयोग दें। यह सच है कि यहाँ की बहनों में शिक्षित कम ही हैं, फिर भी जो जिस रूप में सहायता दे सकें, दें, प्रान्त की सर्वांगणी उन्नति हो, इसके लिये बहनों का आगे बढ़ना अनिवार्य है। हमें समझ लेना चाहिये कि बुन्देलखण्ड के एकीकरण में ही हमारा कल्याण है।

इस पुनीत कार्य के लिये मैं अपनी सेवाएँ अर्पित करने के लिये उद्यत हूँ। श्रीमती महारानी साहिबा से मेरी विनय है कि श्रीमान् महाराज साहब ने जिस महान् यज्ञ का श्रीगणेश करके प्रान्तवासियों के लिये एक कल्याणकारी कार्य किया है, उसकी पूर्ति के लिये वे यहाँ के महिला-समाज का नेतृत्व ग्रहण करके उन्हें मार्ग बताने की कृपा करें।

निमचौनी, तहसील निवारी,
(ओरछा राज्य)

बुन्देलखण्ड-प्रान्त और रियासती प्रजा का कर्तव्य

श्री लक्ष्मीचन्द्र गुप्त

बुन्देलखण्ड का विस्तार प्राचीन काल में कहाँ-से-कहाँ तक था और इस समय कितना है, इसका निर्णय मैं स्वयं नहीं करना चाहता। हदबन्दी के निर्णय का अधिकार तो यहाँ के निवासियों को है। पर इतना अवश्य है कि सीमा निर्धारित करने में इस सिद्धान्त को मैं अधिक उपयुक्त मानता हूँ कि देश के केवल उसी भाग को बुन्देलखंड माना जाय, जहाँ के निवासी अपने को बुन्देलखंडी कहलाने में गौरव मानते हों, एक दूसरे की बात आसानी से समझ लेते हों तथा जिनका रहन-सहन, रीति-रिवाज बहुत कुछ समान हो।

जब बुन्देलखंड प्रान्त बनेगा तो वहाँ के निवासियों को वे समस्त नागरिक अधिकार प्राप्त होंगे जो स्वतंत्र भारत में अन्य प्रान्त वासियों को मिलेंगे तथा वही शासन व्यवस्था होगी जो राष्ट्रीय केन्द्रीय सरकार प्रान्तों के लिए निश्चित करेगी। किसी भी प्रान्त को स्वावलम्बी बनाने के लिए, पर्याप्त भूमि, जन संख्या और आय का होना आवश्यक है। जहाँ तक क्षेत्रफल और जन संख्या का प्रश्न है, बुन्देलखंड प्रान्त किसी तरह भी छोटा नहीं बैठता। अगर बुंदेलखंड प्रान्त में केवल उन्हीं स्थानों के निवासियों को सम्मिलित किया जाय जो अपने को बुंदेलखंडी कहने में गर्व अनुभव करते हों और देश की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक, सब प्रकार की उन्नति के लिए अपना संगठन चाहते हों, तो भी यहाँ की भूमि और जन-संख्या प्रान्त निर्माण के लिए पर्याप्त होगी। बुन्देलखंड में अनेकों ऐसे प्रकृति-दत्त साधन हैं, खनिज-पदार्थ, नदियाँ, बन, आदि जिनसे सम्मिलित उद्योग द्वारा यहाँ की आर्थिक समस्या भी आसानी से हल हो सकती है। पहाड़ों में कई प्रकार की जड़ी-बूटियाँ, औषधियाँ, हीरे जैसे बहुमूल्य पत्थर तथा इमारती पत्थर पाये जाते हैं। तथा इस प्रान्त की भूमि में मूल्यवान खनिज पदार्थ, लोहा आदि मिलते हैं। नदियों के बाँध बाँधकर सिंचाई के साधन हो जाने से यहाँ की कृषि में काफी उन्नति हो सकती है। बनों से, वृक्षों और उनके फलों से पर्याप्त आय हो सकती है। इनका उचित उपयोग करना देश और प्रान्त के प्रबन्ध कुशल विशेषज्ञों का काम है। पर हमें यह पूर्ण विश्वास है कि बुन्देलखण्ड में उक्त प्रकार की कोई भी कमी नहीं रह जाती है।

बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण में मुख्यतया दो प्रकार के क्षेत्रों के नागरिकों का सम्मेलन होना है—एक ब्रिटिश भारत के, दूसरे रियासतों के। मिलाप समशक्तियों में और समान अधिकारों द्वारा चिरस्थायी होता है। जहाँ तक ब्रिटिश भारत निवासियों का प्रश्न है, उन्होंने अपने त्याग और तपस्या के बल पर काफी राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक उन्नति कर ली है और आगे भी चले जाने के लिए कटिबद्ध हैं। पर इस सम्बन्ध में उनमें और रियासती प्रजा में ज़मीन आसमान का अन्तर दिखाई देता है। यहाँ त्याग और तपस्या की कमी है। इस कारण रियासतवासी अंग्रेजी इलाके वालों की समानता पर नहीं आते हैं। इसी कारण उनका ऐक्य कठिन प्रतीत होता है। इस असमानता का कारण चाहे हमें दृष्टिगोचर न हो, पर उसका फल तो हम देख ही रहे हैं। यदि ब्रिटिश भारत जैसी जागरूकता रियासतों में भी दिखाई देने लगे तो आन्तरिक एकता भी स्थापित हो जायगी।

इसलिए बुन्देलखण्ड की रियासती प्रजा का कर्तव्य हो जाता है कि वह राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के लिए ब्रिटिश भारत को प्रजा के समान ही कटिबद्ध हो जाय। बुन्देलखण्डी रियासतों का पूर्वकाल गौरव मय रहा है, पर आवश्यकता है कि वर्तमान प्रजा भी अपने

पूर्व गौरव के अनुकूल उन्नति करने के लिए तमाम आवश्यक त्याग व साधना के लिए तैयार हो जाय। इस कारण हमारे निम्न कर्तव्य हो जाते हैं:—

(१) हमें जो नागरिक तथा राजनैतिक अधिकार मिले हैं, उनका पूर्ण उपयोग किया जाय ताकि लोकमत शिक्षित और संगठित हो सके। बहुत से राज्यों में हमें मूल्यवान नागरिक तथा राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं, पर जनता की अशिक्षा तथा उन अधिकारों के ठीक उपयोग न होने से वह लुप्त प्रायः होते जाते हैं। हमें उनके न्याययुक्त उपयोग द्वारा उनको जीवित रखना चाहिए और जनता को शिक्षित करना चाहिए। भाषण, लेखन तथा संगठन की जो स्वतन्त्रता प्राप्त हैं उनका उपयोग प्रान्त-निर्माण आन्दोलन को जन-प्रिय बनाने के लिए करना चाहिए और जहाँ इन सुविधाओं की कमी हो, वहाँ उनकी माँग करनी चाहिए।

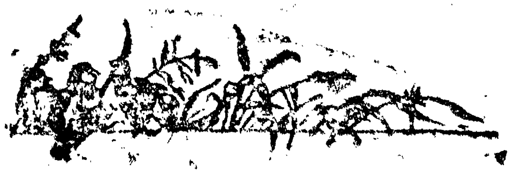
(२) प्रान्त की सेवा के हेतु प्रत्येक वर्ग को संगठित होना चाहिए। व्यापारी, किसान, मजदूर, विद्यार्थी तथा अन्य वर्ग सभी को अपने प्रान्त और देश की उन्नति को अपनी उन्नति समझ उसमें सामूहिक सहयोग देना चाहिए।

(३) आर्थिक और सामाजिक उन्नति के हेतु हम लोगों को रचनात्मक कार्यों में लग जाना चाहिए। प्रत्येक रचनात्मक कार्य के लिए संगठित प्रयत्न किया जाय और जनता के सामूहिक हित को ही प्रधानता दी जाय। गृह-उद्योग और ग्रामीण व्यवसायों का पुनरुद्धार किया जाय व उन्हें प्रगतिशील बनाने में पारस्परिक सहयोग का सिद्धान्त अपनाया जाय, एवं जगह-जगह उद्योगशालायें प्रारम्भ की जायँ।

(४) नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों को समझने के लिए, निरक्षरता का अन्त कर प्रौढ़ पाठशालाओं की स्थापना की जाय। पाठशालाओं और शिक्षालयों में नागरिक शिक्षा को अनिवार्य करने की माँग की जाय। इसी प्रकार पशुओं की नस्ल का सुधार, कृषि शिक्षा, राज्य के नवयुवकों को उच्च शिक्षा व विशेष अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय और राज्यों के अधिकारियों से इस दिशा में सक्रिय सहोग का अनुरोध किया जाय।

जिस उद्देश्य के लिए हम सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हैं, वह उद्देश्य महान है। बिना त्याग, तपस्या व बलिदान के वह हमें प्राप्त नहीं हो सकता। यह आशा करना कि हमारे पहले कोई अन्य व्यक्ति इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए बलि देगा, दुराशा मात्र है। यदि हम अपना बुन्देलखण्ड प्रान्त स्थापित देखना चाहते हैं तो हमें उक्त कामों की पूर्ति में सर्वस्व होम कर देना पड़ेगा, जिसके लिए हमें सर्वदा तैयार रहना चाहिए। जब तक हम अपने राज्यों में इतनी जाग्रति नहीं ला सकते, जिसे देख कर अन्य स्थानों के लोग हमसे मिलने में झिझकें नहीं तब तक हमारा प्रान्त-निर्माण का प्रश्न हल न हो सकेगा। विचारों के साथ-साथ तदनुरूप कार्य आवश्यक है। प्रान्त-निर्माण का ध्येय देश के अंग-प्रत्यंग को मजबूत बना कर भारतवर्ष की एकता और अखंडता को कायम रखना है। इसलिए हमारे कार्य भी तदनुकूल होने चाहिए।

टीकमगढ़
(बुन्देलखण्ड)



मातृभाषाओं का प्रश्न

महा पण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन

मातृभाषाओं के बारे में कहने से पहले हिन्दी के बारे में हम अपनी स्थिति साफ कर देना चाहते हैं, क्योंकि इसको ही लेकर कितने ही भाई बेसमझे तरह-तरह की कल्पनायें उड़ाने लगते हैं। आज के युग ने जहाँ भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी जातियों को आत्मचेतना प्रदान की है, ज्ञान के प्रसार को बढ़ाया है, वहाँ साथ ही साथ भिन्न-भिन्न जातियों को उसने एक दूसरे के बिलकुल निकट कर दिया है। रेलों, जहाजों, विमानों ने देशों की दूरियों को शून्य-सा बना दिया है, और आज भिन्न-भिन्न देशों, प्रान्तों के व्यक्ति उसी तरह एक-दूसरे के पास जीने रहने का मौका पाते हैं, जितना कि किसी वक्त पड़ोसी गाँवों और मुहल्लों के लोग। आज कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, अहमदाबाद, जमशेदपुर, जमालपुर जैसे कल-कारखाने वाले शहरों के देखने से मालूम होता है कि किस तरह वहाँ भिन्न-भिन्न प्रान्तों के मजूर मजूरिनें, एक जगह रहकर, एक ग्राम के वासी बन गये हैं, जिसके कारण वह आपस में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक सम्मिलित भाषा की उपयोगिता को समझते ही नहीं हैं बल्कि वह सरल हिन्दी का इस्तैमाल भी करते हैं। आज के युग में एक सम्मिलित भाषा की उपयोगिता को न समझना वस्तुतः बड़े आश्चर्य की बात होगी। इसीलिए हिन्दी के सम्मिलित साझे की भाषा होने से हम इन्कार नहीं करते।

रोज के आपसी वार्तालाप की तरह साहित्यिक आदान-प्रदान के साधन के तौर पर भारत में हिन्दी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है और रहेगा। इसे भी हमें मानना पड़ेगा। इसलिये हिन्दी-साहित्य के प्रचार और विस्तार की हम किसी से कम कामना नहीं करते। इस बात के तो हम और भी जबर्दस्त पक्षपाती हैं, यह कौरवी सम्बन्धी हमारे विचारों से मालूम होगा।

मातृभाषाएँ हैं

हम तो सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि लोग इस बात को स्वीकार करें कि मेरठ कमिश्नरी (कुरु जनपद) के पौने चार जिलों को छोड़ कर बाकी के लोगों की भी अपनी निजी मातृ-भाषाएँ हैं। यदि इस बात को आप मान लेते हैं तो आगे का काम बिलकुल सरल हो जाता है। पांचाली (रुहेलखण्डी), व्रज (सौरसेनी), बुन्देलखण्डी (दाशार्णी), बघेलखण्डी (वैदिका), वात्सी (दक्षिण अवधी), काशिका (बनारसी), मल्लिका (भोजपुरी), आदि में से एक-एक के बोलने वालों की संख्या लाखों नहीं, करोड़-करोड़ तक पहुँचती है और ये भाषाएँ इन लोगों की मातृभाषाएँ हैं। मातृभाषा की हमारी परिभाषा यह है कि जिसके बोलने में अनपढ़-से-अनपढ़ आदमी और बच्चा तक भी व्याकरण की गलती न कर सके। आप बरसाने के पाँच वर्ष के बच्चे के सामने अपनी सीखी व्रजभाषा को बोलें, बच्चे ने व्याकरण का नाम भी नहीं सुना होगा। लेकिन यदि आप कहीं अशुद्ध बोलेंगे तो वह तुरन्त हँस पड़ेगा। बच्चे ने माँ के दूध के साथ अपनी मातृभाषा और भाषा के साथ उसके व्याकरण को अप्रयास सीखा है। आप इन भाषाओं को हिन्दी से अभिन्न नहीं कह सकते। यदि ऐसा होता तो अवधी, काशिका, मल्लिका आदि भाषाएँ बोलने वाले मिडिल तक ही नहीं, बी० ए० तक भी पढ़कर व्याकरण की भारी भूलें नहीं करते। इस कथन का सबूत ढूँढ़ना हो तो मिडिल तथा ऊपर तक के परीक्षार्थियों की प्रश्नोत्तर कापियाँ देख लें अथवा स्वयं अपने रोज-रोज के तजुर्बे को ही इस्तैमाल कर सकते हैं। सहवास या मजबूरी से मामूली बातों को गलत-सलत समझ-समझा लेने को आप भाषा अभिज्ञता नहीं कह सकते।

मातृभाषाओं की उपयोगिता

मानव-जाति के आज तक के तथा प्रतिदिन, प्रतिक्षण बढ़ते विस्तृत ज्ञान-दर्शन, विज्ञान, साहित्य-राजनीति के हम उत्तराधिकारी हैं और इस ज्ञान को प्राप्त करना तथा उसे काम में लाना हमारे जीवित रहने के लिए सबसे जरूरी शर्त है। यह ज्ञान सदा भाषा के लिबास में रहता है, भाषा के माध्यम द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। प्रश्न है, क्या आप ज्ञान को बिना समय और श्रम के अधिक व्यय के सिखलाना चाहते हैं? आप 'हाँ' कहेंगे। मगर आपका 'हाँ' व्यर्थ है। जब तक कि आप अवधी, काशिका, मल्लिका भाषा-भाषियों के सामने यह शर्त पेश करते हैं कि पहले वे आठ वर्ष तक हिन्दी सीखें फिर उन्हें ज्ञान-मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार होगा। मुश्किल तो यह है कि शहर के कुछ हिन्दी वाले तथा वर्षों के परिश्रम के बाद हिन्दी बोल लेने वाले हमारे शिक्षक लोग गाँव के गरीबों की कठिनाइयों को बिलकुल ही ख्याल में नहीं लाना चाहते।

मातृभाषाओं को ज्ञान का माध्यम बनाने में शिक्षा की प्रगति कितनी तेजी से हो सकती है, इसका सुन्दर उदाहरण सोवियत मध्य एशिया की तुर्कमान, उजबेक, किर्गिज, कज़ाक जातियाँ हैं जो १९१७ ई० से पहले शिक्षा में भारतीयों से अधिक पिछड़ी हुई थीं। जारशाही दिल से चाहती ही न थी कि उनमें शिक्षा सार्वजनीन हो। इसलिये उसने स्कूलों में रूसी का माध्यम रक्खा था। शिक्षित शहरी तरुण तुर्की (टर्की की साहित्यिक भाषा) को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते हैं, जो कि मध्य एशिया की इन जातियों की मातृभाषाओं के समीप होते हुए भी उनकी मातृभाषा न थी। रूसी के द्वारा यदि ज्ञान के आदान-प्रदान में समर्थ होने के लिए दस साल की शर्त थी, तो तुर्की में आठ साल की। जब दोनों ही शत-प्रति-शत जनता को साक्षर ही नहीं, शिक्षित देखने के लिए उत्सुक नहीं थे तो फिर उन्हें मातृभाषाओं की ओर नज़र दौड़ाने की ज़रूरत ही क्या थी? मगर जब १९१७ की रूसी जन-क्रान्ति के लिए जनता को साक्षर-शिक्षित करना जिन्दगी और मौत का सवाल हो गया तो क्रान्ति के नायकों का ध्यान जनता की बोलियों—तुर्कमानी, उज्बकी, किर्गिज़ी, कज़ाकी की ओर गया। उस वक्त इन भाषाओं की न कोई लिपि थी, न कोई लिखित साहित्य। इसके विरुद्ध रूसी और तुर्की साहित्य विशाल था, लेकिन जनता के पथ-प्रदर्शक भली भाँति यह समझते थे कि सारी जनता को रूसी या तुर्की भाषा पर अधिकार करने के लिए मजबूर करने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि रूसी, तुर्की तथा दूसरी भी समुन्नत भाषाओं में सुरक्षित ज्ञान को तुर्कमानी आदि भाषाओं में उलथी करके जनता के सामने रक्खा जाय। उन्होंने ऐसा ही किया और आज २५ वर्ष बाद मध्य एशिया की कैसी कायापलट हुई, यह हमारे सामने है। जिस उज्बकी भाषा में आज से २५ साल पहले एक भी छपी पुस्तक न थी, आज वह ताशकंद के विश्वविद्यालय के भिन्न-भिन्न विषय वाले कालेजों में शिक्षा का माध्यम है। उसमें अनेकों दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं। हजारों पुस्तकें छपती हैं। जिद्दी बूढ़े-बूढ़ियों को छोड़ वहाँ कोई निरक्षर ही नहीं अशिक्षित भी नहीं हैं।

हम मातृभाषा की जय के नाम पर लोगों को पागल नहीं बनाना चाहते, बल्कि जब हम विशाल जनता को चन्द सालों में साक्षर शिक्षित करने की बात सोचते हैं तो यह छोड़ 'नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय' साफ़ मालूम होता है। यदि विदेशी साम्राज्यवादियों की भाँति हम भी चन्द सेठों बाबूओं को शिक्षित बना उन्हें शासक बनाना चाहते हैं और चाहते हैं कि ९० फीसदी जनता अशिक्षित रह अपने शासकों की मनमानी में दखल न दे तब तो मातृभाषा छोड़ दूसरी भाषाओं को शिक्षा माध्यम बनाने की शर्त बिलकुल ठीक है लेकिन यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आज के कल कारखानों की बारीक मशीनों को शिक्षित मजूर ही चला सकते

है। आज कल के पेचीदा हथियारों को अशिक्षित सिपाही नहीं इस्तैमाल कर सकते।

पिंजरापोल की गायें नहीं, जीवित माध्यम

कितने लोग सोचते हैं कि इन ग्रामीण बोलियों में कितने ही सुन्दर गीत, कहानियाँ, मुहावरे और शब्द पाये जाते हैं। इन बोलियों के लिये मृत्यु का वारंट कट चुका है। इसलिये इनमें उपलभ्य साहित्यिक तथा भाषातात्विक सामग्रियों को जल्दी-जल्दी जमा कर लेना चाहिये उनकी दृष्टि में मातृभाषाओं का बस इतना ही मूल्य है अथवा वे इतनी ही दया की पात्र हैं। मगर वे भारी भ्रम में हैं, जब वे मृत्यु के वारंट की बात सोचते हैं। ब्रजभाषा के लिये मृत्यु का वारंट कट चुका है! अवधी मरणशैया पर लेटी है!! मैथिली सपना बनने जा रही है!!! जाकर पूछिये इन भाषाओं के बोलने वाले करोड़-करोड़ नर नारियों से और सूर, तुलसी, विद्यापति से। सूर, तुलसी, विद्यापति की मुँह देखी यदि करना चाहते हैं तो मल्लिका (भोजपुरी) बुन्देली, बघेली को जीने का अधिकारी समझते हैं या नहीं! जाकर पूछिये तो सवा करोड़ मल्लों (भोजपुरियों) को और चेकोसिलोवाकिया तथा बेलजियम जैसी जनसंख्या रखनेवाले बुन्देलों और बघेलों को। मनमाना मृत्यु का वारंट निकालने की धृष्टता न कीजिये। यदि ये भाषाएँ (बोलियाँ) अब तक नहीं मरी तो निकट भविष्य में वे नामशेष नहीं होने जा रही हैं। उनके तुलसियों, सूरों, विद्यापतियों की आपने अब तक कदर नहीं की या भुला दिया तो अब भी उर्वरता गई नहीं है, भविष्य उनके हाथ में है।

हम बोलियों के गीतों, कहानियों, मुहावरों के जमा करने के विरोधी नहीं, बल्कि जबर्दस्त समर्थक हैं, लेकिन उन्हें म्यूजियम (अजायबघर) की निर्जीव वस्तुओं अथवा पिंजरापोल की अन्तिम घड़ियाँ गिन रही लूली-लँगड़ी गायों के रूप में रखकर नहीं, हम उन्हें देखना चाहते हैं जनपदीय पार्लामेण्टों में बोली जाते, कचहरियों में लिखी जाते, प्राइमरी पाठशालाओं से लेकर कालेजों-विश्वविद्यालयों तक शिक्षा का माध्यम बनते। संक्षेप में—अपने घर में अपनी मालकिन बनते। जनता की भाषा जब घर की मालिकिन बनेगी तभी जनता घर की मालिकिन बन सकती है।

साहित्य का सवाल

मातृभाषाओं के माध्यम की बात करते ही झट लोग सवाल कर बैठते हैं कि पाठ्य पुस्तकें कहाँ हैं? जिन पुस्तकों के पढ़ने खरीदनेवाले लाखों विद्यार्थी हों उनके तैयार होने में कितनी देर लगेगी?

लेखक—ले लीजिये लेखकों की ही बात। पंत, इलाचन्द्र जोशी, हेमचन्द जोशी जैसे लेखकों की मातृभाषा पूर्वी पहाड़ी को लेखकों की दरिद्रता क्या? वही बात बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिशंकर शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी की मातृभाषा ब्रज, सियारामशरण, मैथिलीशरण की मातृभाषा बुन्देली, 'निराला', देवीदत्त शुक्ल की मातृभाषा कौसली (उत्तरी अवधी), 'निर्मल', श्रीनाथसिंह की मातृभाषा वात्सी (दक्षिण अवधी), चंद्रवली पांडे, अयोध्यासिंह उपाध्याय, विश्वनाथप्रसाद मिश्र की मातृभाषा काशिका (बनारसी), उदयनारायण तिवारी, शिवपूजनसहाय, मनोरंजन प्रसाद की मातृभाषा मल्लिका (भोजपुरी), 'राकेश', उमेश मिश्र, अमरनाथ झा की मातृभाषा मैथिली आदि-आदि के बारे में समझ सकते हैं। जहाँ एक बार इस बात को आपने मान लिया कि मातृभाषाएँ शिक्षा का माध्यम हों, वहाँ लेखकों को पैदा करने की फिक्र में दुबले होने की आवश्यकता नहीं। हिन्दी के बहुत ही अधिक लेखक ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं बल्कि ब्रज, कौसली, काशिका, आदि हैं।

प्रकाशन तथा प्रकाशक—वे तो सैकड़ों की संख्या में आपके पीछे-पीछे दौड़ते फिरेंगे और प्रतियोगिता में मैट्रिक तक की पुस्तकों का तैयार हो जाना तो एकाध साल का काम है।

पारिभाषिक शब्द—हिन्दी के लिये भी वह एक-सा ही सवाल है। संस्कृत का शब्द-भांडार मातृभाषाओं के लिए भी खुला है। जर्मन भाषा की भाँति मातृभाषाएँ कितनी ही परिभाषाओं को अपने (बोली के) कोष से बनायेंगीं। पाँवगाड़ी (बाइसिकल), अग्निबोट (स्टीमर) उन्होंने बनाये भी हैं। फिर रेडियो, रेल जैसे कितने ही अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को वैसे ही लिया जा सकता है।

मातृभाषाओं को माध्यम बनाने का अधिकार—यह पिछली कांग्रेसी मिनिस्ट्रियाँ भी कर सकती थीं। फ्रान्टियर की कांग्रेस-मिनिस्ट्री ने पश्तो की पाठशालाओं में माध्यम बनाया भी था। कोई भी राष्ट्रीयतावादी मिनिस्ट्री बुन्देलखंड में बुन्देली, व्रज में व्रजभाषा को शिक्षा का माध्यम बना सकती है। इसमें अंग्रेज महाप्रभुओं को बाधा देने की जरूरत नहीं। यदि आप समझते हैं कि इस लड़ाई के बाद भी दुनिया तो बदलेगी मगर हम और हमारे प्रभु तब भी उसी तरह बने रहेंगे।

प्रान्तों का फिर से बँटवारा—

हाँ, हमारे देश में प्रान्तों का बँटवारा अभी तक शासकों के सुभीते के अनुसार हुआ था। अब उसे जनता के सुभीते के अनुसार करना होगा। तीन प्रान्तों की जगह तीस प्रान्तों के हो जाने में अंग्रेज प्रभुओं की आपत्ति के ख्याल से मरे मत जाइये। यदि आप समझते हैं कि अंग्रेजी साम्राज्य वैसा ही अक्षुण्ण रहेगा, भारत सफेद आई० सी० ऐसों० की चक्की के नीचे वैसा ही पिसता रहेगा तो फिक्र करने की जरूरत नहीं, क्योंकि तब तीन की जगह तीस आई० सी० ऐसों० को लाट साहब बनने का मौका मिलेगा।

नये प्रान्त (जनपदः)

भारत की अखण्डता मिट जाने का अफसोस—यदि आज ग्यारह प्रान्तों और छैसौ से ऊपर देशी राज्यों के रहते भी वह अक्षुण्ण है तो उस वक्त भी इसकी गुञ्जाइश है। जब आत्महत्या के नारे से बंगला, उड़िया, गुजराती, मराठी की आत्महत्या—आत्मगोपन करने के लिए आप तैयार नहीं कर सकते तो, बिचारी व्रजभाषा, बुन्देली, मल्लिका, मैथिली से कौन अपराध बन पड़ा है? फिर भाषाओं को हमने नहीं गढ़ा है। यह विश्व के विकास के क्रम में स्वयं आ मौजूद हुई हैं और भावुकता के नाम पर नहीं, अपनी उपयोगिता के नाम पर जीने देने की माँग कर रही है।

हाँ, तो हमारी मातृभाषाओं के लिये हिन्दी-उर्दू वाले प्रान्तों, पंजाब, सिन्ध, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, बिहार तथा रियासतों को फिर से निम्न जनपदों में बाँटना होगा :—

संख्या	भाषा	जनपद	राजधानी
१	हिन्द की	पश्चिमी पंजाब	रावलपिंडी
२	मध्य पंजाबी	मध्य पंजाब	लाहोर
३	पूर्वी पंजाबी	पूर्व पंजाब	लुधियाना
४	सिन्धी	सिन्ध	करांची
५	मुल्तानी	मुल्तान	मुल्तान
६	कश्मीरी	कश्मीर	श्रीनगर
७	पश्चिमी पहाड़ी	त्रिगर्त	कांगड़ी
८	हरियानी	हरियाना	दिल्ली
९	मारवाड़ी	मारवाड़	जोधपुर
१०	वैराटी	विराट	जयपुर
११	मेवाड़ी	मेवाड़	चित्तौड़
१२	मालवी	मालवा	उज्जैन

संख्या	भाषा	जनपद	राजधानी
१३	बुन्देली	बुन्देलखण्ड	झाँसी
१४	ब्रज	सूरसैन	आगरा
१५	कौरवी	कुरु	मेरठ
१६	पंचाली	रुहेलखण्ड	बरेली
१७	गढ़वाली	गढ़वाल	श्रीनगर
१८	कूर्माचली	कूर्माचल	अल्मोड़ा
१९	कौसली	कौसल (अवध)	लखनऊ
२०	वात्सी	वत्स	प्रयाग
२१	चेदिका	चेदी	जबलपुर
२२	बघेली	बघेलखण्ड	रींवा
२३	छत्तीसी	छत्तीसगढ़	विलासपुर
२४	काशिका	काशी	बनारस
२५	मल्लिका	मल्ल	छपरा
२६	वज्जिका	वज्जी	मुजफ्फरपुर
२७	मैथिली	विदेश (तिहुंत)	दरभंगा
२८	अंगिका	अंग	भागलपुर
२९	मागधी	मगध	पटना
३०	संथाली	संथाल परगना	जसीडिह

इस सूची में कुछ और भाषाएँ बढ़ सकती है। ग्रियर्सन का प्रयत्न प्रारम्भिक था, इसलिये उनके भाषा तथा क्षेत्र के विभाजन भी प्रारम्भिक थे। उन्होंने भोजपुरी के भीतर ही काशिका (बनारसी) और मल्लिका दोनों को गिन लिया है जो व्यवहारतः बिलकुल गलत है। स्टैंडर्ड भाषा का सवाल उठते ही सीधे छपरा और बनारस की बोलियों का दावा आपके सामने आयगा और मल्ल तथा काशी जनपदों के निवासी अपनी-अपनी भाषाओं को अलग सत्ता स्वीकार करा के रहेंगे।

प्रान्तों के पुनर्विभाजन के सम्बन्ध में मालूम होना चाहिये कि सवा करोड़ मल्ल-वासी (छपरा बलिया, आरा, मोतीहारी, देवरिया, दिलदारनगर वाले) उसके लिये सबसे अधिक उतावले हैं। उनका प्रान्त आज बिहार तथा युक्तप्रान्त में बंटा हुआ है, जिसमें युक्त-प्रान्त में उनके साथ का व्यवहार अच्छा नहीं कहा जा सकता।

मातृभाषाओं और जनपदों की माँग उनके वास्तविक पृथक व्यक्तित्व के बल पर की जाती है। यहाँ न विकेन्द्रीयकरण का सवाल है और न बीस करोड़ की भारी भरकम संख्या के न संभाल पाने का सवाल। यदि बीस करोड़ क्या चालीस करोड़ भी एक मातृभाषा-भाषी होते तो सिर्फ संख्या के भारी होने से उसे खंड-खंड करना उचित न होता और विकेन्द्रीयकरण ? यहाँ तो हम वस्तुतः केन्द्रीयकरण कर रहे हैं जब कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बिखरे मल्ल भाषियों (भोजपुरियों) को एक जनपद में संगठित करते हैं। 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनवा जोड़ा' की जगह एक भाषाभाषियों को एक जनपद के रूप में केन्द्रित कर देते हैं।

कौरवी और हिन्दी

सभी जनपदों (प्रान्तों) के बीच राजनीतिक साहित्यिक, सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये एक अन्तर प्रान्तीय भाषा की आवश्यकता

अनिवार्य है, यह हम बतला चुके हैं। हिन्दी (फारसी, अरबी भरमार के साथ यही उर्दू है) इस काम को आज कर रही है और भविष्य में उसे और भी अधिक करना होगा। हम पसन्द करेंगे कि प्राइमरी के आगे बढ़ने पर हर विद्यार्थी को हफ्ते में दो-तीन घंटे हिन्दी का पढ़ना आवश्यक कर दिया जाय। ऊपर के तीन जनपदों में उसे अनिवार्य द्वितीय भाषा मान लेने पर भी शायद किसी को आपत्ति न होगी, किन्तु यह प्रश्न सारे भारत से सम्बन्ध रखेगा और बंगाल, आंध्र, द्रविड़, केरल आदि में से किसी को आपत्ति भी हो सकती है, इसलिये अनिवार्य करना न करना जनपदों के ऊपर छोड़ देना चाहिये। हिन्दी के द्वितीय भाषा के तौर पर अधिक प्रचार होने से कालेजों तथा उच्च खोजों की हिन्दी पुस्तकों का भली प्रकार उपयोग हो सकेगा। यद्यपि छात्र को परीक्षा में अपनी मातृभाषा में उत्तर देने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिये।

लेकिन हिन्दी सिर्फ अन्तर्प्रान्तीय भाषा ही नहीं है, वह कितनों की मातृभाषा है, इसे युक्तप्रान्त के शहरों के रहने वाले पाठक अच्छी तरह जानते हैं। मातृभाषा को माध्यम स्वीकार करने का मतलब है, हमें मुरादाबाद, बरेली, आगरा, दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग आदि शहरों के हिन्दी भाषा-भाषियों की अपनी मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने के लिए उन-उन जगहों पर विशेष स्कूलों का प्रबंध करना होगा। (सोवियत ने भी ऐसा ही किया है) साथ ही जनपदों में उन जनपदों की राजकीय भाषा के तौर पर हिन्दी को नहीं स्वीकार किया जा सकता।

कौरवी—किन्तु एक बात और न भूलिये। हिन्दी शहर के चन्द सफेदपोशों की ही भाषा नहीं है, उसके बोलने वाले ३० लाख से अधिक गाँव की साधारण किसान, मजूर, शिल्पकार जनता भी है। वह मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर के तीन पूरे जिलों तथा देहरादून के निचले तथा बुलन्दशहर के उत्तरी भाग (इन पौने चार जिलों) के गाँवों की जनता की मातृभाषा है। हाँ, उसे गँवारी कह लीजिये, लेकिन जानते हैं अपनी गँवारी बोली के साथ साहित्यिक-भाषा का अटूट सम्बन्ध बना रहना उतना ही आवश्यक है, जितना शहरी बाबू लोगों का गाँव के कमेरों के साथ। जर्मन लेखक अल्बर्ट स्विटज़र का कथन है :—

"The difference between the two languages (the French and the German) as I feel it, I can best describe by saying that in French I seem to be strolling along the wellkept paths in a fine park, but in German to be wandering at will in a magnificent forest. Into literary German there flows continually new life from the dialects with which it has kept in touch. French has lost this ever frech contact with the soil. It is—something finished, while German in the same sense remains something unfinished."

अर्थात्—"फ्रेन्च और जर्मन, इन दोनों भाषाओं के अन्तर को, जैसा कि मैं अनुभव करता हूँ, इस प्रकार सर्वोत्तम ढंग से स्पष्ट कर सकता हूँ कि जहाँ तक फ्रेन्च भाषा का सम्बन्ध है मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी सुन्दर पार्क की बढ़िया साफ़ सुथरी रौसों पर चक्कर लगा रहा हूँ। लेकिन जर्मन भाषा में ऐसा जान पड़ता है जैसे मनमाने तौर पर किसी जंगल में घूम रहा हूँ। साहित्यिक जर्मन भाषा का सम्पर्क जनता की बोलियों से बना रहने के कारण उसमें एक निरन्तर नवीन जीवन की धारा प्रवाहित होती रहती है। फ्रेन्च भाषा का नितनूतन सम्पर्क भूमि से नहीं रहा। अतः वह परिष्कृत अवश्य होगई है, पर साथ ही उसकी गतिशीलता भी नष्ट हो गई है। किन्तु जर्मन भाषा उसी अर्थ में आज भी प्रगतिशील बनी हुई है।"

हिन्दी को उसकी उर्वर प्रसव भूमि के साथ सम्बन्ध जोड़ना होगा, उसे कौरवी के पास जाना होगा, तभी उसकी कृत्रिमता सदा संस्कृत या अरबी, फारसी से ऋण लेने की प्रवृत्ति को हटाया जा सकता है, उसके निरुद्ध जीवटहीन प्रवाह को तीव्र और सजीव बनाया जा सकता है। आज हिन्दी को आमफहम (सहल) बनाने का नुस्खा हमारे नीम हकीम बतलाते हैं, उसमें उर्दू में प्रयुक्त होनेवाले कुछ अरबी-फारसी शब्दों ('आम' अरबी है और 'फहम' फारसी है) को जबर्दस्ती डाल लेना। हिन्दी को उर्दू की ओर घसीटकर या उर्दू को हिन्दी की ओर घसीट कर सरल नहीं बनाया जा सकता बल्कि दोनों को सरल बनाने का रास्ता एक ही है कौरवी बोली के नजदीक जाना। अखण्ड हिन्दी राज्यवादियों को भी मानना पड़ेगा कि आज हिन्दी उस जगह पहुँच गई जहाँ उसे अपने मूल स्रोत से सम्बद्ध किये बिना उसकी अधूरी वर्णन-शक्ति, अधूरे भाव प्रकाशन को दूर नहीं किया जा सकता। गाँव के मल्लाह, मोची, लुहार, कुम्हार के सैकड़ों हथियारों और क्रियाओं का वर्णन क्यों हमारे उपन्यास कहानी लेखक अपने ग्रन्थों में नहीं करते। मैं समझता हूँ हिन्दी के सम्बन्ध में सबसे जरूरी एक पंच वार्षिक योजना इस काम के लिये बनानी है कि कौरवी के अलिखित गीत, कविता, कहानी, कहावत, मुहावरों तथा शिल्प शब्दों का विस्तृत संग्रह किया जाये। हिन्दी के उपन्यास-कहानी लेखकों और सामाजिक जीवन के चित्र खींचनेवालों को कुरु जिलों के गाँवों में चन्द मासों का प्रवास अपनी शिक्षा का एक अंग बनाना चाहिये।

मातृभाषाओं को उनका हक देते ही हिन्दी उर्दू की समस्या हमारे यहाँ भी उसी तरह बेकार सी हो जायगी जिस तरह वह बंगाल में है।

बंबई]

जनपदों का संगठन

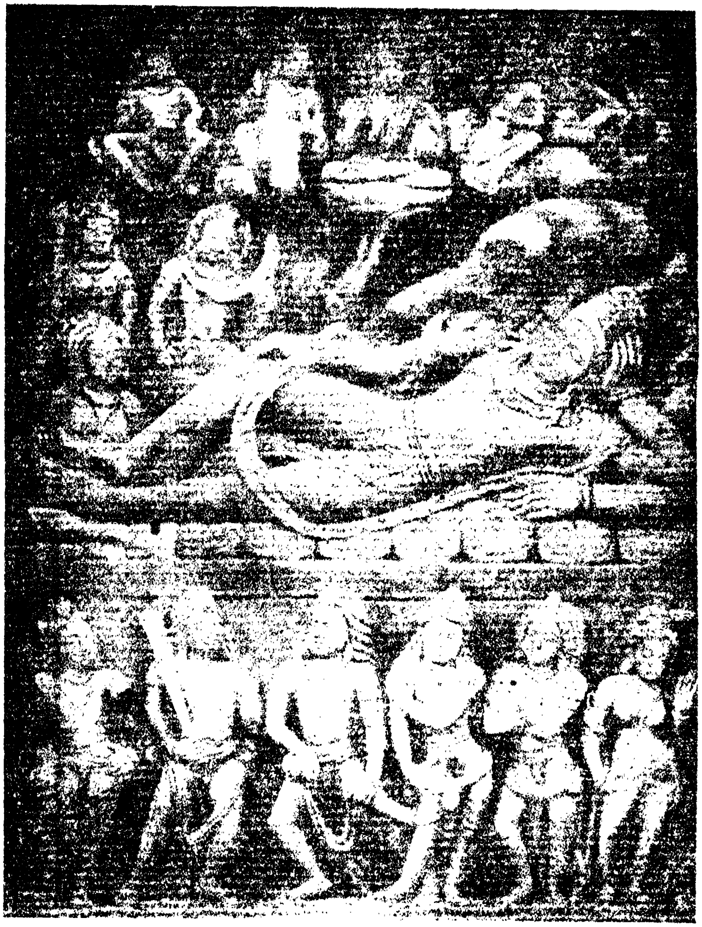
श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी के नाम लिखे गये 'मधुकर'—सम्पादक के पत्र को मैंने ध्यान-पूर्वक पढ़ा। मेरी सम्मति में जनपदी बोलियों का कार्य हिन्दी भाषा का ही कार्य है, वह व्यापक साहित्यिक अभ्युत्थान का एक अभिन्न अंग है। हिन्दी की पूर्ण अभिवृद्धि के लिए जनपदों की भाषाओं से प्रचुर सामग्री प्राप्त करने का कार्य साहित्य सेवा का एक आवश्यक अंग समझा जाना चाहिए। इसी भाव से कार्यकर्त्ता इस काम में लगें तो भाषा और राष्ट्र दोनों का हित हो सकता है। सेवा के कार्य से स्पर्धा या क्षति की त्रिकाल में भी सम्भावना नहीं है। अधिकार लिप्सा और स्वार्थ साधन की वृत्ति से पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न हुआ करता है। चाहे भी जितना पवित्र कार्य हो, जब मलिन वृत्तियाँ घर कर लेती हैं, कार्य भी दोषावह बन जाता है। यह तो व्यापक नियम का ही एक अंग है। कवि के शब्दों में—

'जड़ चेतन गुण दोष मय,
विश्व कीन्ह करतार।'

इस नियम का अपवाद साहित्य-सेवा भी नहीं है।

मुझे तो जनपदों की भाषाओं का कार्य एक-दम देवकार्य जैसा पवित्र और उच्चाशय में भरा हुआ प्रतीत होता है। यह उठते हुए राष्ट्र की आत्मा को पहचानने जैसा उदार कार्य है, क्योंकि इसके द्वारा हम कोटि-कोटि जनसमुदाय की मूल साहित्यिक प्रेरणाओं के साथ सान्निध्य प्राप्त करने चलते हैं। साहित्य का जो नगरों में पाला-पोसा गया रूप है, जिसे हम भगवान चरक की भाषा



अनन्तशायी नारायण : देवगढ़ की एक मूर्ति

में 'कुटी-प्रावेशिक' कह सकते हैं, उसके दायरे से बाहर निकलकर जनपदों की स्वच्छन्द वायु में पनपने वाले साहित्य के 'वातातपिक' स्वरूप की परख करने में हम जितने अग्रसर होंगे, उतने ही जनता और साहित्यकारों के तथा लोक जीवन और साहित्य के बीच पड़ी हुई गहरी खाई को पाट कर उस पर एक सर्वजन सुलभ सेतु बाँधने में हम सफल हो सकेंगे।

भारतीय जनता का अधिकाँश भाग देहातों में है। उसकी भावना की क्रीड़ास्थली ये देहात ही हैं। इन्हीं का साहित्यिक नाम जनपद है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि जनपदों की संस्कृति का अध्ययन हमारे राष्ट्र की मूल आध्यात्मिक परम्पराओं का अध्ययन है, जिनके द्वारा हमारे जीवन की गंगा का प्रवाह बाहरी कल्मषों से अपनी रक्षा करता हुआ आगे बढ़ता रहा है।

व्यास और वाल्मीकि, कालिदास और तुलसी, चरक और पाणिनि इन सबका अध्ययन जानपदी दृष्टिकोण से हमें फिर से प्रारम्भ कराना है। किसी समय इन महा साहित्यकारों की कृतियाँ जनपदों के जीवन में बद्धमूल थीं। जिस समय वेद व्यास ने द्रौपदी की छवि का वर्णन करते हुए तीन वर्ष की श्वेतरंग वाली गौ को (सर्व श्चेतेव महिषी बने जाता त्रिहायनी—विराट १७–११) उपमान रूप में कल्पित किया, जिस समय वाल्मीकि ने अराजक जनपद का गीत गाया, जिस समय कालिदास ने मक्खन लेकर उपस्थित हुए ग्रामवृद्धों से राजा का स्वागत कराया (हैयंगवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्) और जब पाणिनि ने अष्टाध्यायी में सैकड़ों छोटे-छोटे गाँवों और बस्तियों के नाम लिखे और उनके बहुमुखी व्यवहारों की चर्चा की उस समय हमारे देश में और जनपद-जीवन के बीच एक पारस्परिक सहानुभूति का समझौता था। दुर्भाग्य से रस प्रवाह के वे तन्तु टूट गये। हमारे साहित्य का क्षेत्र भी संकुचित हो गया और हम अपनी जनता के अधिकाँश भाग के सामने परदेशी की भाँति अजनबी बन बैठे। आज नव चेतना के फगुनहरे ने राष्ट्रीय कल्पवृक्ष को झकझोर कर पुराने विचार रूपी पत्तों को धराशायी कर दिया है। सर्वत्र नये विचार, नये मनोभाव और नई सहानुभूति के पल्लव फूट रहे हैं। गाँव और नगर दोनों एक ही साधारण जीवन की परिधि में एक दूसरे की ओर बढ़ रहे हैं। सहज तन्तुओं से एक दूसरे के साथ गुंथ कर फिर एक ज्ञान की भूमि से अपना पोषण प्राप्त करने के लिए। यही वर्तमान साहित्यिक प्रगति की सबसे अधिक स्पृहणीय विशेषता और आशा है। हम गाँवों के गीतों में काव्य सुधा का पान करने लगे हैं, जनपदों की बोलियाँ हमारे लिये वैज्ञानिक अध्ययन की सामग्री का उपहार लिए खड़ी हैं। कहीं लुधियानी के उच्चारणों का अध्ययन हो रहा है, कहीं हर मुकुट पर्वत पर बैठकर भाषा विज्ञान के वेत्ता सिन्धु नद की उपत्यका के एक छोटे गाँव की बोली का विवेचन कर रहे हैं, कहीं दरद देश की प्राचीन पिशाचवर्गीय भाषा की छान-बीन हो रही है, कहीं प्राचीन उपरिश्येन (हिन्दू कुश) पर्वत की तलहटी में बसने वाले छोटे-छोटे कबीलों की मुंजानी और इश्कामी बोलियों का व्याकरण बन रहा है। और यह सब कार्य कौन करा रहा है? वही राष्ट्रीय कल्पवृक्ष के रोम-रोम में नवीन चेतना की अनुभूति इस कार्य जाल की मूल प्रेरक शक्ति है। इस कार्य का अधिकाँश सूत्रपात और मार्गप्रदर्शन तो विदेशी विद्वानों के द्वारा हुआ है और हो रहा है। हम हिन्दी के अनुचर तो अभी बड़े सतर्क होकर फूंक-फूंक कर पैर रख रहे हैं।

प्रचण्ड शक्तिशालिनी हिन्दी भाषा की विभूति का विशाल मन्दिर जानपदी भाषाओं को उजाड़ कर नहीं बन सकता, वरन् इस पंचायती प्रासाद की दृढ़ जगती में सभी भाषाओं और बोलियों के सुगढ़ प्रस्तरों का स्वागत करना होगा। हम सोये पड़े थे मगर अध्यवसायी टर्नर महोदय नेपाली बोली का निरुक्त-कोष सम्पन्न कर चुके। हम अभी जँभाई लेकर आँखें मल रहे थे, उधर वे

ही मनीषी जागरूक बन कर हिन्दी भाषा का उसकी बोलियों के आधार से एक विराट निरुक्त-कोष रचने में अहर्निश दत्तचित्त हैं।

कार्य अनन्त है। हमारे कार्यकर्ता गिनती के हैं, उनके साधन भी परिमित हैं। वैज्ञानिक पद्धति से कार्य करने की कला भी हममें से बहुतों को सीखनी है। फिर पारस्परिक स्पर्धा का अवसर ही कहाँ रहता है? जानपदी बोलियों का कार्य हिन्दी का अपना ही कार्य है। उनके विकास और वृद्धि के मुहूर्त में हिन्दी के ऋत्विकों को स्वस्त्ययन मंत्रों का पाठ ही करना चाहिए। जो लोग जनपदों को अपना कार्यक्षेत्र बना रहे हैं वे भी हिन्दी के वैसे ही अनन्य भक्त हैं और हमारा विश्वास है कि उनका यह कार्य हिन्दी के विशाल कोष को और भी अधिक समृद्ध बनाने के लिए ही है। जनपदों के कार्यकर्ताओं के लिए कार्यक्रम की रूपरेखा अन्यत्र दी जा रही है। तदनुसार प्रत्येक क्षेत्र में कार्य-पद्धति का ढाँचा बनाया जाना चाहिए।

जनपदों की सूची मार्कण्डेय पुराण अध्याय ५६-५७ तथा महाभारत भीष्म-पर्व अध्याय ६ में दी हुई है। पर वह बहुत बृहत् है और उसमें चारों दिशाओं के छोटे-बड़े सभी जनपदों के नाम हैं, जिनमें कितने ही अप्रसिद्ध नाम अभी पहचाने नहीं जा सके हैं। मध्य देश के जनपदों में मुख्य नाम ये हैं—

(१) कुरु—गंगा जमुना के बीच का ऊपरी हिस्सा। पूर्व में गंगा पार उत्तरी पंचाल की पच्छिमी सीमा तक।

(२) पंचाल—उत्तर में कुरु, पच्छिम में शूरसेन, पूरब में कौशल, दक्षिण में यमुना चम्बल के संगम तक। गंगा के उत्तर में बरेली बदायूँ, शाहजहांपुर के जिले उत्तरी पंचाल और दक्षिण में प्रधानतः फर्रुखाबाद मैनपुरी के जिले। कानपुर तक का प्रदेश किसी समय इसी जनपद के अन्तर्गत था। पंचाल के ही अवांतर भाग 'कान्यकुब्जका उज्झिहानाः' (उझानी बदायूँ) भी कहे गये हैं।

(३) शूरसेन—चम्बल से लेकर मथुरा तक और उसके भी उत्तर लगभग ५० मील तक का प्रदेश। यह ब्रजमंडल भी कहा गया है।

(४) मत्स्य—राजधानी विराट नगर (जयपुर राज्य) शूरसेन के पश्चिम-दक्षिण में अलवर, जयपुर, भरतपुर का भूभाग।

(५) चेदि—चम्बल से चित्रकूट तक का प्रदेश। दक्षिण में मालवा पठार तक इसकी सीमा मानना चाहिए।

(६) अवन्ति—मालवा

(७) करूष—बघेलखण्ड

(८) मलजा—शाहाबाद का जिला जो सम्भवतः अपरकाशि भी कहा जाता था।

(९) कौशल—गोमती और राप्ती (इरावती) नदियों से परिवेष्ठित प्रदेश।

(१०) काशी—गंगा गोमती के बीच का प्रदेश।

(११) मगध—पटना गया के ज़िले।

(१२) मिथिला—गंगा के उत्तर मुजफ्फरपुर, दरभंगा भागलपुर के जिले।

इन बड़े भूखण्डों की सीमाओं का सविशेष अध्ययन होना चाहिए। ऐतिहासिक विकास में उनकी सीमायें घटती-बढ़ती रही होंगी। उनका कालक्रम से निरूपण किया जाने योग्य है। इनके छोटे अवान्तर विभाग भी कितने ही हो सकते हैं, जिनका निर्धारण स्थानीय भाषाओं और बोलियों के अध्ययन से किया जा सकता है। पर मुख्य विभाग ये ही रहे हैं जिनकी स्वतन्त्र सत्ता अब भी पहचानी जा सकती है।

भाषा और स्थानीय बोलियां

स्थानीय बोलियों और प्रान्तीय भाषा का प्रश्न कुछ साहित्यिकों की कृपा से इस समय विद्वानों के सम्मुख आ गया है और यह तीव्र मतभेद का कारण हो रहा है। प्रश्न महत्त्व का है और समाचार-पत्र के एक-दो लेखों से इसका निपटारा नहीं हो सकता। पर इसके मूलगत सिद्धान्त की ओर हम विचारशील सज्जनों का ध्यान दिलाना आवश्यक समझते हैं। भारत में ही क्या, संसार में कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ सर्वत्र समान रूप से एक ही भाषा बोली और लिखी जाती हो। इङ्गलैण्ड के ही भिन्न-भिन्न ज़िलों में (जिन्हें वहाँ 'कौण्टी' कहते हैं) अंग्रेजी शब्दों के भिन्न-भिन्न उच्चारण, केवल स्थानीय शब्द तथा वाक्य-रचना के भेद दृष्टिगोचर होते हैं। इङ्गलैण्ड के बाहर युनाइटेड किंगडम में ही अंग्रेजी के वेल्श, आयरिश, स्काटिश आदि अनेक भेद मिलते हैं और वे इतने अधिक हैं कि एक स्थान के साधारण अधिवासी के लिए अन्य स्थान के लोगों की बोली समझना अत्यन्त कठिन हो जाता है। लंदन की ही एक खास बोली है 'काकने', जिसको पढ़ कर भी समझना साधारण अंग्रेजी जानने वालों के लिए कठिन और कहीं-कहीं असम्भव हो जाता है।

अंग्रेजी के अन्य रूप संयुक्तराष्ट्र, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका आदि में पाये जाते हैं। पर इनके साहित्य भी अलग-अलग निर्माण हो रहे हैं। अतः इनकी गणना हम इस उदाहरण में नहीं करते। पर खास इङ्गलैण्ड और ब्रिटिश द्वीपपुंज में अंग्रेजी के स्थानीय भेदों के रहते हुए भी उनके साहित्य को स्वतन्त्र रूप से उत्तेजन देने का प्रश्न वहाँ कोई उपस्थित नहीं करता। यदि ऐसा किया जाय तो आज तक का अंग्रेजी का विशाल साहित्य लुप्तप्राय हो जायगा तथा भविष्य में उसकी गति रुद्ध हो जायगी। सच तो यह है, जैसा प्रारम्भ में कहा गया है, कि किसी देश में कोई एक भाषा अविकल रूप में सर्वत्र बोली नहीं जाती। अतः साहित्य की भाषा राजनीतिक, सामाजिक आदि कारणों से इन सबको अपनाती हुई एक स्वतन्त्र ही भाषा होती है जिसे सब स्थानों के लोग समझते हैं, अध्ययन करते हैं और उसी में साहित्य-निर्माण करते हैं। यही हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि के सम्बन्ध में हो रहा है और होना चाहिये। हम जानते हैं कि कलकत्ते की ओर के बंगाली भी उत्तर-बंग और पूर्वबंग की स्थानीय भाषाएँ बिना अध्ययन और परिश्रम के समझ भी नहीं सकते, बोलना तो दूर की बात है। मराठी के भी ऐसे अनेक उपभेद हैं, जिन्हें साधारण मराठी जानने वाला सहज समझ नहीं सकता। इन स्थानीय बोलियों में अनेक साहित्यिक रत्न भी पाये जाते हैं तथा भाषाशास्त्र और समाजशास्त्र की दृष्टि से भी इनका महत्त्व बहुत अधिक होता है। पर केवल इन्हीं कारणों से कोई इनमें नया साहित्य निर्माण करने अथवा इन्हें स्थानीय पठन-पाठन का स्थान देने की चेष्टा नहीं करता।

हिन्दी में भी अनेक उपभेद हैं। अवधी, बुन्देलखण्डी, व्रज, राजस्थानी आदि बड़े-बड़े भेद हैं और साधारण भेद तो जिले-जिले में पाये जाते हैं। इन भेदों पर ज़ोर देकर कुछ सज्जन, जिनमें कुछ का स्थान हिन्दी में बहुत ऊँचा है और जिन्हें हम आदर की दृष्टि से देखते हैं, स्थानीय भेद-विशेष को स्वतंत्र साहित्य का स्थान देने का यत्न कर रहे हैं, यह यह दुःख की बात है। हम यह नहीं कहते कि इन भेदों का अध्ययन होना ही न चाहिये। हम यह भी नहीं कहते कि इनमें प्राप्य अमूल्य साहित्य का संग्रह भी न होना चाहिये। हमारा कहना केवल इतना ही है कि इनको बालकों के पाठ्य-पुस्तकों में स्थान न देना चाहिये। जो भाषा-शास्त्र और समाज-शास्त्र का अध्ययन करना चाहें उनके लिए इनका संग्रह होना चाहिए—अवश्य होना चाहिए। पर स्थान-स्थान पर स्थानीय बोलियों को पाठ्यपुस्तकों में

स्थान देने से हिन्दी-साहित्य का विशेष रूप से अनिष्ट होगा और इसकी पूर्ति स्थानीय साहित्य कभी न कर सकेंगे। शब्दों के विकासेतिहास और स्थानीय प्रयोगों से कभी-कभी सामाजिक व्यवहार पर भी ऐसा प्रकाश पड़ता है कि देख-कर विद्वान् दंग हो जाते हैं। यह विषय अत्यन्त मनोरंजक है, पर इसके विवेचन का यह स्थान नहीं है। इससे हम इतना ही कहना चाहते हैं कि स्थानीय बोलियों और उप-भाषाओं का अध्ययन अवश्य होना चाहिये, पर इन्हें पाठ-शालाओं और माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान न मिलना चाहिये। भाषा-शास्त्र और समाजशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिए ही इनका संग्रह भी होना चाहिये तथा पठन-पाठन भी।

['दैनिक संसार' का अग्रलेख

जनपदों की बोलियाँ

पं० मदनलाल चतुर्वेदी

[लेखक—महोदय बुन्देलखण्डी भाषा और संस्कृति का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि इस प्रान्त की भाषा ब्रज-भाषा है और यहां की संस्कृति ब्रज की संस्कृति है। किन्तु पाठक देखेंगे कि प्रस्तुत लेख में जनपदों की बोलियों को शिक्षा का माध्यम बनाने की बात का समर्थन करते हुए उन्हें परोक्ष रूप से स्वीकार करना पड़ा है कि बुन्देलखण्ड और ब्रज की भिन्न-भिन्न बोलियां हैं। —सम्पादक]

विरोधियों की युक्तियाँ

काशी के 'संसार' ने गत २० जून के अंक में "भाषा और स्थानीय बोलियाँ" शीर्षक अग्रलेख में स्थानीय बोलियों के पुरातन साहित्य-संग्रह का तो समर्थन किया है, पर नव-साहित्य-सृष्टि को दुःख का विषय बताया और कहा है कि,—स्थान-स्थान पर स्थानीय बोलियों को पाठ्य-पुस्तकों में स्थान देने से हिन्दी साहित्य का विशेष रूप से अनिष्ट होगा। स्थानीय बोलियों और उप-भाषाओं का अध्ययन अवश्य होना चाहिए, पर इन्हें पाठशालाओं और माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान न मिलना चाहिये।" जनपदों की भाषाओं में शिक्षा दान कराने और स्थानीय बोलियों में साहित्य निर्माणार्थ आन्दोलनोत्थापनकर्त्ताओं की क्या युक्तियाँ हैं तथा उनका उद्देश्य क्या है, यह हमें नहीं ज्ञात, क्योंकि अभी तक स्पष्ट रूप से किसी ने इस पर प्रकाश नहीं डाला। परन्तु हम यह समझते हैं कि स्थानीय बोलियों में पाठ्य-ग्रन्थ बनवा कर शिक्षा देने से बालकों की ज्ञानवृद्धि शीघ्र होगी, क्योंकि छात्र मातृ-बोली या ग्राम-भाषा या जनपद-भाषा को शीघ्र समझ जाते हैं। उसमें वे विचार व्यक्त भी कर सकते हैं। छत्तीसगढ़, बुन्देलखण्ड, ब्रज, अवध, मिथिला और भोजपुर आदि में जो बोलियाँ बोली जाती हैं, उन्हीं में छात्रों की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाये तो छात्रों को यह प्रतिभासित न हो कि हम खड़ी बोली जैसी एक अन्य भाषा में शिक्षा पा रहे हैं और जिसमें विचार व्यक्त करना बालकों के लिए कठिन काम है। मिडिल श्रेणी से खड़ी बोली में शिक्षा दी जाय तो छात्र भाषा-भेद समझने योग्य हो सकते हैं। उपभाषाओं में साहित्य-निर्माण से साहित्य-सेवियों की संख्या-वृद्धि होगी और स्वाभाविक भाषा में साहित्य-निर्माण होने लगेगा। अभी तो खड़ी बोली हिन्दी प्रान्तों में सभी ग्रामों के लिए एक विदेशी भाषा के रूप में है। घरों में वह कदाचित् ही कहीं बोली जाती हो। जहाँ बोली जाती है, वहाँ विकृत रूप में।

हिन्दी-हित-साधन

जनपदों की बोलियों को प्रोत्साहन देने से जनपद-प्रेम-भावना की अभिवृद्धि होगी, जनपद-साहित्य-गौरव अनुभव होगा और इससे हिन्दी हिन्दुस्तानी या उर्दू का प्रश्न मिट सकता है। जनपदों की भाषा में जनपदों के शब्द अधिक होंगे और उन्हें हिन्दू तथा मुसलमान सभी समझते हैं। खड़ी बोली हिन्दी भाषा-भाषियों में से एक-दो जिलों को छोड़कर अन्य जिलों के वासियों की मातृभाषा नहीं है। इसके प्रचार के कारण जन-पदों की बोलियों का ह्रास हो रहा है और उनमें संकरता विकार की भी सृष्टि होती जाती है। जनपदों की भाषा के प्रचार से उर्दू कुछ जिलों की एक जनपद-भाषा मात्र रह जायेगी और उस पर हिन्दी की विजय हो जायगी। क्या हिन्दी का इससे कुछ उपकार न होगा? आशा है कि 'दैनिक संसार' के विद्वान संपादक श्री पराड़करजी भी इस पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करेंगे और जनपद-भाषाओं का उत्थान करने का आन्दोलन उठाने वाले भी अपनी युक्तियाँ सामने रखेंगे।

['लोकमत' से

बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण का महत्त्व

श्री कैलाशनाथ 'प्रियदर्शी' एम० ए०

राजनैतिक चालों ने भारत की सीमा में परिवर्तन करने के साथ-साथ उसके भीतर भी अनेक रूपान्तर करने की आवश्यकता समझी और उसी के परिणामस्वरूप आज हम भारत को बाहर और भीतर दोनों ओर से प्राचीन भारत से भिन्न पाते हैं। दूसरे देश को अपने अधीन बनाये रखने के लिये उस देश की संस्कृति, उसकी सभ्यता और उसका इतिहास बदल देने की आवश्यकता की पूर्ति के हेतु उस देश का रूप विकृत कर देना आवश्यक हो जाता है। आज हम अपने देश को पहचान भी नहीं पाते और जो विकृत रूप, विकृत संस्कृति, विकृत इतिहास हमारे सामने उपस्थित किया गया है, उसी को हम सत्य मान रहे हैं। किन्तु प्रत्येक देश के इतिहास में एक ऐसा समय आता है, जब वहाँ जागृति फैलती है, वहाँ के निवासी सोते-सोते एक साथ जग कर देखते हैं कि उनका नन्दन वन कैसा उजाड़ दिया गया है और तब वे सचेत होने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन उस समय पारस्परिक संघर्ष का उन्हें सामना करना पड़ता है। उनके भाई ही उन्हें नहीं उठने देते और अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिये उन्हें बड़े परिश्रम की आवश्यकता पड़ जाती है।

हमारा प्राचीन बुन्देलखण्ड विद्या का, कला का, वीरता का और संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र था। यहाँ से समय-समय पर देश को अनेक विचारक, अनेक कवि, अनेक वीर, अनेक धर्म-संस्थापक तथा अनेक समाज-सुधारक प्राप्त होते रहे। जब-जब देश को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता हुई, उसकी पूर्ति इस भूभाग ने की। इस प्रकार से भारतवर्ष की जीवन-जागृति का आधार यही पुण्यस्थली रही। यही भूभाग इस देश की कमर थी, जिसे तोड़ने का प्रयत्न करके भारत को अशक्त बनाया गया।

हम भूल गये कि बुन्देलखण्ड भी कभी संगठित था। जिसकी अनेक सर्वतोमुखी विशेषताओं ने उसे इतिहास में एक विशेष स्थान प्राप्त करा दिया था। हम उसकी सीमा भी भूल गये, किन्तु न जाने किस सौभाग्य के कारण उसका नाम 'बुन्देलखण्ड' अब भी इतिहास के पृष्ठों में और मनुष्य के हृदयों में अंकित रह गया।

हमें आज इस इतिहास-प्रसिद्ध भूभाग का पुनर्सङ्गठन करना है। किस लिये? जिससे हम अपने समूचे देश की कमर सीधी कर सकें, जिससे हम उसे फिर से संसार का एक शक्तिशाली देश बना सकें और सभ्यता की दौड़ में संसार की बराबरी ही नहीं, अपितु उससे आगे बढ़ कर उसके नेता बन सकें। अपने देश को गिराने वाली भूल का सुधार करने के लिये हमें इस भूभाग के बच्चे-बच्चे में यह भावना भर देनी है कि आपके प्रान्त का अस्तित्व देश के उत्थान के लिये आवश्यक है।

इस भूभाग में भारत देश के कौन-कौन से जिले सम्मिलित थे, इसका निर्णय विद्वान् विचारक कर रहे हैं। इसके प्रमाण भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो चुके हैं और उसका सजीव चित्र उपस्थित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया जा रहा है, यह बड़े ही सौभाग्य की बात है।

हमारे कुछ देशवासी विचारक बुन्देलखण्ड के प्रान्त-निर्माण की योजना में दूरदर्शिता नहीं देखते। उनकी दृष्टि में यह कार्य निरर्थक तथा निष्प्रयोजन-सा जान पड़ता है। किन्तु यह तो केवल उनका भ्रम ही है, जिसकी उत्पत्ति का कारण राजनैतिक दावपेंच की सफलता है और जिसकी रक्षा निष्क्रियता द्वारा हो रही है। जो कार्य देश के लिये आवश्यक है, वह चाहे जितना कठिन हो, चाहे जितना असम्भव दिखलाई पड़ता हो, हमें उसे करना है और उसके लिये जिस परिश्रम की, जिस तपस्या को, जिस बलिदान की आवश्यकता होगी, उससे हम पीछे नहीं हटेंगे।

प्राचीन बुन्देलखण्ड ने भारत की संस्कृति और सभ्यता में कितना योग दिया था, इसके पर्याप्त प्रमाण अब भी उपलब्ध हैं, किन्तु वर्तमान छिन्न-भिन्न बुन्देलखण्ड ने देश और जाति के प्रति अपने कर्तव्य का भी पालन नहीं किया, अगुआ बनाना तो बहुत दूर की बात है।

आज हमें इस निष्क्रियता का कारण समूल नष्ट करना है और यह हमारा अपने भारत देश के रूप-सुधार का पहला कदम होगा। हमें बुन्देलखण्ड के प्रान्त-निर्माण से श्रीगणेश करके भारत के प्राचीन स्वरूप को निर्मित करने के महा यज्ञ को पूर्ण करना है। इसके लिये इस भूभाग के प्राचीन निवासियों का जितना उत्तरदायित्व है, उतना ही उन व्यक्तियों का भी है जो देश के किसी अन्य भूभाग से आकर यहाँ बस गये हैं। उन्हें चाहिए कि अनुभव करें कि यहाँ के भूभाग के अन्न और जल ने उनको कितना ऋणी बना रक्खा है और इस ऋण को चुकाने के लिये वे प्रान्त-निर्माण की योजना में सक्रिय सहयोग दें।

यहाँ हम यह भी बता देना बहुत आवश्यक समझते है कि बुन्देलखण्ड का पुनःप्रान्त-निर्माण करना भारत देश को खंड-खंड करना नहीं है, बल्कि उसे शक्ति-सम्पन्न बनाने के लिये उसके एक अंग को ही संगठित करना है। इस प्रान्त-निर्माण की योजना से पाकिस्तान जैसी दूषित योजना को कदापि प्रोत्साहन नहीं मिल सकता। पाकिस्तान की योजना भारत को छिन्न-भिन्न करने की योजना है। और उसके अन्दर वही भावना छिपी है, जो भारत के वर्तमान प्रान्त-विभाजन में दिखाई पड़ती है। दोनों योजनाओं में महान् अन्तर है। एक देश को शक्ति-सम्पन्न करने के लिये है और दूसरी देश को अशक्त बनाकर, पारस्परिक कलह को बढ़ा कर, सर्वदा के लिये अशान्ति को जन्म देने के लिये।

उरई]

बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण-आन्दोलन

श्री रामचरणलाल हयारण 'मित्र'

बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण की आवश्यकता अनेक दृष्टियों से प्रतीत होती है। यद्यपि कुछ लोगों का कहना है कि इसकी रूपरेखा राजनैतिक आन्दोलन की-सी है, तथापि मेरी दृष्टि में यह एक धार्मिक आन्दोलन है। यहाँ के वन-उपवन, पर्वत-मालाएँ, सरिताएँ, यहाँ के निवासियों को जीवन प्रदान करते हैं। अतः उनकी रक्षा के हेतु आन्दोलन करना यहाँ के निवासियों का कर्तव्य ही नहीं, धर्म भी है। आज हम देखते हैं कि यहाँ के वनों का पशु-पक्षियों और खनिज पदार्थों का विशालकाय दुर्गस्थानों का, कला-कौशल का दिन प्रति-दिन ह्रास होता जा रहा है। परिणाम यह है कि बुन्देलखण्ड का जन, धन, बल क्षीण होता जा रहा है। दुख के साथ कहना पड़ता है कि जो प्रान्त भारतवर्ष के कला-कौशलों में एक अत्यन्त ही उच्च स्थान रखता था, आज वही कला-विहीन हो अपना अस्थि-पंजर लिये दूसरों का मुँह ताकता है। आज भी हम अपने वयोवृद्धों से चंदेरी की पाग, श्रीनगर की मूर्तियाँ, झाँसी के कालीन, कालपी का कागज, रानीपुर का लुंगा, मड़ावरे की बर्तनों की ढलाई की प्रशंसा सुनते हैं, लेकिन इनमें से आज कौन-सा धन्धा जीवित है? यहाँ के निवासी भलीभाँति जानते हैं कि इस प्रान्त में हीरा, काँच सीसा, लोहा, सोडा आदि की खानें हैं, लेकिन उनका उपयोग हम करते हैं? इसका मुख्य कारण यही है कि हमारा प्रान्त असंगठित है। इसकी जिम्मेदारी यहाँ के कार्यकर्ताओं, लेखकों कवियों तथा धनपतियों एवं राजा महाराजाओं पर है। उन्होंने इस पुण्य-भूमि की अबतक पर्याप्त रूप में अवहेलना की है। यहाँ के निवासी कई वर्ष से देख रहे हैं कि वर्षा के बाद ही यहाँ की नदियों में जल पहले की अपेक्षा अब कम रहता है और बहुत-सी तो सूख जाती हैं। इसकी वजह यहाँ के कलाहीन धनलोलुप जमींदार या दूसरे शब्दों में वृक्षों के जमराज हैं, जो हरे-भरे वन-वृक्षों को कटवाकर उन्हें सिर्फ जलाने वाली लकड़ी समझ कर बाहर भेज देते हैं और इस हरित, फलित प्रान्त के भूभाग को रेगिस्तान बना देना चाहते हैं। यदि जंगलों का विनाश इसी तत्परता के साथ होता रहा तो वह दिन दूर नहीं है जब यह प्रान्त ही नहीं, सारा देश दूसरा सहारा बन जायगा।

बुन्देलखण्ड में छोटी-बड़ी सैकड़ों सरिताएँ कलकल निनाद करती हैं। किन्तु उनमें से किसी का भी इतिहास नहीं लिखा गया। यहाँ के वनों में अनेकों प्रकार की जड़ी-बूटियाँ हैं, लेकिन उनके गुण-दोषों का अध्ययन किसी ने भी नहीं किया। यहाँ के जंगलों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पशुपक्षी पाये जाते हैं। उनकी रक्षा करना तो दूर, उलटे शिकारियों द्वारा उन्हें नष्ट कर दिया जाता है।

हरदुआगंज-कान्फ्रेंस में पं० कृष्णकान्तजी मालवीय ने कहा था कि बुन्देलखण्ड में कवि इसलिये अधिक होते हैं कि वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य अद्वितीय है। कैसी विलक्षण बात है कि बाहर के लोग तो हमारी चीजों की प्रशंसा करें, लेकिन हम स्वयं अपने नेत्रों से उन्हें देख ही न पावें अथवा अपनी आँखों के सामने उन्हें नष्ट हो जाने दें!

यहाँ के प्रत्येक निवासी का कर्तव्य है कि अपने प्रान्त के उद्योगधन्धों, कला-कौशल आदि की रक्षा करें और जो नष्ट हो गये हैं, उन्हें पुनर्जीवन प्रदान करें। यह तभी संभव होगा जब कि प्रान्त संगठित हो। प्रान्त-निर्माण-आन्दोलन संगठन की दृष्टि से ही किया जा रहा है। इसके पुनीत कार्य में तन-मन-धन से सहयोग देना बुन्देलखण्डवासियों का धर्म है।

झाँसी]

बुन्देलखण्डी अहमहमिका

पं० मदनलाल चतुर्वेदी

पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी और बुन्देलखण्ड के कुछ अन्य लेखक तथा सार्वजनिक कार्यकर्त्ता इस आशय का आन्दोलन अग्रसर कर रहे हैं कि मध्यप्रान्त और युक्तप्रान्त से तथाकथित बुन्देलखण्डी जिले निकाल कर, क्योंकि वहाँ तथोक्त बुन्देलखण्डी भाषा बोली जाती है, पृथक् बुन्देलखण्ड प्रान्त बनाया जाये। भाषा और संस्कृति के आधार पर बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण की माँग का विरोध भी अधिक हो रहा है, क्योंकि बुन्देलखण्ड की संस्कृति भी युक्तप्रान्त, बिहार या हिन्दुस्तानी सी० पी० से भिन्न नहीं है। यदि यह आन्दोलन किया जाता कि मराठी सी० पी० और हिन्दुस्तानी सी० पी० पृथक्-पृथक् प्रान्त रहें तो एक बात थी। परन्तु बुन्देलखण्ड का प्रान्त की माँग, और सो भी भाषा तथा संस्कृति के आधार पर!! अत्यन्त अदूरदर्शितापूर्ण है। यह भावुक और विकृत मस्तिष्क युवकों की कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

बोलियाँ और प्रान्त

हिन्दुस्तानी सी० पी० में तथोक्त बुन्देलखंडी भाषा-भाषी जिले सम्मिलित हैं, जहाँ की भाषा बुन्देलखण्डी से कुछ ही भिन्न है। महाकोशल में राजनीतिक दृष्टि से और भी कई प्राचीन राष्ट्र सम्मिलित हैं। सभी पृथक्-पृथक् प्रान्त-निर्माण की माँग कर सकते है। महाकोशल वाले कह सकते हैं कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड महाकोशल में मिला दिया जाय, और नाम भी महाकोशल ही रहे। मध्य-भारत के देशी राज्य कह सकते हैं कि बुन्देलखण्ड के जिले बुन्देलखण्ड के विभिन्न देशी राज्यों को दे दिये जायँ। व्रजखण्ड वाले कह सकते हैं कि दिल्ली से लेकर जहाँ तक व्रजभाषा का प्रभाव है वहाँ तक "व्रजावर्त" प्रान्त बना दिया जाय, क्योंकि व्रजभाषा समस्त बुन्देलखण्ड में तो बोली ही जाती है। जहाँ तक बुन्देलखण्ड के लोग बुन्देली बोली का प्रभाव समझते हैं, वहाँ तक व्रजभाषा का प्रभाव सिद्ध होता है। परन्तु पृथक् प्रान्त-निर्माण की बातें कहाँ तक मान्य होनी चाहियें, यह विचार करने का विषय है। उपभाषाओं और उप-बोलियों के आधार पर कहाँ तक और कितने प्रान्त बनाये जा सकते हैं, यह भी विचारने की बात है, क्योंकि बोलियों में अत्यल्प अन्तर है।

विलक्षण व्यापार

पृथक् प्रान्तीयता के प्रसंग में बंगालियों और बुन्देलों की मनोवृत्ति में हमने विपरीत बातें पायीं। बंगाली तो जिन स्थानों में बंगभाषा का रंचमात्र भी आभास पाते हैं, उन स्थानों को बंगीय समझ कर उनसे मिलना चाहते हैं। बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन हो ही चुका है। बिहार के सिंहभूम तथा आसाम के कई जिलों को वे इसी हेतु चाहते हैं कि वहाँ की बोली में बंगलापन है। पर बुन्देलखण्ड वाले व्रजभाषा बोलते हुए भी व्रज के जिलों से सम्बन्ध-विच्छेद कर पृथक् प्रान्तीयता का विकास करना चाहते हैं! यह अद्भुत व्यापार है। युक्तप्रान्त से पृथक् होने का अर्थ क्या है? बुन्देलखण्डियों के ऐसे क्या राजनीतिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक स्वार्थ हैं, जिनका हनन सी० पी० और युक्तप्रान्तों में मिले रहने से हो रहा है, यह समझ में नहीं आता। बुन्देलखण्डी भाषा की उन्नति तो बिना पृथक् प्रान्त बनाये भी हो सकती है। जनपद-मंडल बना कर और प्रारम्भिक शिक्षा व्यवस्था जनपदों की भाषा में करके बोलियों की उन्नति की जा सकती है। रूस में भी यही हो रहा है। प्रोफेसर अमरनाथ झा, श्री राहुल सांकृत्यायन और पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी जनपदों की भाषाओं में साहित्य उत्पादन का समर्थन करते हैं, इसका कोई विरोध नहीं कर सकता। परन्तु यदि प्रो० झा मिथिला प्रान्त पृथक् बनाने की माँग करें

तथा पं० बनारसीदासजी बुन्देल और ब्रज प्रान्तों को पृथक् प्रान्त बनवाने की माँग करें तो यह बात बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगी। हिन्दी के महाकवि बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त और उनके भाई कविवर बाबू सियारामशरणजी गुप्त पृथक् बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण के विरोधी हैं और वे बुद्धिमानी की बातें कह रहे हैं। आशा है कि अन्य बुन्देलखंडी भाई भी बुद्धि से काम लेंगे और "अहमेव खण्ड बुन्देलः" की अहमहमिका त्याग करेंगे और इस प्रकार वे उपहास के पात्र होने से अपने को बचायेंगे।

['लोकमत' से

हमारा प्रान्त

श्री बालाप्रसाद वर्मा

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि भारत में वर्तमान प्रान्तों का निर्माण राष्ट्रीय आधार पर नहीं है और न ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक और भाषा सम्बन्धी सिद्धान्त पर। शासन की दृष्टि से भी यह निर्माण उचित नहीं। प्रान्तों के निर्माण का तो किस्सा यह है कि ज्यों-ज्यों अंग्रेजी राज्य बढ़ता गया नये जीते हुए ज़िले और राज्य उसमें शामिल होते गये और बिना किसी आधार के प्रान्त बना दिये गये। कुछ लोगों का ख्याल है कि प्रान्त बड़े होने चाहिएँ और कुछ का ख्याल है कि छोटे होने चाहिए। पर प्रान्त बड़े हों या छोटे किसी विशेष सिद्धान्त पर तो बनाये जाने चाहिएँ। ये सिद्धान्त क्या हों, अथवा यों कहिए कि प्रान्त-निर्माण की कसौटी क्या हो, यह प्रश्न विचारणीय है। इसमें शक नहीं कि ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा आर्थिक सिद्धान्तों के साथ-साथ उन प्रान्तों के निवासियों की भाषा और उनकी इच्छा का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। इन सब सिद्धान्तों में सर्वोपरि बात होनी चाहिए वहाँ के निवासियों की इच्छा। जब कि यह बात बलपूर्वक कही जाती है कि प्रत्येक जाति और देश को अपनी इच्छानुसार शासन-पद्धति बनाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए तो फिर किसी विशेष स्थान के निवासी यदि अपना अलग प्रान्त बनाना चाहते हैं तो उन्हें अपनी इच्छा पूर्ण करने में क्यों बाधा पहुँचाई जाय? यह सिद्धान्त तो अन्य सिद्धान्तों से अधिक प्रबल समझा जाना चाहिए। यहाँ तक कि ऐतिहासिक, या भौगोलिक कसौटी पर भी यदि किसी प्रान्त का निर्माण उचित प्रतीत न होता तो भी वहाँ के निवासियों को उनकी इच्छानुसार अपना अलग-अलग प्रान्त बना कर अपनी आर्थिक, व्यावसायिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा आध्यात्मिक उन्नति करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। तात्पर्य यह कि किसी प्रान्त के निर्माण करने के लिए निम्न लिखित सिद्धान्तों की कसौटी काम में लाई जानी चाहिए :—

१—ऐतिहासिक,

२—भौगोलिक,

३—भाषा सम्बन्धी,

४—निवासियों की इच्छा,

५—शासन संबंधी सुविधा जिसमें साम्पत्तिक तथा आर्थिक दृष्टि पर भी ध्यान रखना चाहिए।

अब हमको इन पांचों सिद्धान्तों की दृष्टि से देखना चाहिए कि बुन्देलखण्ड एक अलग प्रान्त बन सकता है या नहीं?

(१) ऐतिहासिक—इतिहास जानने वालों से यह बात छिपी नहीं है कि पौराणिक ग्रन्थों में बुन्देलखण्ड के नगरों का वर्णन आता है। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी चित्रकूट में रहे थे और उनका समकालीन बाणासुर बानपुर में राज्य करता था। कृष्ण के समकालीन राजा शिशुपाल चेदि (आधुनिक चंदेरी) के राजा थे और उस समय यह चेदि देश कहलाता था। शिशुपाल

के वंशज कालान्तर में चेदि और कलचुरी कहलाए। इन्हीं के वंशज चंदेल राजा हुए। चंदेल वंश में जयशक्ति बड़ा प्रतापी राजा हुआ। अतः कुछ काल तक इस समस्त प्रदेश का नाम 'जैजाकभुक्ति' रहा। फिर संवत् १३०४ के बाद यह देश बुन्देलों के हाथ में आ गया तभी से इसे बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारते हैं।

(२) भौगोलिक—बुन्देलखण्ड की प्राचीन सीमाएँ इत जमुना उत नर्मदा, इत चंबल उत टौंस मानी जाती हैं। उत्तर में जमुना, दक्षिण में नर्मदा, पूर्व में टौंस (तमसा) और पश्चिम में चम्बल। अतः वह प्रदेश जो इन चारों नदियों के बीच बीच में आया है, बुन्देलखण्ड माना जाता है। उसमें झाँसी, जालौन, बाँदा और हमीरपुर संयुक्त प्रान्त के ज़िले, सागर, दमोह और जबलपुर प्रान्त के कुछ अंश, मिर्ज़ापुर और इलाहाबाद प्रान्तों के कुछ भाग, ओरछा, दतिया, पन्ना, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, छतरपुर, समथर, बावनी, कदौरा, सरीला, दुरवई, बिजना, टोड़ी फतेहपुर, बंका-पहाड़ी, जिगनी, लुगासी, बीहट, बेरी, बिलहठी, नैगँवा आदि देशी राज्य व जागीरें तथा कुछ ग्वालियर और भोपाल राज्य के हिस्से सम्मिलित हैं।

(३) भाषा—भाषा या बोली के आधार पर प्रान्त निर्माण की योजना पुरानी है। इसी आधार पर उड़ीसा बिहार से और सिन्ध बम्बई प्रान्त से अलग किये गये। सन् १६२८ में जो भारत के समस्त राजनैतिक और साम्प्रदायिक दलों की कान्फ्रेंस हुई थी, जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय पं० मोतीलाल जी नेहरू थे, उसमें भाषा के आधार पर प्रान्त निर्माण की बात सब नेताओं ने स्वीकार की थी। इस सम्मेलन में कांग्रेस उदार दल, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, केन्द्रीय सिक्ख लीग, पारसी ऐसोशिएसन इत्यादि शामिल थे और यह सिद्धान्त सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया था। अब रही यह बात कि प्रान्त का निर्माण जिस बुन्देलखण्डी के आधार पर किया जाना है वह बोली है या भाषा, इसका निर्णय तो आल्हा जैसे वीर रस के महाकाव्य के पढ़ने से ही हो जायगा। जिन सज्जनों ने बुन्देलखण्ड में भ्रमण किया है और जिन्होंने यहाँ की संस्कृति, यहाँ की कहावतें, यहाँ के गीत और कविता पढ़ी हैं, वे इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली भाषा है या बोली। बुन्देलखण्डी बोली नहीं भाषा है। कुछ विद्वानों का मत है और दावा भी है कि बुन्देलखण्डी सीधी प्राकृत से रूपान्तरित हुई है। जब तक बालक तुतला कर बोलता है वह बोली कहलाती है, किन्तु, ज्यों-ज्यों बच्चे में विवेक आता जाता है वह भाषा का रूप धारण कर लेती है।

(४) प्रान्त के निवासियों की इच्छा—जब कि संसार में आत्म निर्णय (Self-determination) पर इतना बल दिया जा रहा है, तब उसी सिद्धान्त को लेते हुए, यदि किसी प्रदेश की जनता अपना अलग प्रान्त बना कर अपनी आर्थिक तथा शिक्षा सम्बन्धी उन्नति करना चाहती है तो इसमें अन्य प्रान्तों के निवासियों को क्या आपत्ति हो सकती है? यह तो बड़ा प्रबल सिद्धान्त है कि जनता की इच्छा के अनुसार प्रान्त-निर्माण होना चाहिए। वहाँ के निवासियों की एक स्वर में उठी हुई आवाज़ को कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती, और न दबा ही सकती है। बुन्देलखण्ड के निवासियों के हृदयों में यह इच्छा दिन पर दिन प्रबल होती जा रही है। वह यहाँ की जनता की आवाज़ है। नदियाँ, नाले, सरोवर, जलाशय, पहाड़, पहाड़ियाँ, वन उपवन, चिड़ियाँ, जंगली पशु, भूमि और खानें मानों चिल्ला-चिल्ला कर कह रही है कि हम किसी प्रान्त वालों से कम नहीं हैं। सहस्रों मील भूमि इस प्रान्त में बेकार पड़ी है। नदियों का जल नहरें न निकाले जाने से दूसरे प्रान्त में चला जाता है और यहाँ की भूमि को पानी नहीं मिल पाता। यहाँ की खानों की कोई उन्नति नहीं हो सकती। न सड़कें बनाई गई है और

न नहरें और न रेल की पटरियाँ। बरुआसागर, मदनपुर, देवगढ़, जतारा, तथा बेतवा और धसान के किनारे के अनेक गाँव सोलन, भुवाली, मसूरी, महाबलेश्वर और आबू से कुछ कम महत्व नहीं रखते। वे अच्छे स्वास्थ्यग्रह बन सकते हैं। जितना रुपया मसूरी, सोलन, तथा अन्य वर्तमान स्वास्थ्यागारों पर व्यय किया गया है, यदि उसका सौवाँ हिस्सा भी बरुआसागर, मदनपुर, देवगढ़, और जतारा पर खर्च किया गया होता तो इनकी गणना अच्छे स्वास्थ्यागारों में की जाती।

यहाँ की प्राकृतिक सम्पदा ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि इस भूमि ने आल्हा ऊदल, परिमाल, और छत्रशाल जैसे वीर पुरुष पैदा किये हैं। तुलसी, केशव, ईश्वरी, मैथिलीशरण गुप्त और मुंशी अजमेरी जी जैसे कवियों को भी इसी भूमि ने जन्म दिया है। 'विराटा की पद्मिनी' और 'गढ़कुंडार' के लेखक भी इसी भूमि ने पैदा किये हैं और इसीलिए आज हम गौरव के साथ यह आवाज़ उठाते हैं कि बुन्देलखण्ड को एक अलग प्रान्त बना दिया जाय।

(५) शासन की दृष्टि से—शासन की दृष्टि से बुन्देलखण्ड प्रथक् प्रान्त बन सकता है। यदि बुन्देलखण्ड के देशी राज्य और ऊपर लिखे हुए अंग्रेज़ी राज्य के ज़िले इसमें शामिल कर दिये जायँ। यदि यहाँ की भूमि, खानें और जंगलों का उचित उपयोग हो तो वहाँ के निवासियों की और इस प्रान्त की इतनी आय बढ़ सकती है कि प्रान्त का शासन चलाने के लिए भारत सरकार का मुँह न ताकना पड़े, बल्कि एक अच्छी रकम केन्द्रीय सरकार को दी जा सकेगी।

ऊपर लिखी हुई बातों पर यदि गम्भीर हृदय से विचार किया जाय तो बुन्देलखण्ड प्रान्त के निर्माण के सम्बन्ध में किसी को कोई भ्रान्ति नहीं हो सकती।

देहली]

प्रान्त-निर्माण सम्बन्धी बाहर से आये पत्रों के अंश

१—श्री बनारसीदत्त शर्मा, सम्पादक, स्वतंत्र झाँसी :—

जहाँ तक बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक तथा साहित्यिक उन्नति का सम्बन्ध है वहां तक तो कोई भी बुन्देलखण्डी अथवा अबुन्देलखण्डी यह नहीं चाहेगा कि उसके मार्ग में रोक आवे। बल्कि सभी को उस उन्नति के लिये अपनी सामर्थ्यानुसार प्रयत्नशील रहना चाहिये। कोई भी व्यक्ति इस कार्य में सहयोग नहीं देगा तो करेगा क्या?

काफी विचारविनिमय के बाद भी हम यह नहीं समझ सके कि बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक तथा साहित्यिक उन्नति के लिये हमें क्षेत्र-विभाजन या विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाना पड़े। हमें इसमें कोई भी संदेह नहीं है कि आपकी कोई राजनैतिक आकांक्षा नहीं है। किन्तु क्या भविष्य में प्रान्त-निर्माण की योजना एक राजनैतिक आकांक्षा की पृष्ठभूमि नहीं बन सकती? सम्भव है कि आपसी बातचीत के बाद हम एकमत हो सकें और यहां इतनी दूर बैठ कर जो वस्तु हमें उलझन में डाल रही है, उसकी बारीकी को पकड़ सकें।

२—श्री गोविन्दराय जी शास्त्री, महरौनी :—

बुन्देलखण्ड सदैव से स्वतन्त्र प्रान्त है। कालिदास और चाणक्य ने अपने ग्रंथों में 'दशार्ण' नाम से स्वतन्त्र ही उल्लेख किया है और व्रज का 'शूरसेन' के नाम से। प्रसिद्ध वैयाकरण कात्यायन ने भी एक वार्तिक में

दशार्ण नाम से ही उल्लेख किया है। दशार्ण नाम धसान नदी के कारण पड़ा है। विरोध करने वालों के दोनों लेख मेरे पास कृपा कर भिजवा दीजिये। प्रतिवाद में अवश्य लेख लिखा जाना चाहिये।

३—श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव चन्द्र, एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न, लश्कर :—

मेरा विचार है कि ब्रजभाषा अब भाषा के सम्मान को खोकर अवधी,बुन्देलखण्डी, आदि बोलियों की भांति केवल बोली रह गई है। भाषा तो अब केवल हिन्दी है, जिसके अंतर्गत ब्रज, बुन्देलखण्डी, अवधी आदि बोलियां अथवा उपभाषाएँ हैं। ब्रज तथा बुन्देलखण्डी में कितना साम्य है, कितना वैषम्य, एक का दूसरी पर कितना प्रभाव है, तथा दोनों एक हैं अथवा पृथक्, यह प्रश्न भाषाविज्ञानियों के अध्ययन से सम्बन्ध रखता है। मैं समझता हूँ कि व्यर्थ के झगड़े में न पड़ अपने अन्य उपयोगी कार्यों की भांति आप कुछ विद्वानों को अपने साथ ओरछा में रख कर तदविषयक निष्पक्ष अध्ययन का अवसर दें। यह कहीं अधिक समुचित होगा। हिन्दी भाषा के नाम पर पृथक् प्रान्त की मांग की जा सकती है, उप भाषाओं अथवा बोलियों के नाम पर वैसा करना उचित न होगा, फिर चाहे वह बोली केवल चौरासी कोस की सीमा में बँधी हो अथवा उसके बोलने वाले ७०, ८० हज़ार वर्गमीलों में फैले हों। मेरा जहाँ तक ध्यान है ब्रज ने यह दावा कभी प्रस्तुत नहीं किया, फिर बुन्देलखण्ड इस बल पर किस प्रकार उचित रीत्यनुसार प्रस्तुत कर सकता है? मैं समझता हूँ यह ऐसे मस्तिष्कों की सूझें हैं जिन्हें कुछ अन्य कर्तव्य शेष नहीं रह गया है।

४—श्री शम्भुनाथ जी सक्सेना, सम्पादक, 'आनन्द', लश्कर :—

मैंने बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण के सम्बन्ध में विचार-विनिमय जिन सज्जनों से किया उन्हें प्रकाशन में उनकी सम्मतियों सहित लाना चाहता हूँ। इसमें केवल एक विरोधी सम्मति श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव की है। उसे मैं आपकी सेवा में भेज रहा हूँ। डाक्टर रामकुमार, सत्येन्द्र जी आदि आठ सज्जनों की सम्मतियां पक्ष में हैं।

५—श्री वियोगी हरि, हरिजन सेवक संघ, दिल्ली :—

बुन्देलखण्ड एक अलग प्रान्त बनाया जाय यह विचार मुझे अप्रिय और अवांछनीय लगा। मेरी दृष्टि में यह विचार त्याज्य है। पर ऐसे विचारों से मुझे या किसी को भी चिन्तित होने का कोई कारण नहीं, क्योंकि मैं देखता हूँ कि प्रकृति तो इसमें अन्यथा ही रचना करने जा रही है। आश्चर्य इस बात पर हुआ कि इस प्रस्ताव के पुरस्कर्ता आप है...........मैं तो यह अनुरोध करूँगा कि आप ऐक्य-विरोधी योजनाओं से अपना हाथ बिलकुल खींच लें। आपमें जो तेजस्वी शक्ति है उसका प्रयोग तो राष्ट्र और विश्व के और ही कल्याणकर कार्यों में होना चाहिये।

६—डाक्टर रामकुमार वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्व विद्यालय :—

आपका पत्र तथा 'लोकमान्य' और 'जागृति' के विचार, जो बुन्देलखण्ड के अलग प्रान्त बनाने के विषय में प्रकट किए गए हैं, मिले। इन विचारों को पढ़कर मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उपर्युक्त पत्रों ने प्रश्न पर बड़ी संकुचित दृष्टि से विचार किया है। भाषा और बोलियों के आधार पर प्रान्त निर्माण होना पाकिस्तान नहीं है। आज जो हमारे सामने शासन की सुविधा के लिए प्रान्त-विभाजन है, क्या वह भी किसी प्रकार का पाकिस्तान है? १८५८ में जब भारत का शासन-सूत्र कम्पनी के हाथों से ब्रिटिश पार्लमेंण्ट के हाथों में पहुँचा था, तभी प्रान्तों के निर्माण में भाव, भाषा और संस्कृति का दृष्टिकोण होना चाहिये था, किन्तु पराजित राष्ट्रों की संस्कृति पर किसने ध्यान दिया है?

मैं आपके प्रस्ताव से पूर्णतः सहमत हूँ। इसकी चर्चा में साहित्य-सम्मेलन के अंतर्गत

साहित्य-परिषद् के सभापति के भाषण में अवश्य करूँगा। इस प्रकार के प्रान्त-निर्माण से आप किन्हीं विशेष भाषा-भाषियों में अपना इतिहास, संस्कृति एवं परम्परा समझने में संगठित शक्ति का सूत्रपात करा सकेंगे।

७—श्री नारायणदत्तजी मिश्र, अध्यापक एम० एस० बी० हाई स्कूल, कालपी :—

मुझे विश्वकोष की योजना अवश्य पसन्द आई। आना भी चाहिये, क्यों कि मैं भारतवासी होने के पश्चात् बुन्देलखण्डी भी हूँ। काम केवल अपना है प्रोत्साहन देना और उसके निर्माण में सहायक बनना........उक्त विश्वकोष भारतीयता का बाधक न होने के कारण अवश्य प्रिय है।

प्रान्त निर्माण के विरुद्ध हूँ। मेरे लगभग वेही विचार हैं जो 'लोकमान्य' के हैं। 'जागृति' की शब्दावली सर्वथा निन्दनीय है। वेही विचार संयत शब्दों में प्रकट किये जा सकते थे........ राजनैतिक झमेले में पड़कर हम वह भी अन्तर्निहित शक्ति खो सकते हैं जो हम में गत अनुभवों के कारण संचित हुई है। श्रेयस्कर यही है कि ऐसे अराष्ट्रीय विषय का त्याग कर दें।

८—श्री फूलचंद्र वर्मा, स्था० प्रधान मंत्री, श्री हिन्दी विद्यार्थी सम्प्रदाय, कालपी:—

साहित्यिक दृष्टि, बोलचाल और भाषा से बुन्देलखण्ड प्रान्त के पृथक्-निर्माण की योजना का यह संस्था हृदय से स्वागत करती है। चूँकि स्वदेश के विभिन्न समुदायों को पृथक्-पृथक् रूप से एक ही ध्येय को रखते हुए अपने सुदृढ़ संगठन की विशेष आवश्यकता है, और तभी हम अपनी मनोवांछित इच्छाओं को पूरी सफल हुआ अवलोकन कर सकते हैं, अतः संस्था परम पिता परमात्मा से सानुनय प्रार्थी है कि वह साहित्यिक दृष्टि से प्रान्त-निर्माण की स्वयोजना को पूर्णत्व प्राप्त करें।

९—श्री श्यामप्रकाश जी दीक्षित, सम्पादक दैनिक 'जागरण', झाँसी:—

बुन्देलखण्ड की पृथकत्व की आवाज़ के सम्बन्ध में मुझे कुछ भ्रम है, जो बिलकुल स्वाभाविक ही है—इससे अधिक नहीं। मैं चाहता हूँ कि हमारे प्रान्त में जनता की सच्ची आवाज़ का बोलबाला हो। सभी मामले में जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व हो। किसान के वेश में जमींदार व मजदूर के वेश में मिलमालिक अपने हथकंडे न दिखा दें। मैं स्वयं अपने को धोखा न दे बैठूँ.......पुण्य के बदले पाप न कमा डालें। मैं समझता हूँ कि आप मेरी बात को समझने की कोशिश करेंगे और मेरी भ्रान्ति दूर करेंगे।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी भ्रान्ति केवल भ्रान्ति मात्र ही रहेगी। आशा है आप बुन्देलखण्ड प्रान्त की भावी रूपरेखा पर प्रकाश डालेंगे, जिसके लिये हमें प्रयत्न करना है।

१०—श्री गौरीशंकरजी द्विवेदी 'शंकर' झाँसी

प्रान्त-निर्माण का काम आपने जिस सुन्दरता से किया है, वह स्तुत्य है। सचमुच ही आज स्वर्गीय वर्माजी (कृष्णबल्देवजी वर्मा) की आत्मा शान्ति का अनुभव करती और आपको अनेकों साधुवाद देती होगी। उनके अन्त समय के लिखे गये पत्र ही इसके द्योतक हैं। मुझसे इस सम्बन्ध में जो भी सेवा आप लेना चाहें, कृपया निस्संकोच लिखते रहें। मैं सब प्रकार का सहयोग देने के लिये प्रस्तुत हूँ.......जिस प्रकार भी हो इस महान् यज्ञ को सफलतापूर्वक पूरा करना है। आपने इसका सूत्रपात करके अभिनन्दनीय कार्य किया है।

११—श्री मदनलाल चतुर्वेदी, सम्पादक दैनिक 'लोकमान्य', कलकत्ताः—

आपके बुन्देलखण्डी भाषा और बोलियों के आधार पर प्रान्त-निर्माण के विचारों पर हमने 'लोकमान्य' में विचार व्यक्त किये हैं.......हमारे विचारों के ही आधार पर हबड़े की 'जागृति' ने भी एक टिप्पणी लिखी है। साप्ताहिक 'जागृति' में लाँगूली के टिप्पण में आपके ऊपर एक छींटा भी है.........अस्तु, यह विनोद है पर हमें तो अच्छा न लगा। हमने जो लेख लिखा है सो सिद्धान्त विवेचनार्थ और तत्व बोधार्थ।

यदि उचित समझें तो 'मधुकर' में उद्धृत कर अपने विचार व्यक्त करें।

१२—श्री रामजीदास तिवारी, बी० ए०, एल० ए० बी०, वकील, कालपी

भाई कृष्णानन्दजी गुप्त के लेख से मैं सर्वथा सहमत हूँ, लेकिन इस लेख से बोलियों के आधार पर प्रान्तों के पुनर्निर्माण की बात की पुष्टि नहीं होती। प्रश्न गम्भीर है। अभी तक मैं इस योग्य नहीं हो सका हूँ कि आपके नारे का खुले तौर पर समर्थन कर सकूं। मेरी आप से प्रार्थना है कि अपनी पुष्टि में आप एक और लेख लिखें, जिससे विषय पर पूर्ण प्रकाश डल सके। विषय का सम्बन्ध देश की सम्पूर्ण राजनीति से है। 'लोकमान्य' की यही एक ज़बरदस्त बात है। इसको स्पष्ट कर सकें तो अधिक अच्छा हो।

१३—श्री श्रीराम पाँडेय, सम्पादक साप्ताहिक 'लोकमान्य', कलकत्ताः—

प्रान्त बनाने के सम्बन्ध में जो आन्दोलन चल रहा है, उसमें मेरी दिलचस्पी नहीं है। आप पहले सांस्कृतिक संघ बनाने का आन्दोलन क्यों नहीं करते? आप जिन ज़िलों अथवा क्षेत्रों का बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्मित करना चाहते हैं, उन्हीं क्षेत्रों के साहित्य तथा संस्कृति से प्रेम रखने वाले व्यक्तियों का सांस्कृतिक संघ बनाइये। इसमें किसी को आपत्ति भी नहीं होगी और यह कार्य विना राजनैतिक प्रान्त बनाये सम्पन्न हो जायगा।

१४—श्री चन्द्रभानुजी विद्यार्थी, हिन्दी-विद्यार्थी सम्प्रदाय, कालपी

........'मधुकर' में बुन्देलीखण्डी विश्व-कोष प्रकाशन सम्बन्धी आपकी योजना व इस सम्बन्ध में आपके विचार पढ़ने को मिले..... सचमुच आपका इस कठिन अवसर पर यह कार्य बहुत ही सराहनीय है। आपके बुन्देलखण्डी विश्वकोष के महायज्ञ के लिये प्रकट किये गये विचार पढ़ कर एक ऐसा भाव पैदा हुआ कि किस प्रकार आपके इस अनुष्ठान में सम्मिलित होऊं। सम्मिलित ही न होऊं वरन इस पुनीत कार्य में जितना अधिक-से-अधिक हो सके, हाथ बटाऊँ और जिस प्रकार से भी यह कार्य पूरा होवे उन समस्त साधनों के जुटाने में प्राण-पण से जुट जाऊँ। इस कार्य का भली प्रकार पूरा होना बुन्देलखण्ड की सबसे बड़ी सेवा करना है। इस अवसर पर दुख की बात तो यह है कि आपके भाई मोती चन्द्र जी भी आपके निकट नहीं है। आज तो वे दिन भर आपके लेखों को पढ़ते रहे। इस अवसर पर आपको यह बता दूं कि सौभाग्य से मैं और वह साथ-साथ इसी जेल में नज़रबन्द हैं। हम लोगों को इस अवसर पर इस बात का दुख है कि आपके द्वारा आयोजित इस पवित्र कार्य में हम लोग कोई सहयोग नहीं कर सकते हैं। फिर भी इतना उल्लास है कि उसे शब्दों में किस प्रकार प्रकट करूँ। आपको मैं क्या लिखूँ? हम लोग तो आपके पथ के पथिक और आज्ञा-कारी हैं ही फ़िर भी ढीठता करते हुए कह रहा हूँ कि इस पुनीत कार्य में जितनी बाधाएँ आवेंगी वे सब हमें और भी जल्दी कार्य सम्पन्न कराने में सहायक होंगी।

(नज़रबन्द ज़िला जेल उरई)

१५—श्री गोवर्द्धनदास त्रिपाठी, साहित्य रत्न, मऊ छीवों, बाँदाः—

इसमें सन्देह नहीं कि बुन्देलखण्ड को अलग प्रान्त बनाने के विषय में हम सबको मिल कर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, पर इसकी सफलता के लिये यदि व्रज और बुन्देलखण्ड निवासी मिलकर कार्य करें तो अधिक उचित और सुन्दर होगा।

'लोकमान्य' की राय पढ़ी। लेख में ओर-छोर से राजनैतिक भावुकता प्रकट है। बुन्देल-खण्डी एक भाषा है और उसकी अपनी बोली है। जो उसे सर्वथा व्रज भाषा कह कर उसके अस्तित्व पर कुठाराघात करना चाहते हैं वे 'लोकमान्य' के ही शब्दों में प्रकाश प्राप्ति के योग्य हैं। उनका ज्ञान बुन्देलखण्डी के प्रति परिपक्व नहीं है। भावुकता से ओत-प्रोत होकर अपने घर भविष्य में होने वाले आक्षेपों को निवा-

रण करने के लिये कटुतापूर्ण तर्क पहले से लेख में ला देना गम्भीर विचार-धारा का द्योतक कदापि नहीं है। वे स्पष्ट अभाव के सूचक हैं।

१६—श्री कैलाशनाथ जी प्रियदर्शी, एम० ए० भू० पू० सम्पादक 'आनन्द' व प्रधान मंत्री हिन्दी साहित्य संघ उरई:—

आपका प्रान्त-निर्माण विषयक लेख और उस पर हुई आलोचनाएँ आदि प्राप्त हुईं। वसंतोत्सव के समय एक साहित्यिक-पार्लमेण्ट करने का विचार है। उसमें इसी प्रश्न पर विचार किया जायगा तथा आपकी सेवा में इस सम्बन्ध में संघ के तथा अपने विचार लिख भेजूँगा।

१७—श्री रामसेवक रावत, मैनेजर स्वाधीन प्रेस, झाँसी:—

हम सब एक दूसरे के सहयोग से अपने प्रान्त-निर्माण-यज्ञ का आरम्भ करें। इसी में हम लोगों का शिव (कल्याण) निहित है। आपकी आज्ञानुसार हम ओरछा अवश्य पहुँच जायँगे। हम लोग वहाँ आपकी आयोजना में सहयोग-कार्य के लिए भी विचार-विमर्श करेंगे। मित्र जी (श्री रामचरण ह्यारसा) संभवतः महोबा जायँगे ⋯⋯महोबा में बुन्देलखण्ड के बहुत से कवि पधारेंगे। इसलिये आप अपने कुछ प्रकाशित लेखों की प्रतियाँ 'मित्र' जी को भेज दें, वह वहाँ बाँट देंगे⋯⋯जज साहब (राय श्यामाचरण) बालाघाट व अमरावती के प्रोफेसर हीरालाल के पास प्रान्त-निर्माण की आयोजना भेज दें। वह लोग पूर्ण सहयोग देंगे।

१८—श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी, संस्थापक बी० एन० वी० हाई स्कूल, राठ:—

ललितपुर में पं० पुरुषोत्तमदासजी तथा अन्य सज्जनों से प्रान्त-निर्माण विषयक वार्तालाप किया। फिर झाँसी में लोगों को प्रान्त-निर्माण-योजना समझाई। महोबा होकर मोदहा गया और श्री लक्ष्मीनारायणजी गुप्त 'आनन्द', बी० काम० को मैंने इस योजना को समझाया। उन्होंने इस विषय में सहयोग देने का वचन दिया है। श्री सुन्दरलालजी सक्सेना 'भ्रमर', महुआ बाग, महोबा तथा हमीरपुर ज़िले के अन्य सज्जनों से मिला। वे सब सहायता देने को तैयार हैं। तारीख २७ को ओझाजी, ग्राम पिपरी, नौगांव की अध्यक्षता में एक सभा हुई⋯⋯मैं यह प्रयत्न कर रहा हूँ कि बुन्देलखण्ड के कार्यकर्ता एकबार श्री ओरछा-नरेश से टीकमगढ़ में मिल कर उनकी सारी बात सुनें तथा समझें।

१९—श्री हरगोविन्द गुप्त, चिरगाँव:—

'लोकमान्य' और 'जाग्रति' के वे विचार मिले, जिनमें बुन्देलखण्ड की प्रान्तीय माँग का विरोध उन्होंने किया है।

जहाँ तक मैं जान सका हूँ उक्त पत्रकार अभी इस बारे में भ्रम में ही हैं, उन्हें जानना चाहिये कि हम बुन्देलखण्ड प्रान्त का नव-निर्माण करने नहीं, उसका संगठन करने जा रहे हैं। बुन्देलखण्ड प्रान्त सदियों पुराना प्रान्त है जिसकी सीमा है—

यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अंचल,
पूर्व ओर है टोंस पश्चिमांचल में चम्बल।

बस इसी पुरातन सीमा के भीतर अपने पूर्वजों की थाती को विभिन्न आधिपत्यों के बीच से संभाल कर सुव्यवस्थित और सुसंस्कृत कर राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रवेदी पर अपने पत्र-पुष्प समर्पित करते हैं। इसके सिवाय न तो हमें देश के विभिन्न भागों में बसे हुए बुन्देलखण्डी भाइयों को ही यहाँ ला बसाना है और न यहाँ पर बसे हुए मद्रासी, महाराष्ट्र, बंगाली और पंजाबी बन्धुओं को ही यहाँ से खदेड़ना है। न किसी के अधिकारों पर कुठाराघात ही हम करना चाहते हैं, तो क्यों हमारी माँग को पाकिस्तान की सफलता में रक्खा जाय या दूसरों को उससे बिचकना पड़े?

उक्त पत्रकारों ने ब्रज और बुन्देलखण्ड के साहित्य और संस्कृति को एक ही बताया है। अच्छा होता यदि उक्त विचारों के प्रतिपादक थोड़ा-सा कष्ट उठा कर इन दोनों जनपदों का अनुभव ज़रा आलोचना और अन्वेषण की दृष्टि से, यहाँ की शहरी सभ्यता से दूर प्रान्तों में

रेहकर कर लेते और तब फिर इस विषय पर क़लम उठाते। और नहीं तो यों तो फिर अर्थान्तर और प्रकारान्तर से केवल ब्रज और बुन्देलखण्ड का ही क्यों, सारे देश और फिर दुनिया का साहित्य, सभ्यता और संस्कृति एक ही कह सकते हैं, किन्तु उसके लिए जिस विशाल हृदय और अटूट सद्भावना की आवश्यकता होती है, क्या हमारे क्षुद्र हृदयों में आज उसकी पर्याप्त मात्रा है? ऐसी दशा में हमारे लिए यही उचित है कि छोटे-छोटे जनपदों को सुसंगठित और सुसंस्कृत कर अपने राष्ट्र को अखण्ड, अक्षय और स्वतन्त्र बनाएं।

२०—श्री रामसेवक रिछारिया, हैडमास्टर, राठौर स्कूल, ग्वालियरः—

'मधुकर' और 'जाग्रति' एवं 'लोकमान्य' के लेख देखने को मिले। आपकी योजना से मुझे तो हार्दिक आनन्द हुआ। श्रीयुत थत्तेजी एम० ए० ने जो यहीं स्थानीय जे० सी० एम० हाई स्कूल के हिन्दी टीचर हैं, आपके इन 'जाग्रति' और 'लोकमान्य' के भेजे हुए लेख देख कर कहा है कि हम लोगों को तो अपना काम करना चाहिये। यह तो व्यर्थ की बातें हैं कि हम किसी की आलोचना का जवाब दें। उसका नतीजा यह होता है कि हम अपना लक्ष्य भूल कर और उलझन में फँस जाते है।

श्रीयुत छैलबिहारीलालजी 'छैल' भी बुन्देलखण्ड के अस्तित्व और भाषा को एक अलग ही भाषा मानते हैं। वे तो इन लेखों को देख कर गुस्से में बोले कि आजकल तो सम्पादक लोग बिना अध्ययन के ही जो जी में आया लिख डालते हैं। ब्रजभाषा अलग है, बुन्देलखण्डी अलग। छैलजी हैं मुरादाबाद के और उन्हें इस पचड़े में नहीं पड़ना चाहिये था, पर उन्हें भी इस बुन्देलखण्डी के इस हक़-शोषण पर क्रोध हो आया।

थत्तेजी महाराष्ट्री हैं। लेकिन उनकी बाल्यकाल से लेकर अब तक की ज़िन्दगी बुन्देलखण्ड में ही गुज़री है। वह पहले छतरपुर में रहते थे, फिर झाँसी रहे और अब ग्वालियर में हाई स्कूल में अध्यापक हैं। उन्हें 'मधुकर' और इस सम्पूर्ण योजना को देख कर हर्ष हुआ।

२१—श्री बलाप्रसाद वर्मा, दिल्लीः—

आपका भाषण, बुन्देलखण्ड प्रान्त के बारे में पढ़ा। बहुत अच्छा है। इस कार्य में जो कुछ सेवा मेरे योग्य हो लिखते रहिये। मैं अपना पूर्ण सहयोग देने को तैयार हूँ। इसकी एक कमैटी बन जाना चाहिये और पूर्णरूप से आन्दोलन होना चाहिये। मैं यहाँ एसेम्बली के मेम्बरों में इस विषय की चर्चा करूँगा और उनकी सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा।

२२—श्री भगवानदास 'बालेन्दु', कुल पहाड़ (हमीरपुर)—

बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण की माँग सर्वथा न्याय संगत है। इससे कोई भी जानकार आदमी इनकार नहीं कर सकता कि दक्षिणी युक्त-प्रान्त के ज़िलों, मध्य-भारत की रियासतों तथा मध्य-प्रान्त के उत्तरी ज़िलों के निवासियों की बोलचाल की भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज एवं वेश-भूषा सर्वथा एक-सी है। बौद्धकालीन 'जैजाभुक्ति' प्रान्त यही था, जिसमें जिझौतिया ब्राह्मणों का राज्य रहा है। अभी भी जिझौतिया ब्राह्मण इसी नव-बुन्देलखण्ड नामक प्रान्त में रहते हैं।

इसमें भी सन्देह नहीं कि जिन्हें यू० पी० और सी० पी० में सार्वजनिक कार्य करने का अवसर मिला है और जिन्होंने इसे अनुभव किया है वे इस बात को साफ़ तौर पर देख सकते हैं कि उक्त प्रान्तों की पंक्तियों में बुन्देलखण्ड के ज़िले मानों कान पकड़-पकड़ कर बिटाये गये हैं।

जब कि विश्व का ही नव-निर्माण हो रहा है, ऐसे समय में यदि कोई देश और प्रान्त अपनी सुविधा के लिए पुनः अपना निर्माण कराना चाहता है और उससे किसी को असुविधा भी न होती हो तो ऐसे कार्य में प्रत्येक स्वतन्त्रता प्रेमीजन का कर्तव्य है कि पूर्णरूप से अपना सहयोग व सहायता दें।

बुन्देलखण्ड का सच्चा निर्माण तो उस दिन होगा जब कि यहाँ के देशी राज्यों के नरेश तथा यहाँ की जनता स्वेच्छा से इसमें सम्मिलित होंगे।

२३—श्री कामताप्रसाद गुरु, दीक्षितपुरा, जबलपुरः—

बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण का उद्देश्य प्रशंसनीय है।

२४—श्री करुणाशंकर पण्ड्या, 'विश्वमित्र', बम्बईः—

बुन्देलखण्ड के एकीकरण के सम्बन्ध में आपके यहाँ जो प्रयत्न हो रहा है, उसके प्रति मेरा पूर्ण समर्थन है। वास्तव में देश का विभक्तीकरण भाषा के अनुसार ही होना चाहिए। कांग्रेस हमेशा ही इस तरह की योजनाओं पर विचार करती रही है। बुन्देलखण्ड के एकीकरण और अलग प्रान्त-निर्माण के लिए आन्दोलन होना ही चाहिए। इस दिशा में जो कुछ काम मुझ से बन पड़ेगा, मैं अवश्य करूँगा।

२५—श्री रामकृष्ण वर्मा, मैनेजर, 'समाचार पत्र एजेंसी' कार्यालय, दतियाः—

श्रीमान् ओरछेश के भाषण में कहे हुए विषय सभी मुख्य हैं। 'बुन्देलखण्ड सेवा संघ' स्थापित करने की बात तो बहुत ही ठीक है। इसके द्वारा प्रान्तीय संगठन करने में सुविधा होगी और प्रचार भी भली भाँति हो सकेगा। रही शक्ति की बात, वह तो शिक्षा व संगठन जिसमें होगा, उसको स्वयं ही प्राप्त हो जायगी। पर हाँ, उद्देश्यों का तो प्रथम प्रचार आवश्यक ही है। इसके लिए आप पहिले बुन्देलखण्ड के मुख्य-मुख्य कार्यकर्ताओं की एक साधारण सभा बुलावें, जिसमें प्रान्तीय संगठन की रूपरेखा तैयार कर ली जाय। मेरा सहयोग हर समय आपकी योजना को सफल बनाने में रहेगा।

२६—श्री गंगा सहाय पाराशरी, टीकमगढ़ः—

बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण जैसे महान् और पवित्र कार्यों का मैं सदैव से प्रतिपादक रहा हूँ। यही कारण है कि कई वर्ष पूर्व मैंने ओरछा-राज्य का इतिहास लिखने का विचार किया था। इस विषय के कुछ नोट्स भी तैयार किये थे, परन्तु परिस्थितिवश वह कार्य पूरा न हो सका। आज कुछ और अधिक व्यापक रूप में आपके सामने वह समस्या आ गई है। इस सम्बन्ध में मेरी सम्मति में ये दो बातें अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं:—

१—प्रान्त-स्थापन के महत्व पर छोटे-छोटे ट्रेक्ट (पुस्तिकाएं) ग्राम-ग्राम में बाँटे जाँय तथा व्याख्यानों की स्थान-स्थान पर व्यवस्था करके जनमत जाग्रत किया जाय।

२—बुन्देलखण्ड की महत्ता को प्रकाश में लाने के लिए अन्य कार्यों के साथ-ही-साथ उसका सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास लिखने का कार्य एक मंडल को सौंप दिया जाय। यह समय की सबसे बड़ी व प्रमुख आवश्यकता तथा माँग होगी।

२७—श्री नारायणसिंह परिहार, फतेहपुर (समथर):—

यह निश्चित ही है कि भारत का उत्थान तभी सम्भव है जब उसका प्रत्येक अंग संगठित होकर उन्नतोन्मुख हो। इस समय बुन्देलखण्ड की तो अत्यन्त दयनीय दशा होरही है, क्योंकि इस प्राकृतिक जनपद में भिन्न-भिन्न प्रणाली के अनेक शासक हैं, जब कि सदा से वह एक अलग प्रान्त के रूप में अपना अस्तित्व, अपनी संस्कृति, तथा इतिहास रखता आया है। किन्तु आज छिन्न-भिन्न होने के कारण इस पर्वतीय भूखंड की जो दशा होगई है, वह शायद ही भारत के किसी अंग की हो। यदि उसे संगठित करने की शीघ्र ही चेष्टा नहीं की गई तो फिर शायद ही कभी उसका उद्धार हो सके।

जहाँ तक मैं सोच सका हूँ यही निर्विवाद सत्य जँचता है कि बुन्देलखंड-प्रान्त का निर्माण बुन्देलखण्ड के ही उत्थान के लिए आवश्यक नहीं है, वरन् समस्त भारत के उत्थान के लिए भी आवश्यक है। इसी प्रकार की प्रान्त-रचनाओं से भारत का उत्थान सम्भव है।

इस सम्बन्ध में मैंने अनेक महाशयों से

अपने-अपने विचार प्रकट करने का आग्रह किया। सभी ने इस योजना का स्वागत किया है।

यह योजना नितान्त आवश्यक और युक्ति-संगत है। अतः हम सबको उसे कार्यान्वित करने की भरसक चेष्टा करनी चाहिए। मैं हार्दिक समर्थन करते हुए शक्ति-अनुसार सहयोग देने के लिए प्रस्तुत हूँ।

२८—श्री हुकुमचन्द बुखारिया, ललितपुर (झाँसी) :—

बुन्देलखंड-निर्माण योजना हमारे लिये ऐतिहासिक गौरव की होगी, क्योंकि उसके पीछे दृढ़ संकल्प और लगन है। बुन्देलखण्ड निवासी की हैसियत से बुन्देलखण्ड-निर्माण हम लोगों के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण आवश्यकता है, जितनी कि भारतवासी की हैसियत से पूर्ण स्वराज्य।

२६—श्री रामसहायजी तिवारी, ग्राम टांनगा (छतरपुर स्टेट) :—

अखिल भारतीय परिस्थिति को ध्यान में रख कर बुन्देलखण्ड-प्रान्त के हितार्थ आप लोग जो भी निश्चित करें, उसमें हम साथ हैं।

३०—श्री केदारनाथ श्रीवास्तव, मऊरानीपुर (झाँसी) :—

एक बुन्देलखण्डी के नाते मैं आपके सदुद्योग की सराहना करते हुए अपनी तुच्छ सेवाएँ समर्पित करता हूँ। मेरे विचार से जन-साधारण में इस संदेश को उचित रूप से पहुँचा कर जाग्रति उत्पन्न करना अत्यंत आवश्यक है।

३१—डा० एच० जी० चौबे, नागदा (ग्वालियर) :—

जन-सेवा के सभी कार्य आदर की वस्तु हैं। मैं प्रान्त-निर्माण की योजना से पूर्णतया सहमत हूँ। बुन्देलखण्ड की रियासतों के कार्यकर्ता एक जगह एकत्रित हों और विचार-विनिमय करके बुन्देलखण्ड के प्रथक प्रान्त बनाने के सम्बन्ध में एक योजना तैयार करली जाय।

३२—श्री रामनाथ गुप्त, सहकारी सम्पादक, साप्ताहिक 'प्रताप', (कानपुर) :—

आपकी सेवा के लिए साप्ताहिक 'प्रताप' के कालम खुले हैं। अलग प्रान्त-निर्माण की समस्या को तो हिन्दी-साहित्य से सम्बद्ध कर दिया गया है और उसका आधार सांस्कृतिक रक्खा गया है। अतः 'प्रताप' उसमें अवश्य दिलचस्पी लेगा।

३३—श्री मोतीलाल टड़ैया, सरांयपुरा, ललितपुर (झाँसी) :—

बुन्देलखण्ड का एकीकरण उपयोगी, समयानुसार एवं अत्यंत आवश्यकीय है। बुन्देलखण्ड में भ्रमण करने से मनुष्य-मात्र को इस बात का अनुभव हो सकता है कि बुन्देलखण्ड का एकीकरण इतना आवश्यकीय क्यों है। इस प्रान्त का उद्धार उसके एकीकरण के द्वारा ही हो सकता है।

निःसंदेह यह कार्य सराहनीय है। ईश्वर से प्रार्थना है कि इस कार्य में शीघ्र-से-शीघ्र सफलता प्राप्त हो!

३४—श्री मदनगोपाल चौरसिया, महाराजपुर (छतरपुर स्टेट) :—

प्रान्त-निर्माण को हम जनता के हितार्थ अत्यंत आवश्यक समझते हैं।

३५—श्री हरगोविन्द विद्यार्थी, सुपरवाइजर स्टेट प्रेस, दतिया :—

वर्तमान समय का कोई भी संगठन बिना जनबल के टिक ही नहीं सकता। मेरा आवश्यक सहयोग हर समय आपको प्राप्त रहेगा।

३६—श्री उत्तमचन्द कठरया, ललितपुर (झाँसी) :—

निःसंदेह बुन्देलखण्ड का एकीकरण आवश्यकीय है। इस योजना में हम लोग सफल हों, यही कामना है।

३७—श्री अमृतलाल जैन, बड़ागाँव, (ओरछा स्टेट) :—

राष्ट्रीय दृष्टि से भाषा एवं संस्कृति के आधार पर बुन्देलखण्ड का एकीकरण आवश्यक है। इस सम्बन्ध में मुझे जोभी कार्य करने का आदेश होगा, मैं उसे येनकेनप्रकारेण पूरा करने का भरसक प्रयत्न करूँगा।

३८—श्री तुलसीराम जैन, दिगम्बर जैन इन्टर कालेज, बड़ौत, (मेरठ) :—

मेरा विश्वास है कि प्रान्त-निर्माण की योजना जनता द्वारा समादृत होगी। मेरी धारणा है और वह प्रबल है कि हमारे बुन्देलखण्ड में उन शक्तियों के बीज पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं, जिन शक्तियों के विकसित होने से एक प्रांत का सर्वतोमुख अभ्युत्थान हो सकता है।

इस योजना से मैं पूर्णतया सहमत हूँ।

३९—'ओरछा सेवा संघ', टीकमगढ़ द्वारा: ६ मई १९४३ को पास प्रस्ताव :—

'हिन्दुस्तान' (ता० ७–५–४३) में बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण पर श्रीमान् ओरछेश के विचार भली भाँति प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त 'ओरछेश का नाम इसलिये ओरछेश है कि वह आप का कोषाध्यक्ष है। वरन् ओरछेश कुछ भी नहीं है'। आदि शब्दों से श्रीमान् महाराजा साहब की हार्दिक जनहितैषी भावना की कौन सराहना न करेगा! महाराजा साहब के उद्गार समाचार-पत्रों के द्वारा हज़ारों और लाखों व्यक्तियों तक पहुँच गये हैं। अब हम किसी प्रकार भी इस उठाये हुए क़दम को पीछे नहीं हटा सकते हैं। 'बुन्देलखण्ड-सेवा-संघ' की नींव को मज़बूत करने के लिये हमें 'ओरछा-सेवा-संघ' को अधिक मज़बूत और व्यवस्थित बनाना होगा। यह तो आशा है ही कि जिस प्रकार अब तक के कार्यों में सब लोगों ने मिलकर संस्था को उच्च शिखर तक पहुँचा दिया है, उसी प्रकार इसके भविष्य को भी उज्वल बनाने के लिये और अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिये पूर्ण सहयोग मिलता रहेगा।

अतः यह बैठक निश्चय करती है कि श्रीमान् ओरछेश की सेवा में यह निवेदन कर दिया जाय कि 'ओरछा-सेवा-संघ' उनके बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण-सम्बन्धी वक्तव्य से पूर्णतः सहमत है और पूर्ण विश्वास दिलाता है कि वह पूरी शक्ति के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहेगा।

४०—श्री शान्तिचन्द्र द्विवेदी, सर्वोदय संघ, दिनारा (ग्वालियर) :—

मैं सांस्कृतिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड को एक पाता हूँ। एक वर्ष से अधिक समय तक लगातार महाराष्ट्र में रह कर जब मैं इधर लौटा था तो ट्रेन में मुझे बहुत पहले ही भोपाल का एक ग्रामीण मिल गया था। उसकी बोली सुन कर प्रेम उमड़ पड़ा था। सुनते हैं कि सारे बुन्देलखण्ड में हरदौल के चबूतरे हैं और यत्र-तत्र गालियाँ भी बुन्देलखण्डियों को सामूहिक रूप से प्रान्त की भावना से ही दी जाती हैं।

बुन्देलखण्ड की संस्कृति अपनी निजी है। मेरे इलाके में ठकुरास का प्रभुत्व है। बोली, रहन-सहन इत्यादि सभी पर उसकी छाप है। अन्यत्र और कोई प्रभाव हो सकता है। किन्तु इन सब में एक-सूत्रता अवश्य है। बोली की बाबत नया आन्दोलन चला है कि बुन्देलखण्डी ब्रजभाषा से निकली है। यह अगर सत्य भी हो, फिर भी बुन्देलखण्डी का महत्त्व थोड़ा भी कम नहीं होता है क्योंकि उसके साथ एक विशिष्ट जनपद की असंख्य पीढ़ियों के जीवन की गंध समा गई है।

४१—श्री लक्ष्मीप्रसाद शुक्ल 'श्रीवत्स', समथर :—

हमारे बुन्देलखण्ड का इतिहास, वेष-भूषा तथा भाषा-संस्कृति अखिल भारतवर्षीय प्रान्तों से भिन्न हैं और किसी से भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि हमारा अलग प्रान्त होना कितना आवश्यक है।

४२—श्री बेनीमाधव तिवारी, एम० एल० सी०, आटा (जालौन) :—

बुन्देलखण्ड का एकीकरण तो बहुत अच्छी चीज़ है, पर वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति बड़ा ज़बरदस्त अड़ंगा है।

प्रारम्भ से पहले परिणाम सोचना अच्छी बात है, पर अच्छी बात का प्रारम्भ तो परिणाम सोचने के चक्कर में पड़ कर रोकने की चीज़ नहीं।

प्रान्त-निर्माण का वैज्ञानिक आधार

श्री शविल विल्सन चन्दा

आपके पत्र के स्तम्भों द्वारा मैं भारतवर्ष के प्रान्तों के सांस्कृतिक तथा भाषा-सम्बन्धी विभाजन पर अपने विचार आपके पाठकों के सामने रखना चाहता हूँ।

संसार के समस्त बुद्धिमान व्यक्ति इस निश्चय पर आ पहुँचे हैं कि संसार का भावी बटवारा केवल बल अथवा एक-दूसरे के ऊपर सांस्कृतिक प्रभुत्व के द्वारा नहीं हो सकता। प्रथम प्रयोग, जैसा कि सर्व-विदित है, रूस में किया गया था। विशाल रूसी यूनियन की विभिन्न सोवियटों की प्रादेशिक स्वतन्त्रता घोषित करने से पहले उनकी सांस्कृतिक, भाषा-सम्बन्धी तथा परम्पराओं की नाप-जोख कर ली गई थी। यह विश्व के भविष्य के लिए एक सुन्दर आशा-चिह्न था। जैसा कि सब जानते हैं रूसी लोग हमारे इस बड़े उप-महाद्वीप भारत से भी अधिक छोटे-छोटे भागों में बँटे हुए हैं। फिर भी जो युद्ध वहाँ चल रहा है, उसमें वे सब संगठित रूप में भाग ले रहे हैं। यह उन लोगों के कारण है जो सांस्कृतिक, भाषा सम्बन्धी तथा धार्मिक परम्परा आदि राष्ट्र-निर्माणक अधिकारों के पहले मिल जाने के कारण संगठित होगये थे। वास्तविक स्वतन्त्रता का आगमन जान कर वह प्रगति के मार्ग में एक-सूत होगए। रूस में भाषा और लिपियों को अपने-अपने क्षेत्र में पनपने की पूरी स्वतन्त्रता है। इस स्वतन्त्रता को जर्मनों ने खतरे में डालना चाहा और उन्हें उन लोगों की शक्ति का मुकाबला करना पड़ा, जो स्वतन्त्रता रूपी कुएँ का जल पी-पी कर खूब बलिष्ट होगये थे।

ऐसा ही भारतवर्ष का मामला है। हमारे भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज, परम्पराएँ, मज़हब, भाषाएँ तथा लिपियाँ हैं। हमारा एक ही, नहीं दो धर्म हैं, फिर भी हम एक-दूसरे से भिन्न हैं। इस विभिन्नता का अनुचित लाभ न उठाना चाहिए, बल्कि इसे अपने-अपने स्थान और प्रदेशों में जीवित रहने तथा फलने-फूलने का जन्म-सिद्ध अधिकार मिलना चाहिए। बुन्देलखण्ड की भाषा और उसके साहित्य पर जो दुर्घटना घटी है, वह बड़ी विकट है। वे हमारे भाई-बन्दों के ही एक अलग हिस्से हैं। वे भिन्न प्रकार से बोलते हैं, उनकी अपनी संस्कृति और परम्परा है। इसके अतिरिक्त उनका अपना साहित्य है, जो कि मानवता का मानवता के लिए सबसे बड़ा वरदान है।

कुछ लोग हैं, जो इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। यदि उन लोगों की बात सुनी जाती है और उनका फतवा कार्यान्वित किया जाता है तो मुझे विश्वास है कि इससे बढ़ कर कोई दूसरी विपत्ति हम लोगों पर नहीं आ सकती कि एक चीज़ को, जिसमें नीतिपरक तथा उत्साहवर्धक सौन्दर्य हो, उसे नष्ट कर दिया जाय। इससे अधिक गलत बात और कोई नहीं है कि एक ऐसे समुदाय को दबा दिया जाय जो केवल जीवित रहना चाहता हो और वह भी अपनी पसीने की कमाई से, बिना किसी को हानि पहुँचाए। उनको हर प्रकार से उत्साहित करना चाहिये और हर प्रकार की उन्हें सुविधा देनी चाहिए कि वह हमारे ज्ञान को विस्तृत करें, जो कि मानवता के लिए सबसे बड़ा वरदान है।

बुन्देलखण्डी इससे अधिक और कुछ नहीं चाहते कि उनकी संस्कृति और साहित्य को स्वीकार किया जाय। बुन्देलखण्डी एक बोली नहीं है, जैसा कि अक्सर सर्वसाधारण में कहा गया है। यह भाषा के उन छोटे-छोटे जीवों में से नहीं है, जो हर पाँच मील पर अपना उच्चारण बदल देते हैं। यह एक भाषा है, जिसकी युगों पुरानी सुन्दरता है और अपना निज का अस्तित्व है। भावी प्रान्तों का विभाजन उपरोक्त कथित तथ्यों के आधार पर होना चाहिए। अन्त में इससे बहुत लाभ ही होगा और एकता स्थापित होगी। यह अपने ढंग का दूसरा रूस होगा, जो स्वतंत्रता पर किसी भी प्रकार के आक्रमण या

अपहरण का विरोध कर सकेगा। इस साहित्य के वीरों को व्यर्थ में न मर जाने दो। कोई राष्ट्र जीवित रहने योग्य नहीं है यदि वह राष्ट्र की लहरों की प्रशंसा और उनका अनुसरण नहीं करता। यदि वे ऐसा करते हैं तो वे अज्ञात और अपरिचित ही नष्ट हो जायँगे। क्या यह बहुत होगा कि इस तथ्य को उचित महत्त्व दिया जाय और राजनीतिज्ञ तथा भाषा-विद् इस पर ठंडे दिल से विचार करें।

[सं०—'आनंद' (उरई) के नाम भेजा गया पत्र

बुन्देलखण्ड-प्रान्त

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

तुलसीदास जी ने कहा है:—

"जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥"

यदि बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण के कुछ पक्षपाती संस्कृति या भाषा के आधार पर भी प्रान्त अलग करने की माँग करते हैं तो उनको गाली न मिलनी चाहिये। सहानुभूति के साथ उनके दृष्टिकोण की परीक्षा की जानी चाहिये। जिस भूमिखण्ड को हम लोग बुन्देलखण्ड-प्रान्त के राजनैतिक रूप में देखना चाहते हैं, वहाँ के निवासियों को कहीं से भी कभी समुचित आर्थिक और राजनैतिक न्याय नहीं मिला। इसलिये घूम-फिर कर जब उनकी अन्तर्दृष्टि कहीं केन्द्रस्थ होती है तो अपने परपर, और वह अपनापन तुरन्त संस्कृति और भाषा का रूपान्तर प्राप्त कर डालता है।

इस प्रश्न को सबसे पहले कुछ साहित्य प्रेमियों ने स्वरित किया है, इसलिए सबसे अधिक महत्त्व संस्कृति और भाषा को दिया गया होता भी ऐसा ही राजनैतिक लोग तो अब इस प्रश्न को अपने हाथ में लेने के लिये विवश किये जायेंगे।

आर्थिक और राजनैतिक पहलू अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। हम अपनी आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने के लिये शक्ति चाहते हैं। इस शक्ति के प्राप्त होने पर समष्टि रूप में सारे देश का कल्याण होगा। भारत के जिन अंगों को लकवा मार गया है और जिनको गठिया सता रहा है उनका औषधोपचार करना सारे शरीर को स्वस्थ और प्रबल बनाना है। जो लोग कहते हैं कि इससे देश को समष्टि रूप में हानि पहुँचेगी, उन्होंने अभी इस प्रश्न पर विचार ही नहीं कर पाया है। अभी तो, ऐसा जान पड़ता है कि संस्कृतिवाद और दुराग्रह टकरा गये हैं, परन्तु आघात की ध्वनिमात्र रह जायगी, उसका प्रभाव नहीं।

झाँसी]

प्रान्त-निर्माण

श्री जैनेन्द्रकुमार

प्रान्त-निर्माण का प्रश्न मुझसे दूर है। मेरी राय उस बारे में अनिवार्य नहीं है। इससे वह कुछ सैद्धान्तिक-सी हो तो अचरज नहीं।

हिन्दुस्तान का आज का प्रान्तीय बटवारा अटल नहीं है। उसमें हेर-फेर की ज़रूरत है। सीधी-सी बात, जिसके आधार पर प्रान्तों का पुनर्विभाजन हो सकता है, वह है प्रान्त की सीमाओं का भाषानुसार निर्धारित होना।

प्रान्तों की आवश्यकता शासन के सुभीते के लिए है। इसलिये वह विभाजन भी शुद्ध स्वाभाविक नहीं हुआ करता। विभाजन अपने आप में ही कृत्रिम है। असल में भूमि पर खण्ड नहीं हैं और यदि कोई अपरिचित व्यक्ति यहाँ से वहाँ तक पैदल घूमजाय तो उसे यह पता नहीं चल सकता कि कब कहाँ वह एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में आगया। इस तरह प्रान्त-विभाजन का काम एक सांस्कृतिक कार्यकर्ता भरसक अपने ज़िम्मे न लेगा।

लेकिन जीवन में खाने नहीं हैं और कोई केवल सांस्कृतिक नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति नागरिक है और हो सकता है कि अपनी कर्तव्य-तत्परता के फलस्वरूप लोक-नेता का दायित्व उस पर आ पड़े। तब लोक-जीवन के सभी प्रश्न उसके सामने आयेंगे और प्रान्तीय सीमाओं के निर्माण का प्रश्न भी उनमें क्यों नहीं हो सकता? स्पष्टतः यह प्रश्न राजनीति का है; क्यों कि इसका व्यवस्था से संबंध है और व्यवस्था-सम्बन्धी अर्थात् राजनैतिक प्रश्न सीधे किसी सिद्धान्त से हल नहीं होता, क्योंकि वह एकमात्र बौद्धिक नहीं होता, राग-द्वेष की भावनाएँ उसमें मिली होती हैं। भिन्न-भिन्न स्वार्थों के बीच में सामंजस्य और संतुलन कायम रखने का वह प्रश्न होता है। इसलिये उन स्वार्थों से अलग जाकर निपेक्ष-रूप से उसका निपटारा असम्भव है। इसीलिये ऐसे प्रश्नों को बहुमत से हल किया जाता है। सही और ग़लत के बीच राज कारण के क्षेत्र में कोई सैद्धान्तिक रेखा खिंची नहीं होती। लोकमत ही उसका निर्णायक है। और लोकमत बनने-बिगड़ने वाली चीज़ है। इसी से शक्ति का हथौड़ा उस पर पड़ता रहता है।

प्रान्त-विभाजन में मोटे तौर पर बोलियों के भेद का आधार मान लेना चाहिए। पर 'मोटे तौर पर' कहने का मतलब यह कि पूरे तौर पर यह नहीं किया जा सकता। बोलियाँ बन्द कमरों में नहीं उगतीं। इससे वे आपस में इतनी मिली-जुली होती हैं कि उन्हें काट कर एक-दूसरे के प्रति पराया बनाना लगभग असम्भव कार्य है। सब सीमाओं और राजनैतिक स्पर्धाओं के बावजूद बोलियाँ और भाषाएँ परस्पर निकट आती रहती हैं और आपस में आत्मीयता बढ़ाती जाती हैं। साहित्यिक जन यही किया करते हैं। स्नेह को मूर्त करने में वे भाषा को अपनी ही सीमाओं के बन्धन से मुक्त किया करते हैं। सांस्कृतिक विकास की यही प्रक्रिया है और राजनीति इसको नहीं रोक सकती।

बुन्देलखण्ड के पड़ौस में ही यदि ब्रज है तो उन दोनों भाषाओं का परस्पर एकीकरण अवश्यम्भावी है। वह हुआ है, होरहा है और होगा। जो हमारे अखबार नहीं पढ़ते हैं और हमारे आन्दोलन जिन्हें नहीं छूते, वे अब भी अपने सहज सुख-दुख की अभिव्यक्ति द्वारा सीमाओं को अस्वीकार करते हैं। एक सीमा-रेखा के दायीं और बाईं ओर रहने वाले लोगों में यह बुद्धि हमेशा के लिए पैदा नहीं की जा सकती कि वे आपस में पड़ौसी नहीं हैं। राजनैतिक विभाजन और उसके आधार पर उपजाया गया स्पर्धा का भाव उन्हें आपस में लड़ा सकता है, पर फिर भी यह लड़ाई स्थायी नहीं हो सकती। और जीवन की सहज आवश्यकता अंत में उन्हें मिलाकर ही छोड़ेगी।

बुन्देलखण्ड ब्रज से भिन्न है, यह स्पष्ट भी हो, पर ठीक किस रेखा पर वे आपस में एक दूसरे से अलग होते हैं यह खोज निकालने का काम कोई सांस्कृतिक कार्यकर्ता अपने ऊपर नहीं लेगा। क्योंकि उनकी भिन्नता से कहीं अधिक उनकी सम-सामान्यता, उनकी अभिन्नता, उसके मन में बसी होगी। मेरे मन में निश्चय है कि अंत में उनकी रेखा सच्ची नहीं होगी और किसी-न-किसी प्रकार स्वार्थों के संतुलन के निमित्त से वह बनाई जायगी।

प्रान्त के केन्द्र की बात जाने दीजिए। वहाँ पृथकता तो कुछ स्थिर-सी मालूम होती है, पर उस प्रान्त के तटवर्ती ज़िले, तहसील और परगने किस आधार पर लिये या छोड़े जायँगे? समस्या ठीक इसी जगह है। और क्योंकि ठीक इस जगह

सांस्कृतिक समाधान काम नहीं दे सकता इससे सिद्ध है कि वह समस्या भी राजनैतिक है।

प्रान्तीय चेतना यदि प्रबल और व्यापक हो उठे तो संस्कृति-निष्ठ लोककर्मी लोकप्रतिनिधि की हैसियत से प्रान्त-निर्माण के प्रश्न में भाग ले सकता है। पर प्रान्तीय-चेतना उत्पन्न करने में उसका कोई भाग होने का अवसर नहीं होना चाहिये, क्योंकि उस चेतना का जन्म स्नेह में से नहीं होता, जोकि आत्मबलि अर्थात् ऐक्य चाहता है, वरन् सूक्ष्म अहंभाव में से होता है जो आत्म-रक्षा की चेतना को उभारता और दूसरे की पृथकता और सदोषता देखा करता है। यही राजनैतिक वृत्ति का बीज है। मुझे लगता है कि स्वतंत्र प्रान्त-निर्माण के प्रश्न का उद्भव इसी भूमि से हुआ होना चाहिये।

यह कहने में राजनीति से बचने का परामर्श नहीं है। केवल यही भाव है कि प्रान्त-निर्माण का काम लोकचेतना को प्रान्तीयता की दिशा में मोड़ने से नहीं, बल्कि विग्रह-ग्रस्त-स्वार्थों को मिलाने के द्वारा और सार्वभौम ब्रिटिश सत्ता को तदर्थ मनाने के द्वारा अधिक सुकरता से हो सकेगा। बुन्देलखण्ड में कितनी रियासतें हैं? क्या वे किसी एक को मध्यस्थ मानकर आपस में मिल सकती हैं? ऊपर ब्रिटिश सत्ता की अधीनता में नहीं, बल्कि स्वेच्छा से मिल सकती हैं? इतना हो सके तो बुन्देलखण्ड-प्रान्त निर्माण का तीन-चौथाई काम होगया समझना चाहिये। उसके बाद शायद ब्रिटिश प्रान्तों के दो-चार जिलों की बात रह जायगी। उन जिलों को मिलाने के लिये रियासतों को भारी त्याग करना पड़ेगा। उन ज़िलों के नाते ब्रिटिश सत्ता, या जो केन्द्रीय सत्ता हो, प्रान्त पर हावी होने आयेगी। क्या इस समय की बुन्देलखण्डी रियासतें इतना त्याग कर सकेंगी? या उन जिलों में अपने प्रति उतना आकर्षण पैदा कर सकेंगी?

समूचा प्रश्न बुन्देलखण्ड को अलग करने का नहीं है, बल्कि बुन्देलखण्ड को जोड़ने का है जनता में तो वह अब भी जुड़ा हुआ है। यदि बँटा हुआ है तो बड़े स्वार्थों के कारण बँटा हुआ है। इसलिये बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण का प्रश्न उतना लोक-चेतन्य को उस दिशा में उद्वेलित करने का नहीं, जितना उन विभक्त और न्यस्त स्वार्थों में त्यागपूर्वक परस्पर मिलने की भावना पैदा करने का है।

सुनता हूँ कि कतिपय रियासतों का सम्मिलित हाईकोर्ट का जो प्रयोग किया गया था वह विशेष सफल नहीं हुआ। ऊपर की सत्ता के सहयोग पर भी वह प्रयोग नाकाम रहा तो यही कहा जा सकता है कि वे रियासतें अभी इतनी एकता के लिये भी तैयार नहीं हैं। फिर उस वर्ग में भी आने से इन्कार करनेवाली दूसरी कई रियासतें थीं। सम्मिलित प्रान्त-निर्माण के लिये सबसे अधिक उन रियासतों में हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है।

या फिर यह काम ऊपर की ओर से सहज किया जा सकता है। पर उसमें प्रच्छन्न संकट है। सरकार ने ही सम्मिलित हाईकोर्ट का प्रयोग लोकहित की दृष्टि से न किया होगा। अर्थात् ऊपर की सुविधा के ख्याल से जो स्वतंत्र प्रान्त-निर्माण होगा, उससे लोकसामान्य के हित का कोई सम्बन्ध न होगा। मान लीजिये कि स्वाधीन भारत में ऊपर से अलग बुन्देलखण्ड प्रान्त बना दिया जाता है। उतने मात्र से क्या आज जो आपसी विग्रह की वृत्तियाँ हैं, वे चली जायेंगी? सिवाय इसके कि ऊपर से समूचे प्रान्त का एक शासक आ जायगा और क्या होगा? सांस्कृतिक कार्यकर्ता को इसमें विशेष तृप्ति न होगी।

सारांश १:—प्रान्त-निर्माण का प्रश्न उसी हालत में और उसी हद तक विचारणीय है जहाँ तक उसमें वृत्ति मिलने और मिलाने की है।

२—इस दृष्टि से लोक-चेतना को प्रान्तीय परिभाषा में बदलना या उभारना अनिवार्य नहीं है।

३—बुन्देलखण्ड यदि प्रान्त की दृष्टि से एक नहीं है तो जिन बड़े स्वार्थों के कारण वह विभक्त है, उनको पिघलाना और उन्हें किंचित् त्याग-

पूर्वक एक प्रान्त के आदर्श में संगठित करना होगा।

४—जनता में तो समस्त भूखण्ड अविभक्त है और अन्ततः प्रान्त-विभाजन में नहीं, बल्कि प्रान्त-हीनता में जनता की सच्ची सेवा और प्रतिष्ठा है।

५—इस दृष्टि से तमाम विभाजन राजनैतिक कर्म है और लोक प्रतिनिधि के तौर पर वह दायित्व के रूप में आही जाय, तभी व्यक्ति के लिए उसमें पड़ना श्रेयस्कर है।

६—ऊपर की सत्ता के बल से राजनैतिक प्रयोजन जल्दी सधता है। प्रान्त भी उस तरह जल्दी बन सकता है। लेकिन उसमें असली लाभ विशेष नहीं है।

७—भाषाएँ आपस में दूर और अलग नहीं रहना चाहतीं। भाषा अपनी बात आगे पहुँचाने के लिए है। इस तरह भाषाओं में आदान-प्रदान और समन्वय अनिवार्य रूप से होता ही आ रहा है और होता ही जायगा। यह ठीक है कि प्रान्त-विभाजन बोलियों के भेद का, अर्थात् राजनैतिक कर्म सहज-विकास की तात्कालिक मर्यादाओं का आश्रय ले। लेकिन यह इसी में गर्भित है कि वह विभाजन-कार्य अचल और स्थिर न होगा, विकासशील होगा, न प्रान्त नितान्त स्वाग्रही होने पायेंगे जैसे कि कोई जीवित भाषा आग्रही नहीं हो सकती।

८—बुन्देलखण्ड-प्रान्त का प्रश्न बुन्देली रियासतों के प्रमुखों के लिए है और वे स्वार्थ-त्याग के आधार पर ही उधर बढ़ सकते हैं।

९—जन-सामान्य के सुख-दुःख से अलग जाकर इस प्रश्न पर विचार करने में खतरा है और इस दृष्टि से पत्रों में नहीं, प्रतिनिधि-परिषदों में ही क्रियात्मक धरातल पर उस सम्बन्ध में विचार हो तो हो सकता है।

दिल्ली]

प्रान्त-निर्माण क्यों और किसके लिए ?

श्री यशपाल जैन, बी० ए०, एल-एल० बी०

मूल समस्या—

'बुद्धवाणी' की प्रस्तावना में श्रद्धेय श्री वियोगीहरिजी* ने लिखा है—"संसार में आज हर चीज़ का बड़ी बारीकी से विश्लेषण हो रहा है। विश्लेषण की कसौटी पर जो चीज़ खरी नहीं उतरती उसे अपनाने क्या, छूने तक में दुनिया अब आना-कानी करने लगी है।" वर्तमान युग की यह व्याख्या बावन तोले पाव रत्ती सही है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी सत्यता स्पष्ट दिखाई दे रही है। बुन्देलखंड-प्रान्त-निर्माण की माँग का विश्लेषण इसलिये कोई आश्चर्य की बात नहीं है और जब तक प्रान्त बन नहीं जाता तब तक विश्लेषण निरन्तर होता ही रहेगा। बात कुल इतनी है कि अंग्रेज़ सरकार ने अपने शासन की सुविधा की दृष्टि से अथवा अन्य कारणों से इस प्रान्त का जो बेतुका बटवारा कर डाला है (कुछ भाग यू० पी० में और कुछ सी० पी० में ज़बरदस्ती सम्मिलित कर दिये हैं), वह उचित नहीं है। अतः भाषा और संस्कृति के आधार पर उसका पुनर्निर्माण होना चाहिए, अर्थात् उतनी परिधि के भूखंड को, जहाँ के अधिवासी बुन्देलखण्डी भाषा बोलते हैं, जहाँ का खान-पान, रहन-सहन, तीज-त्योहार, देवी-देवता, मेले समान रूप से बुन्देलखण्डी हैं, उसे 'बुन्देलखण्ड' नाम का प्रान्त बना देना चाहिए।

---

* वह स्वयं प्रान्त-निर्माण के विषय में शंकाशील हैं—सम्पादक।

पक्ष में तर्क—

इस बात का समर्थन करते हुए कुछ लोगों का कहना है कि अपने भाइयों से बिछुड़ जाने के कारण हमारी शक्ति क्षीण होगई है। हम लोग असंगठित होगये हैं। जिस भूमि ने अनेकों ख्यातनामा कवियों, लेखकों तथा ऐतिहासिक प्रसिद्धि के वीर पुरुषों को जन्म दिया है, जिसमें बेतवा, धसान, टोंस, केन आदि सरिताएं प्रवाहित होती हैं, जहाँ हीरा-पन्ना जैसे अनमोल रत्नों की खानें हैं, खजुराहो, कालिञ्जर, देवगढ़, चंदेरी जैसे महत्त्वपूर्ण स्थान हैं, जहाँ के सघन बनों में किसी समय हाथी पाये जाते थे × (शेर, चीते, तेंदुए, आदि वन्य-जन्तु आज भी पाये जाते हैं) तथा जहाँ के 'चित्रकूट'-तीर्थ में मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कुछ दिनों निवास किया था, उस पावन और शस्यश्यामला भूमि के गौरव को ही हम भूल गये हैं। हमारे प्रान्त का पुनर्सङ्गठन होना ही चाहिए, जिससे अपने प्राचीन वैभव को हम पुनः प्राप्त कर सकें और यहाँ के लुप्त उद्योग-धंधों को पुनर्जीवन प्रदान करके यहाँ के निवासियों की आर्थिक दशा को सुधार सकें। प्रान्त के पुनर्निर्माण में प्रान्त और देश दोनों ही का हित है। प्रान्त संगठित होगा तो देश को स्वतः ही बल प्राप्त होगा; क्योंकि प्रान्त देश ही का अंग है। समूचे शरीर को बलिष्ठ बनाने के लिए उसके अंग-प्रत्यंग को मज़बूत बनाना आवश्यक होता है।

विपक्ष में—

लेकिन कुछ महानुभाव प्रान्त-निर्माण की समस्या को आशंका की दृष्टि से देखते हैं। उनका कहना है कि ऐसे समय में जब कि चारों ओर से देश की अखंडता का नारा उठ रहा है, भारत के टुकड़े करना देश के साथ विश्वासघात करना है। आज जब चारों ओर से देश पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं, तब बँटवारे की माँग न्यायोचित कैसे हो सकती है? यह तो बल्कि पाकिस्तान जैसी माँग खड़ी करना है।

कतिपय सज्जनों का यह भी विचार है कि यह सब श्रीमान् ओरछेश की चाल है। बात असल यह है कि वह सारे बुन्देलखण्ड को हड़प लेना चाहते हैं।

एक साहित्यसेवी तो इतना तक कह गये हैं कि जिस भाषा और संस्कृति को लेकर बुन्देलखण्ड को पृथक् प्रान्त बनाने का आन्दोलन किया जा रहा है, वह वस्तुतः ब्रज की भाषा और संस्कृति है।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और लेखक श्री सियारामशरण जी गुप्त ने घोर विरोध करते हुए लिखा है—"मैं यह पसंद न करूँगा कि इस भूमि-भाग का नाम 'बुन्देलस्तान' या इससे मिलता-जुलता रहे। सामन्तशाही के सम्मान की विधि मेरी, कम-से-कम मेरी, रुचि की नहीं है।"

एक ज़िम्मेदार कांग्रेसी कार्यकर्ता का कहना है कि यह माँग एकदम असामयिक है। देश जब स्वतंत्र हो जायगा तब कहने भर की देर होगी और प्रान्त बन जायगा।

विपक्ष में और भी बहुत सी बातें कही गई हैं और उनके यथोचित उत्तर भी दे दिये गये हैं, लेकिन इतना तो सबको स्वीकार करना ही होगा कि यदि यहाँ की जनता को संगठित न किया गया तो कहने भर से भले ही प्रान्त बन जाय, उसका मूल्य कुछ भी नहीं होगा। कहावत है 'First deserve then desire' अर्थात् 'जिस वस्तु को पाना चाहते हो पहले उसके योग्य तो बनो, तत्पश्चात् उसकी इच्छा करो।' हमारा विश्वास है कि बिना कठोर साधना किये यहाँ की जनता उस भारी ज़िम्मेदारी के योग्य नहीं बनेगी।

आन्दोलन का राजनैतिक रूप—

वास्तव में प्रान्त-निर्माण की समस्या अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। उसे क्रियात्मक रूप देने से पूर्व उसके पक्ष-विपक्ष में भली प्रकार विचार कर लेना चाहिये। 'जल्दबाज़ी से काम लो और बाद में पछताओ'—वाली कहावत को चरितार्थ करने से कोई लाभ नहीं होगा।

× 'बाबरनामा' में काल्पी के निकटस्थ जंगलों में हाथी पाये जाने का वृत्तान्त है।

यद्यपि इस समस्या का श्रीगणेश साहित्यिक और सांस्कृतिक आधार पर किया गया है, लेकिन इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि ज्यों-ज्यों इस आन्दोलन की प्रगति होगी, वह राजनैतिक रूप धारण कर लेगा, क्योंकि बुन्देलखण्ड को पृथक् प्रान्त बनाने के लिये यू० पी० और सी० पी० के वर्तमान रूप को बदलना होगा। उदाहरण के लिये झाँसी आज युक्त-प्रान्त में है, सागर सी० पी० में उन्हें यदि बुन्देलखण्ड के नवीन प्रान्त में सम्मिलित किया जायगा तो सरकार को अपनी मौजूदा शासन-व्यवस्था में हेरफेर करना होगा। यही हाल अन्य स्थानों का होगा, जो सी० पी० या यू० पी० से संबद्ध हैं। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। वह यह कि वर्तमान शासन-प्रणाली के अक्षुण्ण बने रहते प्रान्त का निर्माण हो नहीं सकता; क्योंकि बारह लाख वर्गमील के इस भूखंड पर आज तेतीस शासक राज्य कर रहे हैं, जिनकी भिन्न-भिन्न शासन-प्रणालियाँ हैं। उनके ज्यों-के-त्यों बने रहने पर यहाँ की स्थिति भी जैसी-की-तैसी बनी रहेगी।

प्रान्त का पुनर्निर्माण होना ही चाहिए :—

निस्संदेह प्रान्त का पुनर्निर्माण होना ही चाहिए। बुन्देलखण्ड आज छोटी-बड़ी तेतीस रियासतों और जागीरों में बँटा हुआ है और उसकी हालत बहुत ही असंतोष-जनक है। जनता असंगठित और अशिक्षित है। गरीबी इतनी है कि पेट भरने के लाले पड़े रहते हैं। भोजन है तो कपड़ा नहीं, कपड़ा है तो भोजन नहीं। बारह लाख की आबादी के लिए स्कूलों और अस्पतालों की संख्या इनी-गिनी है। उद्योग-धंधों का नामो-निशान नहीं। प्रान्त भर को (परोक्षरूप से देश भर को) जीवन प्रदान करने वाले वन तेज़ी से नष्ट हो रहे हैं। नदियों और जलाशयों की भरमार होते हुए भी यहाँ की जनता सिंचाई करने के लिए पानी के वास्ते तरसती है। ज़रा अंदाज़ लगाइए, अकेले ओरछा-राज्य में छोटे-बड़े मिला कर नौ सौ के क़रीब तालाब हैं, फिर भी सिंचाई की कठिनाई बनी ही रहती है। क्यों? इसलिये कि जल को संचित करने की यथोचित व्यवस्था नहीं। ओरछा-राज्य में साढ़े तीन लाख महुए के पेड़ हैं। उनसे अनेकों प्रकार के साबुनादि के उद्योग-धंधे चल सकते हैं, पर गुली निरन्तर बाहर चली जा रही है और यहाँ के निवासी साबुन के लिए तरसते हैं।

ग़रीबी ने यहाँ की जनता की कमर तोड़ डाली है। यहाँ का मज़दूर ढाई तीन आना रोज़ पाता है। वह भी गारंटी नहीं कि प्रतिदिन उसे काम मिल ही जायगा। बताइये, तीन आने में क्या तो वह स्वयं खाये और क्या अपने घरवालों को खिलाये।

चैत के महीने में यहाँ के हज़ारों मज़दूर अपने घरबार गाड़ियों पर लाद कर मालवा-प्रदेश की यात्रा करते हैं। इसलिये कि वहाँ उन्हें थोड़े-से गेहूँ मिल जाते हैं और उनके कुछ दिन कट जाते हैं।

ओरछा-राज्य में भूमि का केवल सातवां भाग खेतीबारी के काम में आता है। खेती का विस्तार हो सकता है, लेकिन हो कैसे? चाहे प्रमाद या आलस्य के कारण हो, चाहे अव्यवस्था की वजह से, लोगों की इच्छा-शक्ति इतनी क्षीण हो गई है, उनमें इतनी काहिली आगई है कि महुआ और कोदों खाकर यहाँ की अधिकाँश जनता को संतोष हो जाता है। हाथ-पैर चलते ही नहीं। उस दिन एक मज़दूर कह रहा था कि आप काम करने के लिए कहते तो हैं लेकिन लग कर हम काम करें तो करें कैसे! कुल साढ़े तीन रुपये महीने में मिलते हैं। देह कुछ खायगी नहीं तो चलेगी कैसे? बात बिलकुल ठीक थी। शरीर के दुर्बल होने से उन्हें अनेक रोग घेरे रहते हैं। इससे उनकी बची-खुची शक्ति भी नष्ट हो जाती है।

आदमियों का जब यह हाल है तब पशुओं का तो कहना ही क्या। आध पाव दूध देने वाली गायें और आध सेर दूध की भैंसें मैंने यहीं आकर देखी हैं। पड़ोस में एक आदमी सौ के करीब

गायें रख रहा है, पर एक साथ चार सेर दूध देने में उसे दिक्कत हो जाती है। इस स्थान से नौ मील की दूरी पर महरौनी में बढ़िया नस्ल का साँड केवल बाईस रुपये में मिल जाता है, लेकिन उसे लावे कौन ?

टीकमगढ़ में किसी समय में कोरियों के दो सौ घर थे। आज मुश्किल से दस-बीस मिलेंगे। यही दशा अन्य राज्यों की भी है।

इस सबका कारण क्या है? इस सब के लिये कौन जिम्मेदार है? कहना न होगा कि इस सब का उत्तरदायित्व यहाँ के शासन पर है और जनता पर भी। राजे-महाराजे और जागीरदार यदि अपनी जनता के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें तो कोई कारण नहीं कि जनता की दशा में सुधार न हो। और जनता भी यदि संगठित होकर दृढ़तापूर्वक अपनी माँग पेश करे तो उसकी पूर्ति होकर ही रहेगी। हम मानते हैं, शासकों की भी कठिनाइयाँ हैं। आमदनी घट जाने पर भी उन्हें अपनी प्राचीन परम्पराओं को कायम रखना पड़ता है और फिर उनके हाथ भी बँधे हुए हैं। लेकिन इससे जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व से वे बरी तो नहीं हो सकते।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, इस दुर्भाग्य में जनता का भी कम दोष नहीं है। वह असंगठित है। इसी से अनाचार की शिकार होती है। यदि वह शक्तिशाली हो, उसमें पारस्परिक एकता के भाव हों, एक-दूसरे के साथ कंधे-से-कंधा मिला कर चलने की प्रवृत्ति हो तो किसी की क्या मजाल कि उस पर मनमानी कर सके।

इन सब कठिनाइयों को दूर करने का एकमात्र उपाय है प्रान्त का पुनर्निर्माण। अपना घर ही जब अपने लिये पराया हो तो उसकी उन्नति के लिये कोई क्या कर सकता है? यहाँ के निवासी आज इतना तक नहीं जानते कि उनका प्रान्त है कहाँ। श्रीमान् ओरछेश ने ठीक ही कहा है—"हम अपने को बुन्देलखण्डी तो कहते हैं, परन्तु जब कोई पूछता है कि तुम्हारा बुन्देलखण्ड है कहाँ तो हम नहीं बता सकते, लाजवाब हो जाते हैं। हमारा बुन्देलखण्ड है, हम बुन्देलखण्डी हैं, किन्तु बुन्देलखण्ड नहीं है।"

संक्षेप में हम कह सकते हैं प्रान्त क पुनर्सङ्गठन इन कारणों से आवश्यक है—

१—यहाँ के क्षुद्र मानव को ऊँचा उठाने और दुर्बल को सबल बनाने के लिए,

२—जनता को संगठित करने के लिए,

३—यहाँ के उद्योग धंधों को पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए,

४—यहाँ की जनता की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी स्थिति सुधारने के लिए, और

५—प्रान्त के उपलब्ध साधनों का पूर्णरूपेण उपयोग करने के लिए।

युक्त-प्रान्त का निवासी होने के कारण यहाँ की स्थिति का युक्त-प्रान्त से तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् मैं निस्संकोच भाव से कह सकता हूँ कि यहाँ की जनता वहाँ की जनता की अपेक्षा कम-से-कम चालीस-पचास वर्ष पिछड़ी हुई है। उसका उद्धार केवल उसके संगठित होने से ही हो सकता है।

आंध्र का उदाहरण—

आज से तीस वर्ष पहले जब आंध्र के निवासियों ने अपना पृथक् प्रान्त बनाने का आन्दोलन किया था तो विरोध करने वाले सज्जनों ने उसके विपक्ष में ठीक वही दलीलें पेश की थीं, जो आज यहाँ दी जा रही हैं। हर्ष की बात है कि कांग्रेस ने आंध्रवालों की माँग को स्वीकार कर लिया है और निकट भविष्य में ही उनका पृथक् प्रान्त बन जायगा।

फिर भी विपक्षियों की नीयत पर हमें संदेह नहीं करना चाहिए। देश के हित में उन्हें यह चीज अनावश्यक प्रतीत होती है, या असामयिक जान पड़ती है तो कोई बात नहीं। उनके विरोध का एक कारण यह भी तो हो सकता है कि प्रान्त-निर्माण की स्पष्ट योजना अभी उनके सामने नहीं आई है। उसके अभाव में लोग तरह-तरह की आशंकाएं करते हैं तो स्वाभाविक ही है।

दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न—

प्रान्त-निर्माण के सम्बन्ध में यदि दो प्रश्न स्पष्ट हो जायँ तो बहुत से लोगों का भ्रम सहज ही दूर हो सकता है :—

१—बुन्देलखण्ड की वर्तमान सीमाएँ क्या हैं ? प्राचीन काल में बुन्देलखण्ड की सीमा राज्यों के आधार पर घटती-बढ़ती रही है। महाराज छत्रशाल के समय में इस प्रान्त की हदबन्दी—

'इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।'

कह कर निर्धारित की गई थी। लेकिन बाद के राजाओं के राज्यों की सीमा उतनी नहीं रही। एक और इतिहास-लेखक ने बुन्देलखण्ड की सीमा इस प्रकार दी है—

"भारत के मध्य-भाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि-सौंदर्याकुलंत जो प्रदेश है, उसे 'बुन्देलखण्ड' कहते हैं।"*

इसके अतिरिक्त ऐसा भी उल्लेख है कि "प्राचीन काल में ओरछा राज्य का विस्तार उत्तर में जमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक और पश्चिम में चम्बल से पूर्व में टौंस तक था।"+

इस प्रान्त के नाम भी समय-समय पर बदलते रहे हैं। कभी उसे 'दशार्ण' कहके पुकारा गया है तो कभी 'जैजाकभुक्ति' कह कर, कभी 'जुझौती' तो कभी 'जुझारखण्ड' चीनी-यात्री हुनसांग ने अपने यात्रा-वर्णन में इस प्रान्त का 'जुझौति' नाम से उल्लेख किया है। महाराज पंचम के वंशज विन्ध्येलखण्ड के निवासी होने के कारण आगे चल कर 'विन्ध्येले' या 'बुन्देले' कहलाये। इस प्रकार विन्ध्येलखण्ड ही बुन्देलखण्ड का मूलरूप है।

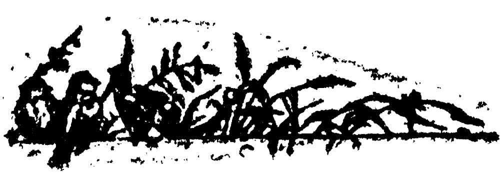
सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि बुन्देलखण्ड की सीमा निश्चित करके उसका प्रस्तावित नक्शा तैयार कराया जाय, जिससे यहाँ के निवासियों के समक्ष एक निगाह डालते ही प्रान्त की हद स्पष्ट हो जाय। यह नक्शा अंतिम तो हो नहीं सकता, क्योंकि प्रान्त का अंतिम रूप तो आगे चल कर तय होगा।

२—दूसरा प्रश्न यह है कि प्रान्त बनेगा तो उसका राजनैतिक रूप क्या होगा ? यदि वर्तमान समय की शासन-प्रणालियाँ नष्ट होती हैं तो उनके स्थान पर क्या व्यवस्था होगी ? कहा जा सकता है कि इसका निर्णय स्वयं जनता करेगी; लेकिन आन्दोलन का सूत्रपात करने वालों के सामने भी तो उसका कुछ-न-कुछ रूप होना ही चाहिये। उसका स्पष्टीकरण होने से विरोध बहुत-कुछ शान्त हो जायगा और तब यह समझते देर न लगेगी कि प्रान्त-निर्माण किसी व्यक्ति-विशेष की महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये नहीं है, बल्कि ७०—८० लाख मानवों की उन्नति के लिए है, उनके उद्धार के लिए, और है उनके द्वारा अखण्ड भारत की यथेष्ट सेवा के लिए।

कुण्डेश्वर टीकमगढ़,
(बुन्देलखण्ड)

* देखिये श्री गोरेलाल तिवारी-कृत 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ १।

+ देखिये 'भूगोल' का देशी राज्य-अंक' पृष्ठ ७१।



बुन्देलखण्डी कहानी— ठेठ बुन्देलखण्डी में

जाँनपाँड़े

श्री शिवसहाय चतुर्वेदी

कौनऊं गाँव में एक कोरी रत तो। ऊकें भोंदू नाव को एकई लरका हतो। अकेलो तो आय, मताई बाप खों भौतऊ प्यारो हतो। एक दिना कोरन ने कोरी सें कई, "अरे, सुनत हो। तुमसे आज एक गों की बात कत। भैया कौ व्याव अबई हलके में कर डारो। ई देह कौ का ठिकानो। न जाने कबै का हो जाय। आज की तौ काल नई पाई।" कोरी ने ऊतर दओ, "ऐसी का उलात परी। कऊं की नौनी नतैती तौ आउन दे। कर लैबी।" कोरन बोली, "चाय तुम ई कान सुनों चाय ऊ कान, इतै के भान चाय उतै ऊँग जाँय, हम तौ एई सालें अपने मोंड़ा की चाई मांई पारे बिना न रें।"

भोंदू कौ व्याव हो गओ। भगवान की मरजी। व्याव के कछू दिना पाछें कोरी मर गओ। लरका कौ चौक-दुसरतौ कछू न हो पाओ। अब मताई बेटा रेगए। बखत जातन कछू देर नई लगत। कछू बरसन में लरका स्यानौ दिखान लगो। एक दिना मताई ने भोंदू से कई, "बेटा, अब तैं स्यानो भओ, अब का ऐसई फिरत रै। बऊ खों लुवा ल्या।" सरम के मारें लरका मौंग रओ।

एक दिना एक गैलारे ने खबर दई के भोंदू के ससुर भौतई बीमार हैं। सुनकें मताई मनई-मन गुनन लगी कि अब तौ भोंदू खों पिपरिया जानई परें। पीर-पिराते में नतैत-नतैत की खबर न ले तो चार जनें का कें। मताई ने तुरतई लरका खों बुलाकें कई, 'पिपरिया सें खबर आई है कि तुमाये ससुर बीमार हैं। जाकें मातेजू की खबर ले आओ और पौनई कर आओ। जौ तुम ऐसे बखत पै न जैओ तो चार जनें नांव धरें। मैं आज रात कें कलेऊ बना धरों। मियाने बड़े भुनसारे उठकें चले जइओ।"

भोंदू ने कई, "न कभंऊ हम पौनई खों गय ओ ना हमाई गैल जानी फिर जांय तो कैसें, कौं ठेरें, की सें पूंछें?"

मताई बोली, "बेटा, पिपरिया खों तो तकुआ सी सूदी गैल लगी है। कोऊ सें न पूछनें आय। और फिर कौन पल्लो है। बड़े भोर तें निगे अथय लों जरूरई पौंच जैओ। उतै सियात है जे ना पौंच पाये तो जौं दिन बूड़ जाय भई बस रये। दूसरे दिना कौरे दुपर लौं तो पौंचई जैओ। बेटा, अब की नांई न करो। करौं बीउ करकें चले जाओ।"

मताई के समझाँय-बुझाँय लरका राजी हो गओ। दूसरे दिना भौंदू भुन्सारे बड़े तड़के उठकें तैयारी करन लगो। छाटी की ऊजरी फक परदनियां और मिरजाई पैरी, तैल डारो, ककई काढ़ के बार ऊँछे, आँखन में सुरमा लगाओ, एक बटुआ में पान तमाखू और चकमक धरी, दुपल्लियाऊ करिया उन्ना की टोपी लगाई, हाथ में कान बरोबर ऊंची लटिया लई, गोड़न में अच्छी चरटिदार झब्बियाऊं पनइयाँ पैरीं, फिर मताई के पाँव पर के समरार की पौनई खों निग ठाँड़ो भओ।

दिन भर चलत-चलत दिन डूबबे की बिरियाँ ऊए पल्ले एक गाँव दिखानो। भौंदू ने एक गैलारे से पूंछी "भैया, जो कौन गाँव दिखात? इतै से कित्ती दूर हुइये?"

गैलारे ने कई, "पिपरिया आय। चले जाओ तनकई दूर है।"

भौंदू आगें चलो तौ का देखत है कि गैल के लिंगा एक खेत में चार पाँच उजरा गदा चर रयेते। भौंदू ने सोची, "ससरार कौ गाँव आय। इतै कछू हाँसी सोऊ करौं चंये।" भौंदू ने उन सब गदन खौं उतई बार गाँव बनी खेर

माता की मढ़िया में पैंड़ दये और किवरिया हन दई। इतनौ ओटपाऔ करकैं भौंदू आगैं बड़े। घरन के लिंगा पौंचत-पौंचत लौलइयाँ लग गईं। भौंदू ने सोची मताई ने कईती कि जितै दिन बूड़ जाय उतईं बस रइऔ, रात कें आगे न जइऔ। एइसे एक घर के पछीतै रुख के नैंचे चौतरा पै डेरा जमा दऔ। संजोग सें जौन घर के पछीतै भौंदू ने डेरा जमाव तौ वौइ ऊकी ससरार कौ कढ़ो। भौंदू ने चौतरा पै परें-परें सुनीं, काऊ ने अपनी मताई से पूछी, "बऊ, ब्यारी से दो रोटी और तनक सी भाजी बची है। काँ घर दऊँ?"

मताई बोली, "केले तरें ढाँक दे, बिन्नू।"

दूसरे दिना सौकारुं भौंदू ने उठकें हाथ मौं धोऔ, बटुआ खोल कें ककई निकारी, बार ऊंछे आरसी में मौं देखो और बन ठन के पूँछत-ताछत ससरारै जा पौंचो। पाउनन खौं देख कें सास-सुसर सबखौं बड़ी खुशी भई। दोऊ तरफ की खबर-दबर पूँछी गई। भेंट कुंवारें भई। माते जू ने कई, "पाँउने, मैंने तो बड़ी पटक खाई। तुमारे सबके पुन्न-परताप सें अब उठके ठाड़ौ हो गओ हों। दुबरई सो है। हौलें-हौलें जा सोऊ दूर हौजै।"

पाउनन की अवाई सुनकें चार जने लोग लुगाई पुरा परोस की जुर आईं। इतै-उतै की बातचीत होन लगीं। मौका देख कें भौंदू ने कई, "हम बतावें मातेन जू तुमारें काल रात कें का बनो तौ?"

मातेन ने कई, "हाँ पाँउने, बताऔ।"

भौंदू बोलौ, "काल रात कें तुमारे घरें भाजी-रोटी बनी ती और खात-पियत सें दो रोटी और तनक सी भाजी बच रई ती। कओ सांची आय?"

पाउनन की बात सुनकें सबखौं बड़ो अचरज मालूम भओ। पाउनन ने जा बात कैसे जान लई? एक ने कई, "पाउने जांनपाँड़े हैं। जोतिस पढ़े हैं।" जा खबर मौंईमौं सबरे गाँव में फैल गई, "फलाने कोरी के दमाद आये हैं। बड़े जांनपांड़े हैं। जोतकियन के कान काटत हैं। जो कछू पूंछौ ऐसे बता देत जैसे उनकी आंखन देखी होय।"

जा खबर ऊ धोबी ने सुनी जी के गदा हिराने ते। तुरतई ऊ ने भौंदू के लिंगा जाकें हात जोर कें कई, पाउने मोरे चार गदा काल सें हिराने हैं। दूर-दूर नौ ढूंढ़ आऔ, पै कछू पतौ नई लगत। आप सगुन विचार देखो तौ बड़ी किरपा होय।"

भौंदू ने थोरी देर आंखें मीचें कें ऊतर दऔ "अबई पूरब दिसा खौं चले जाऔ। परबस हैं। गाँव के बायरें कौनऊं घर में छिके हैं।"

धोबी खौं देवी की मढ़िया में गदा मिल गये। अब तौ सब जनन खौं पूरी-पूरी खातरी हो गई कि कोरी को दमादसौं चऊं बड़ो जोतकी है। जौन बातें बड़े-बड़े पंडत नईं बता सकत उन बातन खौं कोरी कौ दमाद चुटकियन में बता देत।

औई दिना ऐसौ संजोग जुरौ कि राजा की बेटी कौ नौलखा हार चोरी चलौ गऔ। खूब पतौ लगाऔ, पै कछू सुराग न चलौ। एक आदमी ने राजा सें कई, "सरकार, फलाने कोरी कौ दमाद इतै पौनई खौं आऔ है। सुनत हैं बो बड़ौ जनवा है। ऊखौं बुलाओ जाय तौ सियात चोरी कौ पतौ चल जाय।"

दूसरौ कन लगौ, ईनें ठीक कई सरकार! बो तौ गजब करत। इतनी बड़ी उमर होगई ऐसौ जनवा तौ नई देखौ। की के घर में कित्ती रोटी हैं, की के घर के कित्तौ गानौ गुरिया है, की के ढिंगा कौन-कौन छाप के कित्ते रुपैया-पैसा हैं, सब ऐसे बता देत जैसे ऊने अपने हातन गिन कें धर दय होंय। का मजाल जो फरक पर जाय। ऊखौं जरूर बुलाऔ जाय। बो चोर खौं हाथ पकर कें बतादे।"

इतै भौंदू धमौरी में बैठे तमाखू पी रय ते के राजा कौ सिपाई पौंचौ। कन लगो, "चलौ, तुमें राजा साब बुलाउत हैं। महलन में चोरी हो गई

है। सियात बिचारने हैं। कां माल है? कौन ने चोरी करी?"

भौंदू घबरा गम्रो। सोचन लगौ, "रोटिन कौ और गदन कौ हाल तौ मालूम हतौ सो झट्ट बता दम्रौ। अब का करें? ई चोरी को पतौ कैसें बताय? अब फजियत भई। ई में सक नइयाँ।

सिपाई बोलो, "चलत काय नैयां? उलायतें चलौ, नातर राजा साब नाराज़ हुइयें।"

सास ने कई, "पाउनें, चले जाम्रौ। सकुचत काय खौं हो? तुमाम्रौ इलम तौ परतच्छ है। ऐसई बड़ी जौंगा तौ करतब दिखाम्रौ जात।"

भौंदू का करें, का न करें कछू निःचै न कर सकौ। हरबड़ा कें उठ ठाड़ौ भम्रौ और सिपाई के संगे उपनम्रौ हो लम्रो। कचैरी में पौंच कें राम-राम भई। राजा ने म्रादर सें बिठार पूंछी, "बेटी कौ नौलखा हार चोरी गम्रौ है। बताम्रौ माल ई बेरा कां है? और चोरी की नें करी है?"

भौंदू ने कई, "मैं जोतिस-मोतिस का जानौं सरकार! जौ तौ पंडितन कौ काम म्राय। ऊसई दो-एक बातें बता दई तीं सो लोगन ने झूटौ हल्ला उड़ा दम्रौ।"

राजा बोले, "नई मैमान, हमने सब सुनी है। तुम पक्के जांनपांडे हो। सब बता सकत। जौ तुम चोरी कौ ठीक-ठीक पतौ बता देम्रौ तौ मों मांगी इनाम मिलै। और जौ न बता पैम्रौ तौ तुमारी घींच काट लई जै। जान गये।"

भौंदू ने कछू सोच कें कई, "सरकार, म्राज सियात म्रच्छी नैयां। भियाने भुन्सारे की जोर म्राकें बता जैम्रौं।"

भौंदू ऐसी कैकें म्रपनी जान बचा कें डेरा पै लौट म्राम्रो। म्राज न पाउनन खौं खावौ सुहानौ न पीवौ। मनई मन सोचन लगे, देखौ भियाने का गत होत। प्रान रात के जात? सास ने ब्यारी की कई तौ कै दई के म्राज भूक नईं लगी। खटिया पै उन्ना डार कें पर रये। पै नींद काय खौं म्राउन लगी। म्रादी रात हो गई। परें परें सांसे लै लै कन लगौ, "म्रा जा री निंदिया तेरी भोर कटै घिचिया। म्रा जा री निंदिया तेरी भोर कटै घिचिया।"

इतै निंदिया नाँउ की एक खवासन हती। ऊनें राजा की बेटी खौं सपराती बेरां नौलखा हार चुरा कें सपरना में एक पथरा के नेंचे लुका दम्रौ तौ। जब ऊनें कोरी के दमाद की बड़ाई सुनी और ऊखौं मालूम परी कै राजा ने ऊखौ (दमाद) बुलाम्रौ है, तब तौ निंदिया के पिरान सटक गये। सोचन लगी, "म्रब बिना मौत की मरी।" फिर मन खौं लौटाम्रो। बिचारन लगी, "म्रपनी बचत कौ कछू उपाय करो चाइयें। कोरी के दमाद खौं कछू लांचघौंच देकें मना लैंय चाइयें। सुनी है वो पछीत के उसारे कें ठैरौ है। ऐन सूनर है। म्रादी रात कें जैम्रौं।"

जब म्रादी रात भई। निंदिया दबे पांव कोरी के दमाद के डेरा पै पौंची। भौंदू इतै उतै करोंटा बदलत कै रम्रो तौ, "म्रा जा री निंदिया, तोरी भोर कटै घिचिया। म्रा जा री निंदिया तोरी भोर कटै घिचिया।" जा सुनकें निंदिया के चुटिये प्रान पौंचे। मन में सोची, "काय न होय म्राखिर जनवा तो ठैरे! देखौ, कैंसे मोरो नाव लौ जान गम्रौ।" निंदिया जाकें भौंदू के पावन पै गिर कें कन लगी, "पाउनें, म्रब तुमारई सरन हौं। चांय फांसी टँगवाम्रौ, चांय बचाव, तुमसे का लुको-छिपो है। हार तौ मैंने चुराम्रौ है। सपरना में पथरा के नेंचे धरो है। म्राप तौ सब जानत हौ। कसूर सबई सें बन जात, पै म्रपने खौं मार कैं छायरें में डारो जात? तुमतौ हमारे गांव के नन्देऊ हौ। मैं तुमाई सारज हौं। मोरो कसूर तौ लाला माफ करनई परै। मोरो नांव न काढ़ियौ लाला। इत्ती बिन्ती है।"

निंदिया की बातें सुनकें भौंदू के जी में जी म्राम्रो। सोची, "चलो, पतौ चल गम्रौ। प्रान बचे।" फिर निंदिया सें कई, "तैं काय खौं म्राई, जा मैं सब जानत हौं, तैं ससरार की खवासन म्राय, तो खौं थोरई फंसेऊं। जा बेखटके सो रय।" निंदिया चली गई। भौंदू सोउ चैन से सो रये।

दूसरे दिन बड़े सोकार सिपाई फिर पौंचो और भौंदू से कन लगौ, "चलौ, बुलऊआ है।"

भौंदू ने अकड़ कें ऊतर दओ। "तुमार राजा के का हम चाकर थोरई आंय! बेठौ, चलत हैं" इतनी के कैं भौंदू उठे। हात-मौं धोओ, पान खाव, बारन में तेल डारो, बदुआ से ककई निकार कैं बार संवारे। टोपी लगाई। आरसी में मौं देख कें चले। राजा की कचेरी में पौंचे। जातई खन बोले, "सरकार, आपखौं आमि खाने के पेड़े गिनने? मैं चोरी को माल तौ अबई बतायें देत, पे चोर को नांव न बताओं।"

राजा ने कई, "अच्छी बात जैसी तुम कओ माल मिली चाइयें।" भौंदू बोलो, "सपरना में पथरा के नैंचे हार धरो है, ऐसो लगत है। कोऊ सें दिखवाओ जाय।"

सपरना में जाकैं पथरा उठाओ गओ तो हार मिल गओ। राजा खौं ऐन खुशी भई। उनने खूब आदर करकैं भौत सो सोनो-चांदी, गैयां भैंसे, भौंदू खौं इनाम में दईं। भौंदू की लुगाई खौं अपनी लरकिनी मान कैं अच्छे-अच्छे रेसमी उन्ना, नग, जेवर पैराये और पालकी पै बैठारकैं बिदा करा दई। भौंदू लुगाई खौं लुवाकैं घरै आये। बऊ बेटा की जोरी देख कैं मताई ने असीस दई, "बेटा, तुम दोऊ जनें सुख सें रओ। दूदन भरो, पूतन फरो।"

देवरी }
(सागर) }

ब्रजभाषा में

जाँनपाँडे

अनु०—आदर्शकुमारी यशपाल

काऊ गाँव में एक कोरी रहतु ओ। बाकैं भोंदू नाम को एकुई छोरा ओ। इकिलौ हैबे के मारें बु महतारी-बापु कौ भौतुई लाड़िलौ ओ। एक दिना कोरियाँ ने कोरी सूँ कई—"ओ जी, सुन्तओ! तुमसूँ आजु मैं अपने मन की बात कहति ऊँ। अपने छोरा कौ ब्याउ अबै छुटपन में ई कद्देउ। जा देह कौ का ठिकानौ। का जानै कब का है जाइ! आजु खाइ कल्लि की खबरि नाँए!" कोरी बोलो, "ऐसी उलाइत का ऐ! कऊँ अच्छे घर सूँ बातचीत होन दै। कर लिंगे।" कोरियाँ बोली, "चाँय तुम जा कान सुनौ चाँय बा कान, इतै कौ सूज्जु चाँय उतै निकरै, मैं तो जा साल छोरा की भँमरियाँ डारैं बिना नाँइ मानुंगी।"

भोंदू कौ ब्याउ है गयौ। भगवान की मरजी, ब्या के कछू ई दिना बाद कोरी मरि गयौ। भोंदू को गौनो-रौनौ कछू न करि पायौ। अब मां-बेटा ई रह गए। दिन जात कछू देर नाँइ लगति। कछू ई दिनन में भोंदू स्यानौ है गयौ। एक दिना माँ ने भोंदू सूँ कई, "बेटा, अब तौ तू बड़ौ है गयौ ऐ। ऐसैं कब तक फित्तु रहैगो? बऊ कूँ लिबाइ ला।" सरम के मारैं भोंदू कछू न कह पायौ।

एक दिना एक गैलाऊ ने खबर दई कै भोंदू के ससुर भौतुई बीमार एं। सुनि कैं भोंदू की महतारी ने सोची कै अब तो छोरा कूँ पिपरिया जानौं ई चैंएं। हारी-बीमारी में नाते-रिस्तेदार खबर-सुधि न लिंगे तौ चार जने का किंगे। मां ने तुरतई भोंदू कूँ बुलाइ कैं कई, "बेटा, पिपरिया सूँ खबरि आई ऐ कै तेरे ससुर भौतु माँदी एं। तू जाइ कैं उनकूँ देखि आ और महैमानी ऊँ करि आ। ऐसेऊ बखत पै न जाइगो तौ चार जने नाम धरिंगे। मैं आज राति कूँ कलेऊ बनाइ कैं धरि दुँगी। तू सकारे उठतइ खैंन चलौ जेओ।"

भोंदू बोलो, "अम्मा, मैं तो घर सूँ बाहर कबऊँ गयौ नाँऊँ। गैलऊ मेरी देखी-भारी

नाँएँ। काँ ठैरूंगो, कौन सूँ पूछुंगो, कछू तो जान्तु नाऊँ। जाऊँ तो कैसैं जाऊँ ?"

मां बोली, "बेटा, पिपरिया की गेल तो बिरकुल्लि सूदी ऐ। बिना काऊ सूँ पूछैं-गछैं ई पौंचि जाइगो। भौताँए आं सूं निकरैगौ तौ संजा होत-होत पिपरिया पौंचि जाइगौ। जो कऊँ न पोंचि पायौ और गैल में ई दिन मुँदि गओ तो आं दिन मुँदे, मईं ठैरि जैओ और अगिले दिना सवेरैं ई उठि कैं चलि दैओ। दुरैर तक तौ पौंचि ई जाइगौ। बेटा, नाँईं मति करे। कर्यो जी करि कै चलो ई जा।"

महतारी के समुझाइबे पै बु राजी है गयौ। अगिले दिना भौंदू सवेरैंई उठि कैं तैयारी करिबे लग गयौ। बाने सपेद गजी की ऊजरी-सी धोती और अँगरखा पैरौ, मूँड़ में तेल डारौ और ककई सूँ बार काढ़े, आँखिन में सुरमा लगायौ। एक बटुआ में पान, तमाखू और चकमक पत्थर धरौ। चाँदि पै दुपल्ले की कारी परमटा की टोपी लगाई, हाथ में कान बरब्बर ऊँची लठिया लई, पाँइन में चर्रमर्र कौ जूता पैरौ और फिर माँ के पाँइ छूइ कैं म्हैमानी करिबे कूँ चल दौ।

दिन भर चलौ। चलत-चलत दिन मुंदैं बाइ दूर सूँ एक गाँम दीखौ। एक गैलारे सूँ बाने पूछी, "चौं भैया, जि कौन सौ गाँमु ऐ! आं सूँ कित्ती दूरि होइगौ ?"

गैलारे ने कई, "पिपरिया ऐ। चले जाओ नेकई दूरि ऐ।"

भौंदू अगारी चलौ तौ देखतु काऐ के रस्ता के पासई एक खेत में चार-पाँच गधा चर रए ऐं। भौंदू ने सोची कै सुसरारि कौ गाँम ऐ। आं कछू दिल्लगी करनी चैऐं। भौंदू ने उन सब गधन कूँ घेरि कैं एक देवी की मढ़ैया में करि कैं किवारैं बन्द कर दईं। जि औटपाय करि कराइ कैं भौंदू अगारी बढ़ौ। घर के पास पौंचत-पौंचत बाइ साँझ है गई। भौंदू ने सोची कै बाकी मां ने कई हती कै जाँ दिन मुँदि जाइ, मईं ठैरि जैओ। राति कूँ अगार मति जैओ। याई सूँ बाने एक घर के पिछवारें पेड़ के नीचे एक चौंतरा पै अपनौ अड्डो जमायौ। होनहार की बात कै बु घर निकरौ बाकी सुसरारि कौ। चौंतरा पै परैं-परैं बाने सुनी, काऊ नैं अपनी मां सूँ पूछी, "अम्मा ब्यारू सूँ द्वै रोटी और थोरौ-सौ सागु बचौ ऐ। काँ धर दऊँ ?"

मां ने कई, "पारे सूँ दाबि कैं धर दे, बेटी।"

दूसरे दिना भौंदू ने सबेरे ई उठि कैं हाथ म्हौं धोए। बटुआ खोलि कैं कंघी निकारी, बार काढ़े, सीसा में म्हौं देखौ और बनि-ठनि कैं ससुरारि जाइ पौंचौ। दमाद कूँ देखि कैं सास ससुर भौतुई खुस भये। दौनौं लंग की खबरि-सुधि पूछी, मिला-भेटी भई। ससुर बोलो, "लला, बीमारी ने अब कैं तो मोइ मारिई डारौ। बु तौ तुमारे पुन्न-परताप ए सो उठि कै ठाड़ो है गयौ। अब नेंकाद कमजोरी रह गई ऐ सो हौलैं-हौलैं दूरि है जाइगी।"

जमाई के आइबे की खबर सुन्तई पास-परौस के लौग-लुगाई जुरि आए और इत-उत की बातचीत हैबे लगीं। औसर देख कैं भौंदू बोलो, "मैं बताऊँ मां जी, कै तुमारे घर कल्लि राति कूँ का बनौ ओ ?"

सास ने कई, "हाँ लला, बताओ।"

भौंदू बोलो, "कल्लि राति तुमारे घर साग-रोटी बनी ई और खाइबे के पीछें द्वै रोटी और थोरौ-सौ सागु बचौ ओ। चौं, ठीक ऐ कै नाँय ?"

जमाई की जि बात सुन्तई सबकूँ बड़ौ अचरज भयौ। जमाई कूँ जा बात कौ पतौ कैसे लग गओ !

एक ने कई, "जमाई जाँनपाँड़े ऐं। जोतिस पढ़े ऐं।" एक म्हौं सूँ दूसरे और दूसरे सूँ तीसरे, ऐसैंई जि खबर सबरे गाम में फैलि गई कै फलाने के जमाई आए ऐं। वे अच्छे सगुनियाँ ऐं। जोतिसिन के ऊ कान काटत ऐं। कोई बात पूछौ तौ ऐसी बतावत ऐं, जैसैं उनकी आँखिन देखी होइ।"

जि खबरि बा धोबी ने ऊ सुनी जाके गधा खोइ गए ए। झट्ट ई बु भोंदू के ढिंग जाइ कैं हात बोरि कैं बोलौ, "महाराज, कल्लि सूँ मेरे चारि गधा खोइ गए ऐं। दूर-दूर तक ढूँढ़ि आयौ, कऊँ पतौ नाँइ लगौ। तुम सगुन बिचारि कैं देखि देउ तो बड़ी किरपा होइ।"

भोंदू योरी देर आँखें मीचि कैं बोलौ, "अबई हाल पूरब कैं चले जाऔ। तुमारे गधा परबस ऐं। गाँम बाहिर काऊ घर में बन्द ऐं।"

धोबी कूँ अपने गधा देवी की मढ़ैया में मिलि गए। फिरि का ओ! सबकूं पक्कौ भरोसौ है गयौ कै होइ न होइ, कोरी कौ जमाई साँचुई बड़ौ जोतिसी ऐ। जो बात बड़े-बड़े पंडितऊ नाँइ बताइ सकत, चुटकिनु में बताइ देतु ऐ।

होनहार की बात कै बाई दिना राजा की बेटी कौ नौलखा हार चोरी चलौ गयौ। खूब ई ढूँढ़ौ, पर कछू पतौ न चलौ। एक आदिमी ने राजा सूँ कई, "सरकार, फलाने कोरी कौ जमाई म्हैमानदारी कूँ आयौ ऐ। सुन्तएँ बड़ौ भारी जोतिसी ऐ। बाकूँ बुलायौ जाय, तौ सात चोरी कौ पतौ मिल जाय।"

दूसरौ बोलौ, "जि ठीक कैतुऐ सिरकार। बु तौ गजब करतुए। इतनौ बड़ो है गऔ, ऐसौ जोतिसी मैंने तौ देखौ नाँएं। किनके घर में कितनी रोटी एँ, किनके घर में कितने गहने ऐं और किनके पास कौन-कौन की छाप के कितने रुपैया-पैसा ऐं, सब ऐसें बताइ देतुऐ, जैसें बानें अपने ई हाथ सूँ गिनि कैं धरे हौंइ। का मजाल जो नैकऊ चूकि जाइ। बाकूँ तौ जरूर ई बुलवाऔ सरकार। चोर कौ हातु पकरि कैं बताइ देगौ।"

भोंदू घाम में बैठौ तमाखू पी रयौ ओ कै राजा को सिपाई पौंचौ और बोलौ, "चलौ, तुमैं राजा साब ने बुलायौ ऐ। म्हैल में चोरी है गई ऐ। साइत देखि कैं पतौ लगामनौ ऐ कै मालु काँएं और किन्नैं चोरी करी ऐ।"

भोंदू घबराइ गयौ। सोचन लगौ "रोटी और गधन कौ तौ हातु मोइ मालिम ओ सो बताइ दओ। अब का करूँ? जा चोरी कौ पतौ कैसे बताऊँ? अब तौ फजीतौ भये बिना न रहैगौ।"

सिपाई बोलौ, "चल्त चौं ना औ। बेगि चलौ, नईं तो राजा साब गुस्सा हुंगे।"

सास बोली, "लला, चले जाऔ सकुचत चौं औ? तुम्हारी बिद्या तो बड़ी खरी ऐ। ऐसी बड़ी जगै ई तौ अपनी चतुराई दिखाई जातिऐ।"

भोंदू का करै का न करै, कछू तै न करि पायौ। हड़बड़ाइ कैं उठि ठाड़ौ भयौ और सिपाई के पीछें-पीछें चल दयौ। कचैरी में पौंचि कैं राम-राम करी। राजा ने आवभगत सूँ बैठारो और पूछी, "बेटी कौ नौलखा हार चोरी चलौ गऔ ऐ। बताऔ कै जा बखत काँएँ और किन्नै चुरायौ ऐ।"

भोंदू बोलौ, "महाराज, मैं तौ जोतिस-फोतिस कछू नाँइ जान्तु। जि तौ पंडितनु कौ कामु ऐ। जो ईं द्वै-एक बात बताइ दईं सो लोगन नें झूट-मूँट कूँ हल्ला उड़ाइ दओ ऐ।"

राजा ने कई, "नाँइ जी, हम सब सुन चुके एँ कै तुम पूरे पंडित औ। सब बताइ सकत औ। जो तुम चोरी कौ ठीक-ठीक पतौ बताइ देउगे तौ म्हौं माँगौ इनामु मिलैगौ। न बताइ पाए तौ तुमारौ मूँड़ कटवाइ दुंगो। समझे?"

भोंदू (नैक सोचि कै) बोलौ, "सिरकार, आजु साइत अच्छी नाँए। कल्लि सबेरे आइ कैं बताइ दुंगो।"

जों कै कैं अपनी जान बचाइ भोंदू घर लौटि आयौ। आजु न तौ बाकूँ खाइबौ अच्छौ लगौ, न पीबौ। मन-ईं-मन सोचन लगौ कै सबेरें ईं का होइगो। पिरान बचिंगे कै जांगे। सासु ने खाइबे की कई तौ कै दई, "आजु भूक नाँइ लगी।" खाट पै बिस्तरा डारि कैं लौटि रऔ, पर नींद नईं आई। आधी राति है गई। परैं-परैं साँस लै कैं कहन लगौ, "आजा री निदिया, तेरी भोर कटैगी मुँड़िया।"*

* ब्रज में यह कहानी लगभग इसी रूप में प्रचलित है। अपने को सुलाने के लिये इसमें

राजा के ब्यां निदिया नाम की एक नाइन ई'। बाई ने राजा की बेटी कूँ न्हवावत में नौलखा हार चुराइ कैं गुसलखाने में पत्थर के नीचैं दुबकाइ कैं रक्खि दयौ ओ। जब बानैं कोरी के जमाई की बड़ाई सुनी और मालिम परी के राजा नैं बाकू बुलायौ ऐ तौ निंदिया के पिरान सूखि गए। सोचन लगी कै अब तौ बेमौति मरी। फिर मन कूँ संम्हारो, और लगी सोचिबे के जान बचाइबे की कछू-न-कछू तौ जुगति करनी ई चैऐं। कोरी के जमाई कूं कछू घूंस दे-दाइ कै मनाइ लैनो चैऐं। सुनी ऐ कै बु पिछवारे के उसारे में ठैरौ ऐ। आधी राति पै जब सन्नाटौ है जाइगो तब जाऊंगी।

जब आधी राति भई तौ निंदिया दबे पाँइन कोरी के जमाई के पास पौंची। भोंदू इत-उत कूँ करबट बदलि कैं कै रयौ ओ, "आइ जा री निंदिया, तेरी भोर कटैगी मुड़िया।"

जि सुनि कैं निंदिया के पिरान ई निकरि गये। मन में सोचन लगी, "चौं न होइ, आखिर जोतिसी जो ठैरौ! देखौ तौ मेरौ नामु ऊँ तौ जान लओ।" निंदिया जाइ कै भोंदू के पाइन पै गिरि कैन लगी, "महमान, अब तुमारी ई सरन ऊँ। चाओ तौ फाँसी पै लटकबाइ देऊ और चाओ बचाइ लेउ। तुमसूँ कछू छिपौ थोरेंई ए। हार तौ मैंने ई चुरायौ ऐ। गुसलखाने में पत्थर के नीचें धरौ ऐ। कसूर सबई पै बनि पत्तुए, पर अपने नु कूँ मारि थोरेंई डारौ जातुए। तुम तौ हमारे गाँम के नन्दोई औ। मैं तुमारी सरेज ऊँ। मेरौ कसूर तौ लाला साब, छिमा करनौ ई परैगौ। मेरौ नाम काऊ कूं मति बतैओ, इतनी ई बिन्ती कत्तिऊं।"

इस प्रकार आता है—"आइजारी नींदरिया, तेरी भोर कटैगी मूंबरिया।" उस कहानी में नाइन का नाम नींदरिया आता है। अनु०

निंदिया की बातैं सुनि कैं भोंदू के जी में जी आयौ। सोची, चलौ पतौ चलि गयौ पिरान तौ बचे। फिर निंदिया सूँ बोलौ, तुमैं आइबे की का जरूरति ई ! मैं तौ सब जान्तुओ। तुम सुसरारि की नाइनि औ तो तुमकूँ फसबाइ थोरोंई दुंगो। जाओ, चैन सूं सोओ।" निंदिया चली गई। भोंदू ऊ सोइ गयौ।

अगिले दिना सबेरैं ई सिपाई फिरि भोंदू कूं बुलाइबे आयौ और बासूं बोलो—"चलौ, बुलाओ ऐ।"

भोंदू अकड़ि कैं बोलौ, "तुम्हारे राजा के हम कछू नौकर थोरेंई ऐं! बैठौ, चलत ऐं।" ज्यों कै कैं भोंदू उठौ, हाथ-म्हौं धोयौ। पान खायौ। बारनु में तेल डारौ, बटुआ में सूँ कंगी निकारि कैं बार सँमारे, टोपी लगाई, सीसा में म्हौं देखौ और चल दयौ। राजा की कचेरी में पौंचौ। जातई खैंन बोलौ, "सरकार, तुमकूँ आम खाने ऐं कै पेड़ गिन्ने ? चोरी कौ मालु तौ अबैहाल बताऐं देतुऊँ, पर चोर कौ नाम नाँइ बताउँगो।"

राजा ने कई, "अच्छी बात ऐ। मालुई बताइ देउ। तुमारे कैबे सूँ चोर कूँ माफ करैं देतुऊं।" भोंदू बोलो, "ऐसौ लगतुऐ कै गुसलखाने में पत्थर के नीचैं हार धरौ ऐ। काऊ सूं दिखबाओ तौ।"

गुसलखाने में जाइ कैं पत्थर उठवायौ तौ हार मिलि गयौ। राजा कूं बड़ी खुसी भई। बाने खूब आदर करि कैं भोंदू कूँ भौत सौ सोनौ, चाँदी, गाइ-भैंसैं इनाम में दईं। भोंदू की बऊ कूं अपनी पेटी मानि कैं बढ़िया-बढ़िया रेसमी कपड़ा और गैने दए और पालिकी में बैठारि कैं बाकी बिदा करी। बऊ कूं लैकें भोंदू घर आयौ। बऊ-बेटा की जोड़ी देखि कैं मां ने असीस दई, "बेटा, तुम दोऊ जने सुख सूं रहौ। दूधन न्हाओ, पूतन फलौ।"

बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण

(साहित्यिक संस्थाओं का कर्तव्य)

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

प्रान्त-निर्माण की समस्या के तीन पहलू हैं—राजनैतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक। जहाँ तक राजनैतिक पहलू का सम्बन्ध है, मुझे कुछ भी कहने का अधिकार नहीं; क्योंकि राजनीति मेरा क्षेत्र नहीं है। वैसे भी उस विषय में भिन्न-भिन्न मत हो सकते हैं और उस विवाद में पड़ना मेरे बूते का काम नहीं। प्रान्त-निर्माण के राजनैतिक पहलू पर ऐसी अनधिकार चेष्टा मैं नहीं कर सकता उस पर राजनीति के विशेषज्ञों को ही क़लम चलानी चाहिए। हाँ, साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्य पर प्रत्येक नागरिक को कहने और लिखने का हक़ है और मेरी राय में वह है भी ऐसी चीज़ कि उस पर लगभग सभी प्रान्तवासी सहमत होंगे। कौन ऐसा होगा जो कहेगा कि साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से प्रान्त का पुनर्संङ्गठन आवश्यक नहीं है ?

बुन्देलखण्ड में तीस-पैंतीस उल्लेखनीय साहित्यिक संस्थाएं हैं। उन्हें इस पुण्य कार्य में भरसक सहयोग देना चाहिए। अपनी-अपनी कार्य-पद्धति के अनुसार वे आज भी साहित्यिक जाग्रति करने में संलग्न हैं। उनमें से कुछ की सेवाएं तो इस प्रान्त में ही नहीं, समूचे हिन्दी-साहित्य-जगत में गर्व और गौरव के साथ स्मरण की जाती हैं। उन्हें संजीदगी के साथ विचार करना चाहिए कि इस महान यज्ञ में वे क्या और कितना सहयोग दे सकती हैं। साथ ही उन्हें अपने को पूर्णतया संगठित करके और तत्परता से कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। ऐसे प्रदेश में, जहाँ शिक्षितों की संख्या नगण्य है, उनका उत्तरदायित्व बहुत कुछ बढ़ जाता है। प्रान्त में यदि वे शिक्षा और साहित्य का निरन्तर प्रचार और प्रसार करती रहीं और यहाँ के निवासियों के शिक्षा-सम्बन्धी धरातल को ऊँचा कर सकीं तो वह बड़े महत्व की चीज़ होगी।

ओरछा-राज्य की 'श्री-वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद्,' कालपी का 'हिन्दी-विद्यार्थी-सम्प्रदाय' तथा 'हिन्दी-साहित्य संघ,' झाँसी की 'हिन्दी-साहित्य-सभा,' 'बुन्देलखण्ड-कवि-परिषद्,' और कवि-मंडलकवि, दतिया का 'यशवंत-शंकरसमाज' मऊ रानीपुर की 'कवि परिषद्,' उरई जालौन और तालबेहट के साहित्य-संघ, पन्ना की 'छत्र-शाल-स्मारक-समिति' छतरपुर का 'सरस्वती-सदन' तथा अन्यान्य संस्थाओं को, जो अपने-अपने क्षेत्र में उत्साह के साथ कार्य कर रही हैं, चाहिए कि वे विचार करके देखें कि प्रान्त-निर्माण के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम में सहयोग देने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए। साथ ही प्रान्त की छोटी बड़ी सभी साहित्यिक संस्थाओं के कर्णधारों को बुन्देलखण्ड प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन में, जिसे झाँसी में करने का निश्चय किया गया है, सम्मिलित होकर इस समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। सम्मेलन को अधिक-से-अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए प्रत्येक साहित्यिक संस्था को उससे संबद्ध हो जाना चाहिए। ऐसा होने से सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रान्त-निर्माण सम्बन्धी आयोजनाओं को समानरूप से प्रान्त भर में कार्यान्वित किया जा सकेगा। इतना ही नहीं, जिन स्थानों में अब तक साहित्यिक संस्थाएं स्थापित नहीं हुई हैं, वहाँ उनकी स्थापना करने का शीघ्र ही प्रयत्न होना चाहिए। प्रान्त का कोई भी भाग ऐसा न रहे जहाँ पुस्तकालय, वाचनालय, साहित्य-गोष्ठी इत्यादि कोई-न-कोई संस्था न हो। ऐसा करके ही हम अपने उद्देश्य में अभीष्ट सफलता प्राप्त कर सकेंगे। जिस महान् वस्तु को पाने के लिए प्रयत्न हो रहा है, उसके योग्य प्रान्त-वासियों को न बनाया जा सका तो

यह वस्तु मिलने पर भी अधिक दिन टिकेगी नहीं।

बुन्देलखण्ड-प्रादेशिक-साहित्य-सम्मेलन के प्रतिनिधियों को चाहिए कि अभी से वे अपनी-अपनी संस्थाओं की शक्ति बढ़ाने के लिए उद्योग करें, जिससे समय आने पर वे अपनी भरपूर भेंट अपने इस प्रिय प्रान्त की सेवा में अर्पित कर सकें।

शङ्कर-निवास
झाँसी।

क्या प्रान्त-निर्माण सामयिक है

श्री पन्नालाल शर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रान्त-निर्माण की योजना एक शुद्ध राजनैतिक प्रश्न है। प्रान्त-निर्माण की माँग का अर्थ होता है एक विशेष भूभाग को प्रान्तिक विषयों के लिये एक शासन-व्यवस्था के अन्दर लाना। बुन्देलखण्ड अनेक टुकड़ों में विभाजित है और प्रत्येक टुकड़ा एक पृथक शासन-व्यवस्था रखता है। बुन्देलखण्ड प्रान्त की माँग करने का मतलब होता है इन पृथक-पृथक शासन-व्यवस्थाओं को तोड़ देना, और तमाम बुन्देलखण्ड के भूभाग को एक शासन के अन्तर्गत लाना।

प्रान्त-निर्माण का औचित्य

भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि की एकता के आधार पर प्रान्त बनाने की योजना सर्वथा न्यायोचित है। अपनी संस्कृति तथा भाषा का पूर्ण-रुपेण विकास तभी सम्भव है जब कि उसकी उन्नति करने का भार उसी संस्कृति में पले व्यक्तियों और उन्हीं भाषा-भाषियों पर डाला जाय। राजनीति में संघशासन की कल्पना का अंकुर इसी आरम्भिक स्वतंत्रता से पैदा होता है। ऐसी अवस्था में यदि बुन्देलखण्ड में अन्दरूनी समानता भाषा और संस्कृति के आधार पर है तब बुन्देलखण्ड की प्रगति के मार्ग में कोई देश-सेवी कदाचित बाधक न होगा। यह बात कल्पना में नहीं आती कि सारा भारतवर्ष तो स्वतंत्र होजाय और भारत को स्वतंत्र करनेवाले दूरदर्शी नेता बंकापहाड़ी, अलीपुरा, बिजावर आदि रियासतों की जनता को वर्तमान परिस्थिति में ही छोड़ दें।

बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण कब ?

जहाँ तक बुन्देलखण्ड के प्रान्त के निर्माण का सम्बन्ध है, हमारे सामने एक और ही प्रश्न है। वह यह कि हम बुन्देलखण्ड-प्रान्त बनाने की कल्पना कब करते हैं? बुन्देलखण्ड-प्रान्त बनाने की कल्पना हम विदेशी शासन के होते हुये करते हैं, या उसकी समाप्ति पर। यदि हमें बुन्देलखण्ड प्रान्त की रचना वर्तमान शासन के होते हुये करनी है तो उनकी कल्पना दो प्रकार से की जा सकती है। एक तो यह हो सकता है कि वर्तमान बुन्देलखण्डी रियासतों की सामन्तशाही की आज ही समाप्ति कर दी जाय और सारे बुन्देलखण्ड के भूभाग को अँग्रेज़ी भारत का एक प्रान्त बना दिया जाय, और उसको इस स्थिति में ला दिया जाय जिस स्थिति में आज बंगाल है, बिहार या अन्य कोई प्रान्त है। इस प्रकार से जो नया प्रान्त बनेगा उससे तमाम बुन्देलखण्डी जनता को अवश्य ही प्रसन्नता होगी। परन्तु यह ध्रुव सत्य है कि वर्तमान शासन-व्यवस्था में इस प्रकार की चीज़ के लिये गुंजाइश नहीं हो सकती। कुछ लोग कह सकते हैं कि वर्तमान शासन व्यवस्था में यदि उड़ीसा और सिन्ध पर प्रान्त बन सकते हैं तो यह भी सम्भव है कि उन्हीं की भाँति एक नया तीसरा प्रान्त बुन्देलखण्ड भी बन जाय। परन्तु यह विचार सही नहीं मालूम पड़ता। कारण कि उड़ीसा या सिन्ध प्रान्त की रचना अँग्रेज़ी भारत के सूबों के टुकड़े करके की गई है। इन

नये सूबों की रचना से साम्राज्य को कोई हानि नहीं पहुँचती है। अगर जनता ज़ोर दे तो आगरा प्रान्त भी संयुक्त-प्रान्त से पृथक करके अधिकारियों द्वारा बनाया जा सकता है। परन्तु वर्तमान शासन व्यवस्था बुन्देलखण्ड प्रान्त नहीं बनने देगी, क्यों? इसलिये कि रियासतों के राजे-महाराजे उसके साधने के लिये मज़बूत खम्भे हैं साम्राज्यवादी इन खम्भों को उखाड़ फेंकने की भूल नहीं करेंगे। इसका अर्थ हुआ कि जनता भले ही चाहे कि बुन्देलखण्ड प्रान्त अवश्य बनना चाहिये और इसमें जनता का बड़ा हित है। परन्तु वर्तमान शासन व्यवस्था के होते हुए जनता की यह इच्छा कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकती।

दूसरी कल्पना यह की जा सकती है कि तमाम बुन्देलखण्डी भू-भाग को बजाय बीसियों सामन्तों के आधीन रहने के किसी एक सामन्त के हाथ में दे दिया जाय और बुन्देलखण्ड को प्रान्त बना कर इस परिस्थिति में कर दिया जाय जिसमें आज निज़ाम का हैदराबाद है, या मैसूर रियासत है। उस प्रान्त को किसी भी बुन्देलखंडी राजा के हाथ में दे दिया जाय। झांसी, जालौन आदि ज़िले भी उसी प्रान्त में शामिल कर दिए जायें। वह बुन्देलखण्डी शासक एक ओर अच्छे मज़बूत डंडे से तमाम जनता को हाँकेगा और दूसरी ओर साम्राज्य का मज़बूत खम्बा भी बना रहेगा। इस प्रकार के बुन्देलखण्ड प्रान्त का स्वागत कभी नहीं किया जा सकता। इतना ही नहीं, यदि आवश्यकता पड़ी तो झांसी, जालौन आदि ज़िलों की जनता ऐसे प्रान्त में शामिल होने का घोर विरोध करेगी और यह भी सही है कि अंग्रेज़ी साम्राज्य के अन्तर्गत ऐसा प्रान्त भी अंग्रेज़ शासक नहीं बनाने देंगे, क्योंकि ऐसा करने में उन्हें कुछ अपने ज़िले छोड़ना पड़ेंगे और साथ ही एक राजा को छोड़ कर बाकी को अपनी-अपनी रियासतों से खदेड़ देना पड़ेगा, जिसे अंग्रेज़ी शासक अपनी प्राचीन संधियों की आड़ लेकर करना पसन्द नहीं करेंगे। इसका अर्थ यह होता है कि प्रान्त बनाने की यह योजना भी सम्भव नहीं है। साथ ही अधिकांश जनता के लिए निश्चित रूप से हानिकारक भी है।

तात्पर्य यह है कि ब्रिटिश शासन के होते हुए बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण की योजना न तो सम्भव ही है और न जनता के लिए लाभदायक ही। तब फिर प्रश्न रह जाता है कि यदि बुन्देलखण्ड प्रान्त अंग्रेज़ी शासन के रहते हुए नहीं बन सकता तो उसकी समाप्ति पर बन सकेगा। लोग कह सकते हैं कि यदि बुन्देलखण्ड प्रान्त इस समय नहीं बन सकता तो न सही, इसके लिए इस समय जनमत तो तैयार किया जा सकता है, ताकि भारत के स्वतंत्र होने पर प्रान्त-निर्माण होने में देर न लगे।

इस दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो एक बड़ा गम्भीर प्रश्न सामने आ उपस्थित होता है। वह यह कि स्वतन्त्र भारत का अर्थ हम क्या समझते हैं? क्या स्वतन्त्र भारत का अर्थ यह है कि एक ओर तो सम्पूर्ण भारत में स्वराज्य हो जायगा, जनता सुखी और समृद्ध हो जायगी और दूसरी ओर भारत के उसी भू-भाग पर सामन्तशाही का नग्न नृत्य होता रहेगा? क्या वह भारत भी स्वतन्त्र भारत की गणना में आ सकता है, जिसमें बंकापहाड़ी, दुखई, टोड़ीफतेहपुर, बिजना, अलीपुरा आदि अन्य अनेक रियासतें हैं? स्वतंत्र भारत का तो एक ही अर्थ हो सकता है कि उसके अन्दर सभी जगह पूर्ण स्वतन्त्रता होगी और पृथक्-पृथक् प्रान्तों को प्रान्तीय स्वतन्त्रता रहेगी। स्वतन्त्र भारत के अन्तर्गत देशी रियासतों के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। अखिल भारतीय कांग्रेस और कांग्रेस-नेताओं के प्रति यह बड़ा अविश्वास होगा यदि हम यह समझें कि हमें स्वतन्त्रता की लड़ाई के सिवाय इन रियासतों के तोड़ने के लिए कोई पृथक प्रयत्न भी करना होगा।

महात्मा गांधी ने स्पष्ट तौर से कहा था कि पंडित जवाहरलाल नेहरू राजाओं को स्वतन्त्र भारत में बरदाश्त नहीं कर सकते। इसकी पुष्टि पंडितजी से भी हो चुकी है। सारांश यह है कि

स्वराज्य होने पर रियासतें टूटेंगी और इनके स्थान में दूसरी व्यवस्था होगी। बुन्देलखण्डी रियासतों की समाप्ति पर बुन्देलखण्ड प्रान्त तो स्वभावतः बनेगा ही, हो सकता है कि कांग्रेस के सामने केवल कहने मात्र का कष्ट करना पड़े।

बुन्देलखंड प्रान्त बनाने का समीपतम मार्ग

यदि यह बात निश्चित है कि उड़ीसा या सिन्ध प्रान्त की भांति बुन्देलखण्ड प्रान्त नहीं बन सकता, बुन्देलखण्ड प्रान्त का निर्माण इस शासन व्यवस्था के रहते हुए नहीं हो सकता। तब हमारे सामने बुन्देलखण्ड प्रान्त बनाने का एक मात्र मार्ग यही रह जाता है कि जल्दी-से जल्दी भारत स्वतन्त्र हो और स्वतन्त्र भारत में इस नये प्रान्त को बनाया जाय। अपने इस लक्ष्य को अपने कार्य द्वारा हम समीप भी ला सकते हैं और रास्ता भटक जाने पर हम इसे दूर भी ले जा सकते हैं। यदि हम समझते हैं कि नये प्रान्त का निर्माण पं० जवाहरलाल नेहरू या महात्मा गाँधी आदि ही स्वतन्त्र भारत में कर सकेंगे, तो अपने इस लक्ष्य को समीप लाने के लिए हमारा यही कर्तव्य हो जाता है कि तमाम जनता को उस दिशा की ओर अग्रसर कर दें, जिसमें भारत स्वतन्त्र हो। यदि हम ऐसा करें तो निश्चय ही हमको बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण में शीघ्र ही सफलता मिलेगी।

प्रान्त-निर्माण को दूर ले जाने का कार्य

यदि किसी मकान पर कोई विरोधी अपना अधिकार करले या अधिकार करने की चेष्टा करे तो उस अवसर पर मकान के रहनेवालों का एक ही कर्तव्य होता है कि वे सब उन विरोधियों का डट कर सामना करें और उन्हें घर से निकाल दें। जिस समय विरोधियों का आमना-सामना हो रहा हो उस समय यदि मकान का एक रहने वाला दूसरे का ध्यान यह कह कर आकर्षित करे कि क्यों भाई, मकान में रसोई-घर तो अमुक कमरे में अच्छा रहेगा या बैठक में अमुक प्रकार की सजावट उचित होगी तो इस प्रकार के कार्य से विरोधियों को ही लाभ हो सकता है और मकान के रहनेवालों की हानि। सम्भव है कि रसोई-घर बनाने या बैठक सजाने का सुझाव पूर्णरूपेण उचित हो, परन्तु उस उचित सुझाव को यदि ग़लत समय सामने लाया जायगा तो इस बात का भय है कि इस कार्य के तय करने में मकान ही हमारे हाथों से निकल कर विरोधियों के हाथों में न चला जाय।

कहना न होगा कि आज जब कि जापान का आक्रमण एक ओर भारत पर होनेवाला हो और दूसरी ओर देश के कर्णधार पराधीन हैं ऐसे अवसर कर यदि हम जनता का ध्यान एक भिन्न दिशा में लेजावेंगे और अपना व जनता का समय पूर्णरूपेण से भारत को स्वतंत्र करने के लिए न लगावेंगे तो सम्भव है कि भारत स्वतन्त्र न होने पावे या जापानियों का गुलाम हो जाय। हर सूरत में प्रान्त-निर्माण की योजना बहुत दूर जा पड़ेगी।

प्रान्त-निर्माण के लिए कार्यक्रम

प्रान्त-निर्माण का कार्यक्रम ठीक वही हो सकता है, जो कार्यक्रम कि भारत को स्वतन्त्र करने का है, क्योंकि भारत के स्वतन्त्र होने तक हमें प्रान्त-निर्माण की प्रतीक्षा ही करनी होगी। आज की परिस्थिति में जापानियों से भारत की रक्षा करना, एकता स्थापित करना, कांग्रेस और मुस्लिम लीग का समझौता कराना, आत्म-निर्णय का अधिकार मनवाना आदि आवश्यक कार्य भी प्रान्त-निर्माण की योजना को समीप ला सकते हैं, और इस कारण प्रान्त निर्माण के लिए भी एक मात्र कार्यक्रम हो सकता है। उक्त कार्यक्रम की पूर्ति भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार से हो सकती है।

इसके विरुद्ध यदि हम इस परिस्थिति में प्रान्त-निर्माण के कार्यक्रम को स्वराज्य प्राप्ति के कार्यक्रम से पृथक करेंगे और जनता का ध्यान प्रान्त-निर्माण के कार्यक्रम में लगावेंगे तो जिस हद तक हम जनता को प्रान्त-निर्माण के कार्यक्रम में लगाए रक्खेंगे उसी हद तक हम

जनता का समय तथा कार्यकर्ताओं का समय स्वराज्य प्राप्ति के कार्यक्रम में प्रयोग होने से वंचित रक्खेंगे। इस प्रकार प्रान्त-निर्माण की योजना यदि स्वराज्य मिलने के पहले चलाई गई तो वह असामयिक ही होगी।

पुरानी कोतवाली,
झाँसी।

बुन्देलखण्ड है कहाँ ?

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

कोई साल भर पहले की बात है। ओरछा में अमुक गढ़ के राजकुमार च. त्र. ज्ञ. महोदय से बातचीत हो रही थी। राजकुमार साहब, जो समझदार और सुलझे हुए दिमाग़ के आदमी हैं, बोले—"आप जिस बुन्देलखण्ड की चर्चा करते हैं, वह आखिर है कहाँ, जनाब!"

इस निराशाजनक वाक्य को सुनकर हृदय को कुछ धक्का-सा लगा और तब से यह प्रश्न बराबर मेरे मन में खटकता रहा है। बहतर होता यदि कोई बुन्देलखण्डी बन्धु इस प्रश्न का उत्तर देता; पर चार वर्ष तक इस भूमि का अन्न-जल ग्रहण करने के बाद इन पंक्तियों के लेखक का भी इस दिशा में कुछ कर्तव्य हो जाता है।

बुन्देलखण्ड है कहाँ ?

इस प्रश्न का सीधा-सादा जवाब है—"बुन्देलखण्ड है इस प्रान्त के लाखों साधारण स्त्री-पुरुषों के हृदय में; किसानों-मजदूरों की भुजाओं में; इस प्रान्त के लेखकों तथा कवियों की भावनाओं में; युवकों तथा युवतियों की आकांक्षाओं में। बुन्देलखण्ड है 'साकेत,' 'गढ़कुंडार' और 'बापू' के रचयिताओं के हृदयों में।"

और यदि भौतिक जगत् की बात कहें तो—

बुन्देलखण्ड है यहाँ के पशु-पक्षियों में; नदी, नद, सरोवरों और प्रपातों में; वृक्षों, क्षेत्रों, वनों और उपवनों में; यहाँ के जल में; यहाँ के वायु में और इस भूमि के कण-कण में।"

बुन्देलखण्ड का कोई अनन्य प्रेमी युवक तो उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में यहाँ तक कह सकता है:—

"खाके वतन का मुझको हर ज़र्रा देवता है।"

बुन्देलखण्ड के अनेकों रूप हैं, पर कवि-शिरोमणि तुलसीदासजी के शब्दों में—

"जा की रही भावना जैसी,
प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी।"

बुन्देलखण्ड का वास्तविक रूप देखने के लिये आपको उससे दूर जाना पड़ेगा। सच तो यह है कि कलकत्ते या बम्बई, दिल्ली अथवा प्रयाग में रहने वाला बुन्देलखण्डी व्यक्ति इस जनपद के गौरव को जितनी गम्भीरता से अनुभव कर सकता है, उतनी गहराई से यहाँ के चिर निवासी शायद ही कर पावें।

श्रीयुत च० त्र० ज्ञ० महोदय ने जब यह प्रश्न ओरछा में किया था, खेद है कि उस समय मुझे यह उत्तर न सूझा कि बुन्देलखण्ड है यहाँ से दो फ़र्लाङ्ग दूर बेतवा-तट पर, बल्कि यों कहिये कि वेत्रवती के प्रत्येक बिन्दु में!

यदि हम भारतीयों में कुछ भी कल्पना-शक्ति होती, कुछ भी प्रकृति-प्रेम होता तो हम लोग बेतवा को वही प्रतिष्ठा, वही सौन्दर्य प्रदान कर सकते थे जो जर्मन लोगों ने राइन नदी को प्रदान किया है। इस महिमामयी सरिता को हमने कई मनोहर स्थलों पर देखा है—भोपाल राज्य में वन-पर्वतों के बीच इसके उद्गम स्थान के दर्शन करने का सौभाग्य भी हमें प्राप्त हुआ था, चिरगाँव के निकट इसके बाँध को हमने

देखा है और ओरछे में इसकी सर्वोत्तम छटा पर हम अनेकों बार मुग्ध हुए हैं—और हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि भावी भारत इस पुण्य-सलिला प्रगतिशीला नदी के महत्त्व को भली भाँति समझेगा।

वेत्रवती और केन, धसान और जामनेर बुन्देलखण्डियों के लिये मातृ तुल्य हैं और वे इस प्रान्त की प्रतीक हैं।

यदि इस प्रान्त के निवासियों में क्रियात्मक भक्ति होती तो इन नदियों के तट पर आज अनेक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र नज़र आते, आज बुन्देलखण्ड के प्रत्येक स्कूल में बेतवा तथा केन के फ़िल्म दिखलाये जाते और इन नदियों के जीवन-चरित कभी के लिखे जा चुके होते।

भारत का केन्द्रस्थल—

बन्धुवर सियारामशरणजी भारत-भूमि का केन्द्र-स्थल पाने के लिये उत्सुक हैं। आध्यात्मिक रेखागणित के अनुसार वह इस समय वर्धा में है और सांस्कृतिक माप-विद्या के अनुसार बोलपुर (विश्वभारती, शान्ति-निकेतन) में और हमारे अराजकवादी सिद्धान्त के अनुसार इस भूमि के चालीस करोड़ व्यक्तियों में से प्रत्येक के हृदय तथा मस्तिष्क में; पर यदि भौतिक और भौगोलिक नाप-जोख ही करनी है तो यही सर्वोत्तम होगा कि हम वेत्रवती को ही भारत का केन्द्र मान लें। वैसे भी वेत्रवती भारत के मध्य में विराजमान है। लाखों वर्गमील के क्षेत्रफल में दस-बीस मील के इधर-से-उधर होने से कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। बजाय इसके कि हम ज़रीबों के द्वारा खेत और टीले नापते फिरें, यही बहतर होगा कि वेत्रवती तट के ही किसी मनोहर स्थल को केन्द्र मान कर उसे पूज्य भावना से देखने लगें। इसमें हमारे पूर्वजों की यह भविष्य-वाणी "कलौ वेत्रवती गंगा" भी चरितार्थ हो जायगी।

बुन्देलखण्ड की प्रकृति—

बुन्देलखंड को विधिवत् जानने के लिये यहाँ की प्रकृति का और यहाँ के पुरुषों का अध्ययन करना ज़रूरी है, और इसके लिये व्यापक अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है और यह अन्तर्दृष्टि साधना तथा तपस्या से ही प्राप्त हो सकती है। जिन लोगों की निगाह सदा पैसे पर ही रहती है, जो लोभ का चश्मा लगाये हुए हैं और येनकेन प्रकारेण लखपती बनना ही जिनके जीवन का उद्देश्य है, उन बहुधंधी व्यक्तियों को यह अन्तर्दृष्टि कदापि प्राप्त नहीं हो सकती, साथ ही यह उन महानुभावों के लिये भी अप्राप्य है, जो इस भूमि को सराय समझ कर इसमें रह रहे हैं और दस-पन्द्रह वर्ष तक इसका शोषण कर अपने प्रान्त को वापस जाने की आकांक्षा रखते हैं!

ज्ञान-पिपासा की आवश्यकता—

अत्यन्त दुर्भाग्य की बात यह है कि न तो हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली विद्यार्थियों के हृदय में प्रकृति का अध्ययन करने के लिये उत्सुकता उत्पन्न करती है और न हमारे साहित्यिकों में ही वह भावना विद्यमान है। माता सीता ने जब इस बुन्देलखण्ड के वन-प्रान्त को अपने चरणों से पवित्र किया था तो उन्होंने यहाँ के फूल-पत्तों और लताओं के विषय में भगवान् से प्रश्न किये थेः—

एकैकं पादपं गुल्मं लतां वा पुष्पशालिनीम्।
अदृष्टरूपां पश्यन्ती राम प्रपच्छ साबला॥

और लक्ष्मणजी से जगज्जननी ने अनुरोध किया था कि हमारे लिये तरह-तरह के पौधे लाओः—

"रमणीयान् बहुविधान्पत्रान्पादपानकुसुमोत्करान्।
सीता वचन संरब्धः आनयामास लक्ष्मणः॥"

यही नहीं, इस बुन्देलखण्ड के विचित्र जल-युक्त और हंस-सारसों से मुखरित नदी-नद देखकर सीता माताजी ने मन-ही-मन आनन्द का अनुभव भी किया था—

"विचित्र बालुका जलां हंस सारस नादिताम्
रेमे जनकराजस्य सुता प्रेक्ष्य तदा नदीम्"

आज भी बुन्देलखण्ड में वे ही नदियाँ और बन विद्यमान हैं; तरु, पुष्प और लताओं की भी

कमी नहीं, पर हम लोगों में वह उत्सुकता कहाँ है जो सीता माता में थी ?

भगवान् श्रीरामके लिये आदि कवि वाल्मीकि ने जिस 'गिरि-वन-प्रियः'—'पहाड़ी तथा वनों के प्रेमी' विशेषण का प्रयोग किया है उसके मर्म को जानने वाले हम लोगों में कितने हैं ? हम लोगों में गिरि-वन के प्रेमी कितने हैं ?

भगवान् ने सीताजी को चित्रकूट पर्वत दिखलाते हुए कहा था—

"इस रमणीय पर्वत को देखकर राज्य-च्युति-दुःख भी मुझे नहीं सताता, सुहृदों के पास से दूर रहना भी मेरे लिये पीड़ाका कारण नहीं होता।"

**'न राज्य भ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम्'**

अपने को राम के भक्त कहने वाले तो इस भूमि में करोड़ों ही व्यक्ति विद्यमान् हैं, पर भगवान् की तरह प्रकृति-प्रेमी कितने हैं ?

जिस प्रान्त में स्वर्ण मृगों के सौ-सौ, दो-दो-सौ के झुण्ड पाये जाते हों, वहाँ स्वर्णमृग (चीतल) के विषय पर एक भी पुस्तक का न होना इस बात का सूचक है कि अभी तक हम लोगों ने इस जनपद से वास्तविक प्रेम नहीं किया। मि० ह्यूम ने, जो कांग्रेस के जन्मदाता कहे जाते थे, इटावे के निकट के जंगल की चिड़ियों का अध्ययन करके एक महान् ग्रन्थ लिखा था, पर बुन्देलखण्ड के पशु-पक्षियों पर ग्रन्थ तो क्या सचित्र लेख भी शायद ही किसी ने लिखा हो ! दरअसल बात यह है कि हम लोगों के हृदय में—अन्तरात्मा में—ही सौन्दर्य की भावना नहीं है। अपने चारों ओर हमें रेगिस्तान दीख पड़ता है, वह हमारे हृदय का ही रेगिस्तान है। सुनते हैं कि लैला कोई ख़ूबसूरत औरत नहीं थी, मजनूँ की आँखों ने ही उसे सुन्दरता प्रदान की थी। सौन्दर्य की अनुभूति के लिये आँखों को कुछ ट्रेनिङ्ग चाहिये और चाहिये विकसित मस्तिष्क। स्वर्णमृग पर मुग्ध होने के लिए सीतामाता का हृदय आवश्यक है, वैसे तो सहस्रों ही स्वर्णमृग इस भूमि में नित्यप्रति दीख पड़ते हैं। जिनके पास क्रियात्मक कल्पना-शक्ति है, और है भावनामय हृदय, वह रेगिस्तान को भी हरी-भरी भूमि बना सकता है, फिर बुन्देलखण्ड तो प्रकृति माता का विशेष कृपापात्र रहा है।

मुख्य प्रश्नः—

बुन्देलखण्ड के निवासियों के लिये इस समय एक अत्यन्त आवश्यक प्रश्न यह है कि यहाँ के मौजूदा सुन्दर स्थलों को नष्ट होने से कैसे बचाया जाय। यदि शासन-विधान का निर्माण हमारे हाथ में होता तो प्राकृतिक सौन्दर्य को नष्ट करने वाले आदमियों को हम कठोर-से-कठोर दंड देते। बुन्देलखण्ड के नवयुवकों से हमारा विशेष रूप से आग्रह है कि वे इस भूमि के मनोहर स्थलों को तलाश करें और फिर इस बात के लिए घोर आन्दोलन करें कि उसके सौन्दर्य की रक्षा की जाय। जब हम उषा-विहार को देखते हैं, जहाँ कई फर्लाङ्ग तक जामनेर के तट पर दोनों ओर वृक्षावली चली गई है, जहां इक़बाल के शब्दों में 'नदी का साफ पानी तस्वीर लेरहा है', तब हमें यही आशङ्का होती है कि किसी मूर्ख बनरखे या फारेस्ट आफ़िसर की कृपा से यह दृश्य सदा के लिये आँखों से ओझल हो सकता है !

नवीन तीर्थों का निर्माणः—

हमारे पूर्वजों ने प्राकृतिक सौन्दर्य-पूर्ण स्थलों के निकट अपने तीर्थ-स्थान बनाये थे। उस परम्परा को जारी रखने की ज़रूरत है। कहीं पर हम मेले लगा सकते हैं, कहीं पर भगवान् शिव की मूर्ति स्थापित कर सकते हैं और कहीं पर विद्यालय अथवा औद्योगिक कार्यालय क़ायम कर सकते हैं।

कविवर व्यासजी के शब्दों में जहाँ—

**"केन कलिन्दजा-सी गिरिभूमि पै,
पावन प्रेम पसारती आई।
रोका जहाँ जिसने पथ को,
उसके वहीं पैर उखारती आई।
वीर-व्रता करतव्य-रता बन,
भैरव नाद हुँकारती आई।**

हारती आई विपत्तियों को,
महा पर्वतों का उर फारती आई।"

यहां आश्रमों तथा विद्यालयों के लिए कितने ही रमणीक स्थल मिल सकते हैं।

हमारा स्वप्नः—

चालीस करोड़ की जन-संख्या के इस महादेश में सहस्रों ही आश्रमों की आवश्यकता होगी। हम उस दिन का स्वप्न देख रहे हैं जब बरुआ-सागर के आस-पास स्वास्थ्य-गृह (सैनी-टोरियम) का निर्माण होगा, जब नदनवारा (या नन्दनवन?) सरोवर के निकट फलों के पचासों उपवन होंगे, जब जतारा में विजया-दशमी के आस-पास कोई कृषि सम्बन्धी तथा सांस्कृतिक मेला लगेगा और जब जामनेर के तट पर स्थित उषा घाट, उषा विहार और उषा कुंज में सैकड़ों विद्यार्थी शान्तिनिकेतन के ढङ्ग की शिक्षा प्राप्त करते हुए दीख पड़ेंगे। उस ओरछा में, जहाँ कभी भारत के सम्राट् जहाँगीर ने शरण ली थी, हम एक वन-सम्बन्धी महाविद्यालय की कल्पना कर रहे हैं। हम इस पवित्र भूमि के प्रत्येक सरोवर के सुन्दर-से-सुन्दर तथा उपयोगी-से-उपयोगी बनाये जाने के स्वप्न देख रहे हैं। हाँ, हम सपने देख रहे हैं उस दिन के जब इस भूमि का प्रत्येक व्यक्ति—किसान और मज़दूर, श्रमजीवी अथवा बुद्धिजीवी, स्त्री अथवा पुरुष अन्न-वस्त्र की चिन्ता से मुक्त होकर स्वाभिमानपूर्वक चल सकेगा और जब सबके पास अपनी कलापिपासा को शान्त करने के साधन होंगे।

असली हालतः—

पर आज की वास्तविक दशा हमारे इन स्वप्नों को भंग कर देती है। जब हम इस प्रान्त के किसी सुशिक्षित युवक में आवश्यकता से अधिक दुनियवीपन पाते हैं तो हमारे हृदय को धक्का लगता है। जिन्हें ईश्वर ने, प्रकृति ने अथवा भाग्य ने काफी साधन दिये हैं, उन्हें जब हम स्वार्थ की चिन्ता में मग्न और छुटभइयों की ओर से सर्वथा उपेक्षापूर्ण देखते हैं तो चित्त को क्लेश हुए बिना नहीं रहता। हमारे अनेकों ही साहित्यिक तथा सांस्कृतिक नेताओं की रेल मुख्य लाइन से छोटी लैन (या लूप लैन) में चली गई है और कितनों की तो पटरी से ही उतर गई है। कब वह सौभाग्य-पूर्ण दिन आवेगा जब वे कह सकेंगे—

"येनाहं नामृतं स्याम, तेनाहं किं कुर्याम"
'जिसे लेकर मैं अमर नहीं बन सकता, उसे लेकर क्या करूँगा।'

आज हमारे वन उजड़ रहे है, सुन्दर-सुन्दर वृक्ष धराशायी होरहे हैं और सबसे अधिक लज्जा-जनक बात यह है कि जिन नवयुवकों को प्रोत्साहन मिलना चाहिये उनकी प्रतिभा प्रारम्भ में ही कुण्ठित होती जारही है, और हम लोग अपने स्वार्थों में संलग्न हैं।

बुन्देलखण्ड का करुणोत्पादक रूपः—

बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य ने हमें जितना ही आनन्द दिया है, उससे कहीं अधिक दुःख उसके करुणोत्पादक रूप ने दिया है। जब-जब हमने चैतुओं (चैत के महीने में मज़दूरी के लिये बाहर जाने वालों) के झुंड-के-झुंड मालवा इत्यादि को जाते हुए देखे हैं, हमारा माथा लज्जा से झुक गया है। हज़ारों ही श्रम-जीवियों का इस प्रान्त से सिर्फ़ इसीलिये बाहर जाना, कि वे दो-चार मन अनाज ले आवें, हमारी आर्थिक कुव्यवस्था का सूचक है। रोती-बिसूरती गायें और आध-आध सेर दूध देने वाली भैंसे हमारी अकर्मण्यता तथा अदूरदर्शिता की परिचायक हैं। जहाँ जंगलों तथा चरागाहों की भरमार हो, वहाँ दूध-घी की कमी "पानी में मीन पियासी" की याद दिलाती है। जिस भूमि में निर्जीव बैल साँड़ों की जगह सन्तानोत्पन्न करते हों, वहाँ की दुर्दशा का क्या कहना!

युवकों का बिन्नूपनः—

इन सबसे अधिक करुणोत्पादक है युवकों का बिन्नूपन (छोकरीपन)। तबीयत होती है कि उनके कन्धे झकझोर कर कहा जाय—"पुरुष क्यों नहीं बनते?" मानव की ऐसी अवहेलना

शायद ही कहीं की गई हो। मनुष्यों के व्यक्तित्व को कदाचित् ही कहीं इतना क्षुद्र बनाया गया हो।

सर्वाङ्गीण उन्नति की आवश्यकता:—

यह प्रान्त तपैदिक के उस मरीज़ की दशा को पहुँच गया है जिसका प्रत्येक अङ्ग विकृत हो चुका हो। यहाँ तो उद्योग-धंधों, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुधार इत्यादि, जिस किसी क्षेत्र को आप लें, बड़ी भारी त्रुटियाँ पावेंगे। प्रत्येक क्षेत्र के यहाँ सैकड़ों कार्यकर्त्ता चाहियें। पहले यहाँ आर्थिक दशा सुधारने की ज़रूरत है, पीछे दूसरे कामों की। भूखों तथा नंगों के लिये प्रतिनिधि संस्थाएँ खर्चीले खिलौने से अधिक महत्त्व नहीं रखतीं।

आशा की झलक:—

इस शस्य श्यामला भूमि के विषय में हम निराश कदापि नहीं होने के, गो आस-पास के दृश्य देखकर कभी-कभी हमारे मनमें झुँझलाहट उत्पन्न हो जाती है। अनेक बार हमने अपनी इस निराशा का ज़िक्र श्रीमान् ओरछेश के सम्मुख किया है। उन्होंने बार-बार यही कहा है—

"चौबेजी, इतनी जल्दी क्यों करते हो! छकड़ा गाड़ी की जगह मोटर क्यों दौड़ाना चाहते हो। प्रारम्भ में ही घबराने की क्या ज़रूरत है! पहाड़ पर चढ़ते हुए बार-बार ऊपर की ओर मुँह उठाकर देखोगे तो डर ही लगेगा। एक-एक पैर आगे बढ़ते जाओ, कभी-न-कभी लक्ष्य पर पहुँच ही जाओगे।"

श्रीमान् ओरछेश के इन शब्दों के पीछे रहने वाली उनकी क्रियात्मक सहायता हमारे हृदय में साहस का संचार करती है। हम उस दिन की याद कभी नहीं भूलने के जब श्रीमान् ओरछेश ने कहा था, बुन्देलखण्ड प्रान्त को प्राचीन गौरव दिलाने में यदि बारह-तेरह लाख की आमदनी वाला मेरा राज्य भी बलि-वेदी पर चढ़ जाय तो उसके लिये भी मैं तय्यार हूँ। मुझे उसके लिये कोई पद नहीं चाहिये और न कुछ प्रतिष्ठा।"

बुन्देलखण्ड प्रान्त की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उन्नति के लिये जितने श्रीमान् ओरछेश चिन्तित हैं उतना शायद ही कोई अन्य व्यक्ति हो। उनकी इस अटूट श्रद्धा को स्थायी क्रियात्मक रूप दिया जा सके और उनकी आशावादिता का समावेश इस प्रान्त के नवयुवकों के हृदय में किया जा सके तो सारा काम बन जाय!

जनता जनार्दन:—

अन्त में हम अपना एक दृढ़विश्वास 'मधुकर' के पाठकों के सम्मुख रख देना चाहते हैं। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह महात्मा हो चाहे महाकवि या महाराजा, अकेला इस महायज्ञ को पूर्ण नहीं कर सकता। लाखों भूखों को अन्न, नंगों को वस्त्र और मूकों को वाणी देना आसान काम नहीं है।

हमारे देश को स्वाधीनता मिलने में पाँच-सात वर्ष से अधिक की देर नहीं। तब हम लोग अखिल भारतीय प्रश्नों पर मग़ज़पच्ची करने के बजाय प्रत्येक जनपद या ज़िले के लिये अलग-अलग ठोस काम करने का महत्त्व समझेंगे। प्रत्येक ग्राम में स्वाधीन प्रजातंत्र स्थापित करना होगा, प्रत्येक झोंपड़ी में ज्ञान की ज्योति जगानी होगी। इस महान् कार्य्य के लिये अल्पसंख्यक सरकारी नौकर कदापि पर्याप्त न होंगे। इसके लिये तो लाखों ही युवकों को साधक बनकर ग्रामों में धूनी रमाते हुए जनता-जनार्दन की सच्ची पूजा करनी होगी। तब इस प्रकार का निराशाजनक तथा धृष्ठतापूर्ण प्रश्न कोई नहीं करेगा कि "तुम्हारा बुन्देलखण्ड है कहां?" क्योंकि तब उसका उत्तर देने वाले लाखों ही युवक होंगे।

कुण्डेश्वर,
(टीकमगढ़)

प्रान्त-निर्माण की ओर

श्री चतुर्भुज पाठक

श्रीमान् ओरछेश के शब्दों में बुन्देलखण्ड तीन भागों में बँटा है। एक ऊपर का भाग यू० पी० में है, बीच में बुन्देलखण्डी राज्य हैं और नीचे का तीसरा भाग सी० पी० में चला गया है। इस प्रकार वर्तमान बुन्देलखण्ड छिन्न-भिन्न अवस्था में है। इस भिन्नता के स्थान पर एकता कायम करना ही प्रान्त-निर्माण का लक्ष्य है। एकता में बल है और भिन्नता में निर्बलता। निर्बलों के सारे साधन—चाहे वह साहित्यिक और सांस्कृतिक हों, अथवा आर्थिक और राजनैतिक या सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी—छिन जाते अथवा निर्जीव हो जाते है। यही कारण है कि पर्वतों के पितामह विन्ध्याचल की श्रेणियों से सम्पन्न; बेतवा, केन, धसान आदि नदियों से परिवेष्टित; देवगढ़, खजुराहो, कालिंजर, बालाजी, पपौरा, अहारक्षेत्र आदि बीसियों तीर्थों से युक्त; धुंआधार (भेड़ाघाट) भीमकुंड जटाशंकर जतारा, कुण्डेश्वर, आदि सैकड़ों रमणीक स्थलों वाली भूमि में, जहां प्रकृति माता इतनी शक्तिशालिनी है, पुरुष शक्ति-सम्पन्न होने के बजाय पंगु बने हुए हैं। यदि यही दशा रही तो सम्पूर्ण भारत के सुडौल शरीर पर यह भूभाग कुबिजा के कूब की भांति अशुभ और अशोभित रह जायगा। ऐसी स्थिति में यदि बुन्देलखण्डी शब्द भारत के अन्य प्रदेशों में गौरव के बजाय अपमान का सूचक समझा जाय तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है। देखा और सुना तो यहां तक जाता है कि बुन्देलखण्डी अपने को बुन्देलखण्डी कहने में स्वयं लज्जित होता है, वह अपनी इस जन्मभूमि को सौभाग्य नहीं, बल्कि कलंक समझता है।

इस परिस्थिति में इस जननी के प्रत्येक लाल का क्या यह कर्तव्य नहीं हो जाता है कि इस दुखदायी सर्वनाशक विभिन्नता के स्थान पर मंगलमयी कल्याणकारी एकता कायम कर इस भूमिखण्ड की विशेष भेंट भारतमाता के चरणों में अर्पित करे?

प्रश्न यह है कि यह एकता हो कैसे? जगह-जगह पर स्वार्थ-सिद्धि के मठ कायम हैं, जहां महंत लोग अपना दृढ़ आसन लगाए बैठे हैं। ये महंत चाहे राजनैतिक हों या साहित्यिक, आर्थिक हों या सामन्तशाही के, पर इतना निश्चय है कि उनका दृष्टिकोण अपने मठ की चहार-दीवारी के अन्दर ही परिमित है। समय की गति से जो बहुत दूर हैं और जिन्हें समय की गति की परवाह नहीं, कालचक्र उनकी चिन्ता कब करने चला है? सोते हुओं को जगाना आसान है, पर जो सोने का बहाना किये हैं वे तो समय के धक्के से ही जागेंगे। हां, कार्यकर्ताओं में इतनी योग्यता तो होनी चाहिए कि वे सतर्क और सावधान रहें और अपने मित्रों तथा अमित्रों की गतिविधि पर ध्यान रक्खें। मार्ग बड़ा टेढ़ा और कंटकाकीर्ण है, पर हमें भरोसा है अन्तर्यामी जनार्दन का और जनता की अन्तर्निहित शक्ति का। हम किसी के आश्रित न रहें। न किसी पर अनुचित अविश्वास करें और न किसी पर अन्ध-श्रद्धा। वक्तव्यों की जांच ठोस कार्य की तराजू पर करें, चाहे वे वक्तव्य किसी राजनैतिक नेता के हों, या किसी शासक के।

'एकता एकता' कहते रहने से काम न चलेगा। यह भी आशा न करनी चाहिए कि प्रारम्भ से ही बीसियों साथी हमें मिल जांयगे। फर्लाङ्ग-दो-फर्लाङ्ग ही हम लोग आगे बढ़ पाये हैं।

'ओरछा सेवा संघ' यहां के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की एक क्षुद्र संस्था है, प्रान्त-प्रेम, स्वभाषा और संस्कृति द्वारा समस्त बुन्देलखण्ड का एकीकरण उसका एक उद्देश्य है। 'अखिल

भारतीय हरिजन सेवक संघ' से सम्बन्धित 'ओरछा हरिजन सेवक संघ,' एवं सहकारिता के आधार पर 'खद्दर-भंडार' की स्थापना हुई है। बुन्देलखण्ड की एकता की पूर्ति के लिए 'बुन्देलखण्ड-सेवा-संघ' की आयोजना हमारे सामने हैं। प्रान्त के भिन्न भागों में अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक, राजनैतिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ काम कर रही हैं। उनके मुकाबले में हमारा प्रयत्न नगण्य ही समझा जायगा। झांसी के 'लक्ष्मी-व्यायाम मन्दिर,' काल्पी के 'हिन्दी-विद्यार्थी-सम्प्रदाय' तथा चिरगांव के 'श्री गणेशशंकर-विद्यार्थी-पुस्तकालय' ने हमारा पथ-प्रदर्शन किया है और हम भी उनका अनुगमन करना चाहते हैं। फिर भी उन सब को एक संघ में लाने की कल्पना तो क्षुद्र नहीं मानी जा सकती।

नव-निर्मित प्रान्त की सीमा और उसका शासन-विधान क्या और कैसा होगा? इस प्रश्न का निर्णय अभी कौन कर सकता है? इस संबंध में सर्वमान्य सिद्धान्त की बात तो यह है कि जहां तक के अधिवासी अपने को बुन्देलखण्डी कहते हैं—अर्थात् जहां तक पीढ़ियों से सांस्कृतिक एकता चली आ रही है—वहां तक तो है उसकी सीमा, और भारत की राष्ट्रीय केन्द्रीय सरकार बुन्देलखण्डियों की राय से जो प्रान्तीय विधान स्वीकार करेगी वही होगा उसका शासन-विधान। अभी इतने ही विश्वास और आश्वासन के साथ हमें प्रान्त-निर्माण की ओर अग्रसर होना है।

अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमें ऐसे रचनात्मक कार्य प्रारम्भ करने हैं, कार्यकर्ताओं में इतनी घनिष्ठता लानी है, जिससे कोई भी अप्राकृतिक सीमा-जनित भेदभाव शेष न रह जाय और सहयोग द्वारा उत्पन्न एकता दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़े। बुन्देलखण्ड-चर्खा-संघ, बुन्देलखण्ड हरिजन-सेवक-संघ, बुन्देलखण्ड-साहित्य-मंडल, बुन्देलखण्ड-ग्रामोद्योग-संघ, बुन्देलखण्ड-महिला-मंडल आदि संस्थाएं हमारी अदम्य प्रगतिशीलता तथा निरन्तर बढ़ते हुए उत्साह की प्रतीक होंगी। एकता से प्रान्तीय उद्योग तो बढ़ेंगे ही, हमारे वन-उपवन पर्वत, नदी, सरोवर, भूमि और पशुपक्षी इत्यादि सभी का पूरा-पूरा उपयोग भी हो जायेगा। हमको तो जनता के हित के लिए और जनता के ही बल पर, प्रान्त-निर्माण की ओर अपना क़दम बढ़ा देना है। लक्ष्य प्राप्ति की राम जाने। अपना काम तो उस ओर बढ़ते ही जाना है।

सेवागृह, तालदरवाजा,
टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)

बुन्देलखण्ड

स्व० श्रीकृष्ण बलदेव वर्मा

भारतवर्षीय संयुक्त-प्रदेश के दक्षिण की ओर का भूभाग जो पुण्यसलिला, महाभागे यमुना, नर्मदा, चर्मण्वती तथा तमसा नाम्नी नदियों के प्रवाहों से परिवेष्टित है और नैतिक विग्रहों से जिसकी सीमाएँ समय-समय पर विस्तृत तथा संकुचित होती रही हैं, आर्य संस्कृति में जीजाकभुक्ति, जीजमुक्ति तथा जुझौति आदि नामों से प्रतिष्ठित रहा है, वर्तमान काल में इसी भूखण्ड के एक भाग का नाम बुन्देलखण्ड है, जिसमें अँग्रेजी शासन से शासित, झाँसी, जालौन, बाँदा, हमीरपुर नामक चार ज़िले और ओरछा, दतिया, समथर, पन्ना, चरखारी, बिजावर, अजयगढ़, छतरपुर, अलीपुरा, टोड़ी-फतेहपुर, बिजना, पहाड़ी, बंका, बरोदा, बावनी, बेरी, बीहट, चौबियाना, कालिंजर, भैसौंदा, कामता, रजोला, नयागाँव, पालदेव, पहरा, ढॅाव, गहरौली, गौरिहार, जसोह, जिगनी, खनियाधाना, लुगासी, नौगाँव, रिवाही, बरौधा,

आदि स्वदेशी राज्य और जागीरें सम्मिलित हैं।

साधारणतया बुन्देलखण्ड की जिन सीमाओं का वर्णन किया गया है, वे प्रातःस्मरणीय महाराज छत्रसाल के समय की सीमाएँ थीं जैसा कि नीचे के लिखे दोहे से प्रकट होता है:—

इत यमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
छत्रशाल सों लड़न की, रही न काहू हौंस॥

इतना ही नहीं, लाल कवि लिखित छत्रशाल महाराज के इतिहास से यह भी प्रकट होता है कि इस प्रबल प्रतापी महाराज के मध्यान्ह-काल में उनके राज्य की सीमाएँ मध्यप्रदेश के सागर, जबलपुर, मण्डला, आदि जिलों तक विस्तृत हो चुकी थीं। भिलसा, सिरोंज, साँची, भूपाल और सीहोर तक उनका अधिकार था। पूर्व की ओर बघेलखण्ड का विस्तृत भूभाग उनके अधीन था और श्री विन्ध्यवासिनीजी के मन्दिर के द्वार तक उनकी धाक थी। चन्देल-काल में महाराज कीर्तिब्रह्म (कीर्तिवर्मा) तथा मदन ब्रह्म (मदनवर्मा) का अधिकार इन सीमाओं को लाँघकर ग्वालियर राज्य की पश्चिमीय सीमा पर राजपूताना तक और पूर्व में काशी तथा दक्षिण में मालवा तक विस्तृत था। आगे चल कर जीजाकभुक्ति से हमारा अभिप्राय इसी विस्तृत प्रदेश से होगा।

'राजपूताना' नाम की भाँति 'बुन्देलखण्ड' नाम भी एक नवीन कल्पना है, जो ३०० वर्ष से अधिक पुरानी नहीं। विशेषतः विन्ध्याटवी में स्थित होने के कारण यह भाग 'विन्ध्येलखण्ड' नाम से सम्बोधित हुआ था, जो आगे चलकर 'बुन्देलखण्ड' नाम में परिवर्तित हो गया।

आर्य-सभ्यता के आदिम काल से बहुत प्रथम अनार्यकालीन संस्कृति के परम प्राचीनतम अभिनयों की यह भूमि लीलाक्षेत्र रही है। पांचाल देशीय इतिहास को छोड़ भारत के किसी प्रदेश का इतिहास जीजाकभुक्ति (बुन्देलखण्ड) के साथ प्राचीनता की होड़ नहीं कर सकता है। वैदिक कालीन इतिहास और साहित्य से लेकर पौराणिक, बौद्ध, जैन, मौर्य, गुप्त, हूण, कलचूरि, चन्देल, तथा आधुनिक साहित्यों और इतिहासों में इसके नगरों और नागरिकों का उल्लेख पाया जाता है। लगभग छह सहस्र वर्ष प्राचीन अनार्य चित्रकला के चित्रों से, जो मणिकपुर की वनस्थली में योगिनियों की गुफा के द्वारों पर अंकित हैं और अत्यन्त साधारण रेखाओं द्वारा ही व्यक्त किये गये हैं, इस भूमि की पुरातन अर्द्ध-सभ्यता का प्रमाण मिलता है। प्रस्तर युग के शस्त्रास्त्र यहाँ बाहुल्य से पाये जाते हैं। अर्द्ध-शिक्षित गौण, कोल, निषादों ने इसी भूभाग पर सर्वप्रथम दस्युओं को विजय कर रणचण्डी की प्यास बुझाई थी। वैदिक कालीन यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड का यहाँ ही प्रथम अभ्युदय होने के कारण यह प्रदेश 'यजुर्होति' कहा गया था, जिससे अपभ्रष्ट हो 'जीजभुक्ति' बना था।

भगवान् रामचन्द्रजी ने इसी भूभाग के चित्रकूट पर आकर निवास किया था। महर्षि वाल्मीकि और अत्रि यहीं के निवासी थे। आदिकवि वाल्मीकि ने इसी पुण्य-भूमि पर बैठकर प्राचीनतम आर्य-सभ्यता का इतिहास अपनी समुधर कविता में लिखा था। यादवेन्द्र श्रीकृष्ण भगवान् के प्रतिद्वन्द्वी शिशुपाल की शैशव-क्रीड़ा-भूमि चन्देरी नगरी ही थी।

जिस प्रबल नागवंश के आतंक से जगत् थर्राता था, जिसका प्रभुत्व राजग्रह, मधुपुरी, अवंती, नलपुर (नरवर) तक विस्तृत था, उसकी आदि राजधानी पद्मावती इसी भूभाग पर अवस्थित थी। नागवंश के पीछे मौर्यवंशीय अशोक, शुंगवंशीय अग्निमित्र तथा पुष्यमित्र, गुप्तवंशीय समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त, नरसिंह गुप्त, हूण, तूर्यराणि, मिहिरकुल, चन्देलवंशीय महाराज चन्द्रवर्मन् से लेकर प्रमर्दिदेव, चौहान पृथ्वीराज, यावनीवंश के महमूद गज़नवी, कुतुबुद्दीन ऐबक, शमसुद्दीन अल्तमश, ग़यासुद्दीन बलवन, फ़ीरोजशाह तुगलक, सिकन्दर लोदी व इब्राहीम लोदी, मुगलवंशीय बाबर, हुमायूं अकबर, महाराना संग्रामसिंह, शेरशाह सूर तथा बुन्देल-

वंशीय महाराजा वीरसिंह देव, चम्पतराय, छत्रशालादि और अन्त में महाराष्ट्र जातीय वीरों की वीरोचित लीलाओं के इतिहास की रंगभूमि भी यही देश रहा है। उत्तरीय भारत और दक्षिण पथ का कटिबन्ध होने के कारण ऐसा कोई सार्वदेशिक परिवर्तन हो ही नहीं सका जिसके अभिनय मुख्यतया इस भूमि पर न हुए हों।

प्राचीन से प्राचीनतम तीर्थक्षेत्र तथा समृद्धिशील राजधानियों तथा व्यापारिक नगरों के मन्दिरों, आवासों, गढ़ों, गुफाओं, स्तूपों, जलाशयों के अवशेष यहाँ कितने ही स्थानों में पाये जाते हैं।

देवगढ़, महोबा तथा खजुराहो के मन्दिरों और परचई तथा गोलाकोट की मूर्तियों का समूह शिल्पकलाओं के अद्वितीय दृष्टान्त हैं। अपनी प्राचीन ख्यातियों के कारण इस वीरक्षेत्र का ग्राम-ग्राम थर्मापोली कहा जावे तो अनुचित न होगा और चन्द्रब्रह्म, राहिलब्रह्म, मदनब्रह्म, कीर्तिब्रह्म, ब्रह्मजीत, आल्हा, उदल, मलखान, कर्णवीर, रुद्र प्रतापमधुकरशाह, वीरसिंह देव, उदयाजीत, चम्पतराय, छत्रशालादि अनुपम वीरों का लीलाक्षेत्र यही भूमि रही थी।

वर्षा तथा शरद काल में तो यहाँ के प्राकृतिक दृश्य ऐसे मनोरम हो जाते हैं कि उनके वर्णन के लिये 'गिरा अनयन नयन बिन बानी' का वाक्य अक्षरशः चरितार्थ होता है। कालिंजर, कोटकी, पाताल-गंगा, चित्रकूट के मन्दाकिनी तट, अनुसूया, गुप्त-गोदावरी, पन्ना राज्यान्तर्गत 'पाण्डवा' का जल-प्रपात, बरुआसागर, महोबे के कीर्तिसागर, मदनसागर, विजयसागर, ओरछा के बेतवा-तट, खजुराहो के खज्जूर-सागर और खनियाँधाना राज्य के प्रवीणसागर आदि स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य के भण्डार हैं।

इस पुनीततम वीरक्षेत्र में प्राकृतिक रमणीयता के साथ में उर्वर होने की भी अपूर्व शक्ति है। जड़ी-बूटी, कन्दमूल, अन्नादि सभी प्रकार के उद्भिज पदार्थ यहाँ प्रचुरता से होते हैं। हीरों से लेकर लोहे और प्रस्तर तक की खानें हैं। भयानक विषधर सर्पों, आरण्य महिषों और सिंहों से लेकर साधारण-से-साधारण जन्तु तक यहाँ पाये जाते हैं। जलवायु भी स्वास्थ्यप्रद है। प्राचीनतम अनार्य जातियों के वंशधरों से लेकर वर्तमान उच्चकोटि की सभ्य जातियाँ यहाँ अवस्थित हैं। साहित्य और संगीत के आचार्यों की तो यह जन्म-भूमि ही है। कविकुलगुरु महर्षि वाल्मीकि, भगवान् वेदव्यास, कृष्णद्वैपायन, भवभूति, कृष्णदत्तजी मिश्र, पंडित काशीनाथजी आदि संस्कृत के कवि यहीं जन्मे थे। अपने पूर्व जन्म के जीवन-काल की अवधि पर संतोष न करके कविकुल-गुरु महर्षि वाल्मीकिजी पुनः इसी भूमि पर प्रातःस्मरणीय श्री गोस्वामी तुलसीदासजी के रूप में अवतरित हुए थे, जिनकी भाषा काव्य में वर्णित रामायण के पुण्य प्रसाद से हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति ने अमर जीवन प्राप्त किया है। भाषा काव्य के परमाचार्य कवीन्द्र केशवदास जी मिश्र ने भी इसी देश में जन्म पाया था। इनके अतिरिक्त पद्माकर आदि अन्य शतशः भाषा-कवियों ने भी इसी देश में जन्म-ग्रहण कर अपने काव्य-कौशल से जनता को मुग्ध कर दिया था। बाबा रामदासजी व तानसेन सरीखे स्वर्गीय संगीत-कलाविद् भी इसी देश के लाल थे। संक्षेप में सभ्य समाज की उच्चतम ललित-कलाओं का यहाँ विकास हो चुका है और उनके पूर्ण ज्ञाता यहाँ जन्म ले चुके हैं।

ऐतिहासिक सामग्रियों अर्थात् मुद्राओं, शिलालेखों, दानपत्रों, सती-स्मारकों और प्राचीन ख्यातियों से यह देश परिपूर्ण है और यदि उन्हें संग्रह करने का उद्योग किया जावे तो हमारा अनुभव है कि अल्प परिश्रम और अल्पव्यय से ही बहुत बड़ी सामग्री एकत्रित हो सकती है, और कदाचित ऐसी सामग्री मिल सकती है जिससे भारतीय इतिहास पर एक अभूतपूर्व प्रकाश पड़ सकता है। न जाने कितनी अमूल्य ऐतिहासिक वस्तुएँ अभी यहाँ भूगर्भ में दबी पड़ी हैं। काव्य और विज्ञान के कितने ग्रन्थ प्राचीन वंशों के घरों में

में रद्दी की भाँति पड़े सड़ रहे हैं और दीमक के पेट में आ रहे हैं। मन्दिरों मठों, कुओं, बावड़ियों, गढ़ों, मूर्तियों की चरणचौकियों और सलीहमारकों की प्रशस्तियों में क्या-क्या रहस्य भरा पड़ा है!

गिरिराज विन्ध्याचल

श्री कृष्णकिशोर द्विवेदी

गिरिराज विन्ध्याचल को पुराणकारों ने 'समस्त पर्वतों का मान्य' कहा है तथा उसकी गणना सात कुल-पर्वतों में की गई है:—

महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमान् ऋक्षवानपि।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुल-पर्वताः॥
(महाभारत भी० प० अ० ६ श्लो० ११)

इसमें ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र को साथ रखने का विशेष कारण है। अपने दोनों सहयोगियों के साहचर्य में विन्ध्य की स्थिति इतनी सौन्दर्यमयी बनगई है कि बाण के शब्दों में उसे मेखलेव भुवः कहा जाय तो लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। हिमालय की गगनचुम्बी ऊँचाई, शुभ्रहिमानी, रहस्यमय वातावरण और विराट् नग्नता आश्चर्य और आकर्षण उत्पन्न अवश्य करते हैं, पर विन्ध्याचल की विषमता,* कामरूपता, सघन, द्रुमलतावेष्टित कंटकाकीर्ण मार्ग, वन्य पशुओं के निनाद से मुखरित गुहाएँ, कलकल निनाद करते स्वच्छ झरने पर्यटक के मन को एक प्रकार के भय-मिश्रित आनन्द से अभिभूत कर देते हैं। विन्ध्य के बनों का सौन्दर्य बड़ा ही अद्भुत है। बाण ने 'कादम्बरी' में उसका कितना सजीव वर्णन किया है:—

"विन्ध्याचल की अटवी पूर्व एवं पश्चिम समुद्र के तट को छूती है। यह मध्यदेश का आभूषण है और पृथ्वी की मानों मेखला है। उसमें जंगली हाथियों के मद-जल के सिंचन से वृक्षों का संवर्धन हुआ है। उसकी चोटियों पर अत्यन्त प्रफुल्लित सफेद फूलों के गुच्छे लग रहे हैं। वे ऊँचाई अधिक होने के कारण तारागण के समान दीख पड़ते हैं। वहां मदमत्त कुरर पक्षी मिर्च के पत्तों को कुतरते हैं, हाथी के बच्चों की सूंड़ों से मसले गये तमाल के पत्तों की सुगंध फैल रही है और मदिरा के मद से लाल हुए केरल (मलाबार) की स्त्रियों के कपोलों के समान कोमल कान्तिवाले पत्तों से वहां की भूमि अच्छादित है। वे पत्ते भ्रमण करती हुई वन देवियों के पैरों की महावर से रंगे हुए से मालूम होते हैं। वह भूमि तोतों से काटे गये अनारों के रस से गीली रहती है तथा कूदते-फांदते बंदरों से हिलाये गये कोशफल-वृक्षों में से गिरे हुए पत्तों और फूलों के कारण रंग-बिरंगी दिखाई देती है। दिन-रात उड़ती हुई फूलों की रज से वहां के लता-मंडप मलिन होगये हैं। वे वन-लक्ष्मी के रहने के महलों के समान मालूम होते हैं।+

कहने का तात्पर्य यह कि विन्ध्याचल "बड़े-बड़े जंगलों से युक्त है। विशालवृक्षों एवं कुसुमित लता-गुल्मों से आच्छादित है। उस पर चारों ओर सदैव हृष्ट-पुष्ट स्वर्णमृग, वाराह, भैंसे, व्याघ्र, सिंह, बन्दर, खरहे, भालू और सियार विचरण करते रहते हैं।×

"और विन्ध्य के चरणों में लहराती हुई नर्मदा! वह तो ऐसी प्रतीत होती है मानों हाथी के शरीर पर श्वेत मिट्टी से रेखाएँ सजाकर शृंगार किया गया है।

---

* कालिदास ने 'उपल विषमें विन्ध्यपादे' कहकर उसका वर्णन किया है।

+ कादम्बरी (ऋषीश्वर नाथ भट्ट का अनुवाद) पृ० २३, २४।

× देवी भागवत दशम स्कन्ध अध्याय २।

"रेवा (नर्मदा) का जल वन्य गजों के निरंतर स्नान के कारण मद-गंध से सुरभित रहता है और उसकी धारा जम्बू-कुंजों में विलमती हुई धीरे-धीरे बहा करती है। उसके कछारों में (वर्षा के प्रारम्भ में) पीत-हरित केशरोंवाले कदम्ब कुसुमों पर मधुकर गूँजते रहते हैं, मृग प्रथम बार मुकुलित कंदली को कुतरा करते हैं और भूमि की सौंधी गन्ध को सूँघ कर हाथी मस्त हो जाते हैं।

"जहां का प्रत्येक पर्वतशृंग अर्जुन (कवा) की गन्ध से सुरभित रहता है। स्वेत अपांगों और सजल नयनों से मयूर जहां नवीन मेघ का स्वागत करते हैं।"[1]

अमरुक की एक नायिका "चैत की उजली रात में मालती-गंध से आकुल समीरण में प्रियतम की निकटवर्तिनी होकर भी अपने पुराने प्रच्छन्न संकेतस्थल—रेवा की कछार में स्थित वेतसी तरु के नीचे जाने को बार-बार उत्कंठित हो उठती है।"

विन्ध्याचल सब भारतीय पर्वतों का गुरु (ज्येष्ठ) है। भूतत्ववेत्ताओं का मत है कि भारतवर्ष में विन्ध्य अरावली और दक्षिण का पठार ही सबसे पुरानी रचना है। "इनका विकास अजीव कल्प (Azoic Age) में ही पूरा हो चुका था। उत्तर भारत, अफगानिस्तान, पामीर, हिमालय और तिब्बत उस समय समुद्र के अन्दर थे।''[खटिका-युग (Cretaceous heriod) के] भूकम्पों से हिमालय''आदि तथा उत्तर भारतीय मैदान के कुछ अंश समुद्र के ऊपर उठ आये। हिमालय की सबसे ऊंची चोटियों पर भी खटिका-युग के जीवों और बनस्पतियों के अवशेष पाये जाते हैं, जब कि विन्ध्याचल और आडावला (अरावली) की भीतरी चट्टानों में जीवों की सत्ता का कोई चिह्न नहीं मिलता।"[2]

प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त विन्ध्याचल का धार्मिक महत्व भी कम नहीं है। विन्ध्यवर्ती तीर्थों की महिमा पुराणकारों ने मुक्तकंठ से गाई है। विन्ध्यवासिनी नर्मदा, अमरकंटक, ताम्रकेश्वर आदि अगणित तीर्थों को विन्ध्य अपनी विशाल गोद में प्रश्रय दे रहा है। 'मत्स्य-पुराण' में गंगा यमुना और सरस्वती से भी अधिक नर्मदा की महिमा का गुणगान किया है—"कनखल क्षेत्र में गंगा पवित्र है और सरस्वती कुरुक्षेत्र में पवित्र है, परन्तु गांव हो चाहे वन, नर्मदा सर्वत्र पवित्र है।

"यमुना का जल एक सप्ताह में, सरस्वती का जल तीन दिन में, गंगाजल उसी क्षण और नर्मदा जल दर्शन-मात्र से ही पवित्र कर देता है।"[3]

आगे चलकर अमरकंटक की महिमा में कहा गया है—

"अमरकंटक तीनों लोकों में विख्यात है। यह पवित्र पर्वत सिद्धों और गंधर्वों द्वारा सेवित है।''जहाँ भगवान शंकर देवी उमा के सहित सर्वदा निवास करते हैं।"[4]

जो महानुभाव अमरकंटक की प्रदक्षिणा से हजार यज्ञों का फल पाने में विश्वास नहीं रखते, न जिन्हें सौन्दर्य-तृष्णा ही सताती है, उनके लिये भी विन्ध्य की नानाविध वन्य तथा खनिज संपत्ति कम आकर्षण की वस्तु नहीं है।

यहां पाठकों के मनोरंजनार्थ 'महाभारत'[5] से एक विंध्याचल संबंधी अनुश्रुति उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकूंगा। यह कथा अगस्त्य ऋषि के महात्म्य के प्रसंग में लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर को सुनाई थी:—

जब विन्ध्य-पर्वत ने देखा कि सूर्य उदय और अस्त के समय स्वर्णमय पर्वतराज मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं तब उसने सूर्य से कहा, "हे सूर्य, जैसे तुम प्रतिदिन मेरु की प्रदक्षिणा करते हो, वैसे ही हमारी भी प्रदक्षिणा करो।"

१—मेघदूत २०, २४

२—'भारत भूमि और उसके निवासी' पृ० ११

३—अध्याय १८६ श्लो० १०,११

४—मत्स्य अध्याय १८६

५—वन पर्व अध्याय १०४

पर्वतराज के ऐसे वचन सुनकर सूर्य बोले, "मैं अपनी इच्छा से थोड़े ही मेरु की प्रदक्षिणा करता हूँ। जिन्होंने यह जगत् बनाया है, उन्हींने मेरा यह मार्ग निश्चित कर दिया है।"

सूर्य के ऐसे वचन सुनकर विन्ध्य को अत्यन्त क्रोध हुआ और सूर्य तथा चन्द्रमा के मार्ग को रोकने की इच्छा से वह अपने को ऊँचा उठाने लगा। यह देख तब देवगण एक साथ उसके पास आये और उसे इस कार्य से रोकने लगे। परन्तु उसने एक न सुनी। तब सब देवगण तपस्वी और धर्मात्माओं में श्रेष्ठ अद्भुत पराक्रमी अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुंचे और उन्हें अपना अभिप्राय कह सुनायाः—"हे द्विजोत्तम, पर्वतराज विन्ध्य क्रोध के वशवर्ती होकर सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों के मार्ग को रोकना चाहते हैं। हे महाभाग, आपके सिवा उन्हें और कोई नहीं रोक सकता। इसलिये कृपाकर उन्हें रोकिये।"

देवताओं के वचन सुनकर अगस्त्य ने अपनी पत्नी लोपामुद्रा को साथ लिया और विन्ध्य के निकट पहुँचे। उनके स्वागत के लिये विन्ध्य उनके पास आये। तब ऋषि ने विन्ध्य से कहा, "हे गिरिश्रेष्ठ, हम विशेष कार्य से दक्षिण जाना चाहते हैं, इसलिये मुझे जाने के लिये मार्ग दो और जब तक हम लौट न आयें तब तक ऐसे ही हमारी प्रतीक्षा करते रहो। जब मैं आजाऊँ, तब तुम इच्छानुसार अपने को बढ़ाना।

इस प्रकार वचन देकर अगस्त्य दक्षिण को चले गये। फिर वहाँ से लौटे ही नहीं।" और बेचारा विन्ध्य अब तक सर झुकाये उनकी बाट जोह रहा है।

यह कथा प्राचीन काल से ही काफी प्रसिद्ध रही है। कालिदास ने भी 'रघुवंश' में 'विन्ध्यस्य संस्तंभयिता महाद्रेः' कह कर इसी कथा की ओर संकेत किया है। देवी भागवत-कार ने भी उसे उद्धृत किया है, यद्यपि श्रोताओं का ख्याल करके नमक-मिर्च का पुट भी उसमें दे दिया है। इस कथा का अभिप्राय क्या है, यह तो ठीक नहीं कहा जा सकता; पर संभव है 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' अथवा सच कहें तो 'आर्यमयम्' के उद्देश्य को पूरा करने के लिये उत्सुक आर्यजनों ने दक्षिण-देश की दुर्गमता की थाह लेने के विचार से जो प्रयत्न किये थे, उन्हीं का चित्रण इस कथा में किया गया हो।

जो हो, विन्ध्याचल सचमुच भारत का पितामह है। इस पृथ्वी के लाखों-करोड़ों वर्ष आलोड़न-विलोड़न और इस जगत् के जाने कितने संघर्षण-परिवर्तन उसने अपनी आँखों से देखे हैं। 'अजीव कल्प' की लाखों वर्षों की विराट् शून्यता का वह मौन द्रष्टा रहा है और 'सजीव कल्प' के गगन-चुम्बी वृक्षों, वनस्पतियों तथा दानवाकार वन्य जन्तुओं को न केवल उसने अपने नेत्रों से देखा ही है, उन्हें गोद में भी खिलाया है।

'खटिका युग' के कितने भीम भयंकर भूकंप, जरठा धरणी के कितने रूप-परिवर्तन, कितने महा-सागरों का अन्त और कितनी स्थलियों के उद्भव को उसने कौतुक के साथ देखा है। आज के शैलराट् हिमालय को अभी उस दिन सौरीगृह में देख वह मुस्कराया था और अब उस कल के शिशु हिमालय को आसमान से बातें करते देख वह अगस्त्य के लौटने की प्रतीक्षा में दक्षिण की ओर बार-बार देखने लगता है। पर हा!

"अद्यापि दक्षिणोद्देशात् वारुणिर्न निवर्तते।"

"आज भी अगस्त्य दक्षिण से लौटते दिखाई नहीं देते।"

मानव नाम के इस विचित्र प्राणी को अस्तित्व में आते और चारों ओर फैलते उसने देखा है। कितने गर्वोद्धत विजेताओं की अदम्य लिप्साएँ उसकी छाती को रौंदती हुई चली गई हैं। और कितने हतदर्प परन्तु स्वाभिमानी पराजितों ने प्राणों की बाजी लगा कर उस लिप्सा के दाँत तोड़ने का महोद्यम किया है—इसका सारा लेखा-जोखा उसके पास है।

हमारा बुन्देलखण्ड इस वृद्ध पितामह की गोद में बैठ कर, शत-शत स्नेह-निर्झरियों से अभिषिक्त होकर गर्वित है।

और उसकी चट्टानों को तोड़-फोड़ कर उछलती-कूदती नर्मदा तो मानों युग-युग की अनुभूति की वाणी-सी अपनी वन्यासे चुप्पी के कगारों को तोड़ती हुई हृदय के अतल-गंभीर देश से बहती चली आती हो!

हे पुरातन गिरिश्रेष्ठ,
शैलराज हिमालय के हे ज्येष्ठ बंधु,
तुम्हें कोटि-कोटि प्रणाम!

टीकमगढ़
(बुन्देलखण्ड)

धसान

डा० रघुनाथसिंह

हमारे विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली भूगोल की पुस्तकों में भारतवर्ष की बड़ी-बड़ी नदियों के उद्गम, लम्बाई तथा संगम का वृतान्त आपको मिलेगा। बुन्देलखण्ड की नदियों में चम्बल, बेतवा, यमुना, नर्मदा आदि का विवरण भी मिलेगा; परन्तु दशार्ण या धसान का नाम कदाचित् ही किसी ऐसी पुस्तक में हो। यह कोई ऐसी बड़ी नदी नहीं है, न कोई बड़ा नगर ही इस पर स्थित है और न धर्मगुरुओं ने ही इसके माहात्म्य का वर्णन किया है। तब इलाहाबाद या लखनऊ में बैठ कर समस्त संसार का भूगोल लिखने वाले प्रोफ़ेसर दशार्ण को एक बड़े नाले से अधिक कैसे मान लें? अपने इतिहास से अनभिज्ञ अधिकांश दशार्णी भी तो इसके महत्त्व को नहीं जानते।

किसी नदी के वर्णन को लिखने की प्रचलित सामान्य रीति यह है कि आप उनके उद्गम-स्थान का पता दीजिये, लम्बाई-चौड़ाई बताइये, सहायक नदियों के नामों का उल्लेख कीजिये, किनारों के नगरों के नाम और जनसंख्या के आँकड़े दीजिये और अन्त में उसका किसी महान सरिता या सागर में लोप कर दीजिये। परन्तु मेरी दृष्टि में ऐसा वर्णन उसके कंकाल का वर्णन होगा। वस्तुतः सरिताएँ प्रकृति की जीवनवाहिनी धमनियां हैं। सरिताओं का जीवन अपने कूलों पर आश्रित प्राणियों और वनस्पतियों के जीवन, इतिहास और संघर्ष से रंगा रहता है, और इस कारण किसी नदी का वर्णन लिखने के लिये लेखनी उठाना कोई सहज काम नहीं।

दशार्ण पर कई बार, कई जगह जिक्र चला, एक-दो बार दशार्णों के सामने भी। एक सज्जन ने कहा, "आखिर दशार्ण से आपको ऐसा क्या मोह है!" एक बुन्देलखण्डी भाई ने कहा, "दशार्ण से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण तो बेतवा है, चम्बल है।" मैंने कहा, "आपकी बात ठीक है। बुन्देलखण्ड की प्राचीन राजधानी और महारानी गणेशकुँवरि के भक्ति-प्रताप के कारण मध्यदेश के साकेत का पद पाने वाली ओरछा-नगरी इसके किनारे पर है और फिर 'कलयुग की गंगा' भी तो यही है। निस्संदेह बेतवा गौरव-शालिनी है।" एक और सज्जन ने कहा, "नर्मदा के प्राकृतिक वैभव के सामने दशार्ण क्या चीज है!" इनका कथन भी सोलहों आना सही है। नर्मदा के किनारे मेरी किशोरावस्था के नौ वर्ष बीते और मैं कह सकता हूँ कि नर्मदा सचमुच अनुपम है। साथ ही इसके दोनों कूल दो संस्कृतियों की सीमाएँ हैं। उत्तर की ओर से आर्य-संस्कृति और दक्षिण से द्रविड़ संस्कृति का सम्मेलन-स्थल यही है और 'नर्मदा का कंकर, सो उठाओ वह शंकर'—इतना बड़ा धार्मिक गौरव भी उसे प्राप्त है; परन्तु फिर भी दशार्ण महान् है। भारतवर्ष की नदियों में जो सौभाग्य

सिन्धु को प्राप्त है, वही दशार्ण को भी प्राप्त है। सिन्धु जहाँ बहती है, उस एक प्रान्त का नाम 'सिन्ध' है और वहाँ के निवासी सिन्धी। इसी प्रकार जहाँ दशार्ण बही है, वह देश दशार्ण कहा जाता था और वहाँ के निवासी दशार्ण। यह सौभाग्य न तो गंगा को प्राप्त है, न बेतवा को। इसी कारण से दशार्ण का पल्ला भारी पड़ता है।

अब आप बड़ागाँव के किले, ऐरोरा के पहाड़, दधगाँव की टौरिया, या किसी ऊँचे स्थान पर खड़े हो जाइये और अपने आसपास की प्राकृतिक छटा देखिये। वह सामने दशार्ण लहराती जा रही है। किसी ओर नाले तेजी से बहते हुए दशार्ण में आत्मसात् होने के लिये जा रहे हैं। उस ओर छोटे-छोटे गांव हैं। हरे-हरे धान के खेत या बसन्त में सुन्दर पलास के फूलों से सजा केसरिया वन दिखाई देगा। कहीं कोई गढ़ी या पुराना दुर्ग आपके हृदय में अतीत की स्मृति उत्पन्न करेगा।

हां तो यह दशार्ण है। इसके आसपास का देश दशार्ण है, परन्तु दशार्णों का पता कहां है! दशार्ण नाम से अब कोई जनपद नहीं है, न कोई जन। प्राचीन सुसंस्कृत दशार्णों की सन्तानें अब भी इसके अंचल में हैं, जिसे आजकल 'कांठर' कहते हैं परन्तु इन्हें अपने भूत का पता नहीं, वर्तमान का विचार नहीं, भविष्य की कौन कहे! नाना जातियों में बँटे, रूढ़ियों और अंधविश्वासों में फंसे, अधिकांश अपढ़ (परन्तु आजकल के पढ़े लिखों की अपेक्षा कहीं खरे) मानव यहाँ बसते हैं। कोटरा के पास दशार्ण के एक टापू पर हृष्ट-पुष्ट गोरे रंग का नीली आँखों वाले अहीर-किशोर और काले रंग के ढीमार के लड़कों को देखकर आप कह उठेंगे कि यहां आर्य-रक्त भी है और अनार्य भी। गांव में जब आप लोधियों और काछियों को देखेंगे तो द्रविड़ वंश पर आपका ध्यान जा सकता है, जो इस बात का प्रतीक है कि इसके कूलों पर आदिम, द्रविड़, भारतीय आर्य और आर्यों में एक के बाद एक ने आकर डेरे डाले होंगे।

कोटरा के ताल और मन्दिर, बड़े गांव का मन्दिर और ऐसी कितनी ही वस्तुएँ आपको पुरातत्व की ओर ले जायेंगी। इन्हें अभी तक समझने का यत्न नहीं किया गया। इतिहास में इसका वर्णन ठीक रूप में महाराजा वीरसिंह देव प्रथम के समय में पाते हैं, जब कि यहां के शासक लोधियों से बुन्देलों ने इसे अपने अधीन किया। अब कांठर में बुन्देला जागीरदारों की संख्या काफ़ी है और उनमें अब भी वही पुराना बांकपन और गर्व मिलेगा।

मेलों और साप्ताहिक हाटों में जिस उत्साह से लोग यहाँ एकत्र होते हैं वह और जगह कम मिलेगा। दूधदेई के मेले में बारह-पन्द्रह हजार लोग एकत्र हो जाते हैं। दिन-रात गाना-बजाना चलता रहता है। यद्यपि व्यापार की दृष्टि से बिक्री दो-तीन हजार तक ही हो पाती है, लेकिन ऐसे मेलों और हाटों में आप कुछ देहाती छैला देख सकेंगे। बालों में तिली का तेल डाले, कामदार वास्कट की जेब में मखमली बटुवा, जिसके फुदने बाहर लटकते होंगे, हाथ में बांसुरी या अलगोजे लिये यहां-वहां पत्थरों पर बैठे या घूमते मिलेंगे।

सेपुरा के अस्सी प्रतिशत व्यक्तियों ने रेल नहीं देखी और शायद एक वर्ष में एकाध ही पत्र यहाँ आता है।

सुना है कि बनारस का प्रभात बहुत ही प्रशंसनीय होता है। मांडव की रात भी मैंने देखी है, परन्तु यदि आप प्राकृतिक सौन्दर्य देखना चाहते हैं तो दशार्ण की शरद में रात, बसन्त में सन्ध्या और वर्षा में प्रभात देखिये। मेरे भावों का समर्थन श्री राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'तिब्बत में सवा वर्ष' में एक जगह किया है। उन्हीं के शब्दों में, "दशार्णों का देश बहुत सुन्दर है।" क्या ही अच्छा हो, यदि कोई उत्साही व्यक्ति इस गौरवपूर्ण सरिता का जीवन-चरित लिखे।

ओरछा-राज्य की पश्चिमी सीमा धसान के किनारे-किनारे लगभग ७० मील चली गई है और इसे धसान का मध्य-भाग कहा जा सकता है। इन्हीं ७० मीलों से मेरा परिचय है। सन् १९३८ से १९४१ तक बारह बार उसकी यात्रा की है। इसके पूर्वी किनारे पर बिजावर, पन्ना, चरखारी और गरौली की सीमाएँ हैं।

एक साधारण पहाड़ी नदी के रूप में ककरवाहा के दक्षिण से यह राज्य में प्रवेश करती है। दोनों ओर कवा के हरे-हरे वृक्ष झुके हुए हैं। इन ७० मीलों में धसान एक-सी नहीं बहती। कहीं बल खाती है तो कहीं तीव्र और कहीं मन्द गति से बहती है, कहीं पत्थरों से टकराकर उछलती-कूदती है तो कहीं दो-तीन-चार धाराओं में फूट कर बहती है और फिर एक हो जाती है। वर्षा में यह एकदम पूर आती है। एक गरजती हुई पानी की दीवार, जो सामने आये पेड़-पत्तों, पशुओं और चपेट में आ जाय तो मनुष्यों को भी समेटती हुई बढ़ती है। इस पर छाई काली घटाएँ इसके रूप को और भी उग्र कर देती हैं। तब इसके दोनों कूलों के बीच केवल जलराशि ही दिखाई देती है।

अब भी इसके कूल हरे-भरे हैं। तरह-तरह के वृक्ष और लताएँ लहराया करती हैं। उस पार सागौन भी होता है। एक बार ककरवाहा से प्रातः चला। गूलर की भीनी-भीनी सुगन्ध यहाँ मिली। गूलर में भी सुवास होती है, यह सोचता हुआ आगे बढ़ रहा था कि एक कोदों के हरे खेत में 'हू हू' की आवाज सुनी। क्या देखता हूँ कि एक सींगवाले चीतल (स्वर्णमृग) को बन्दर घेर कर छेड़ रहे हैं। सुन्दर मृग सभी ओर मोरचा बांधने का यत्न करता था, परन्तु बन्दर सामने नहीं पड़ते थे। घेर-घेर कर सता रहे थे। मेरे पास पहुँचने पर बन्दर भाग गये और चीतल जरा ठिठककर चौकड़ियाँ भरता हुआ भाग गया। दशार्ण-देश का विशेष वनचर चीतल ही है। बहुत सुन्दर भोली आँखों वाला शाखाश्रंगी जीव है। इनके छोटे-बड़े यूथ आपको कई जगह मिलेंगे। इन पर एक पुस्तक लिखी जा सकती है। इनके अतिरिक्त रोज, पठारों पर छिकरें, घाटियों में सूअर भी मिलेंगे। उस पार कुछ दूरी पर रीछ और सांवर अधिक हैं।

कोटारा के पास महुओं पर हजारों जंगली कबूतरों ने डेरा डाल रक्खा है। खलिहानों के दिनों में आप इन्हें झुंडों में दाना चुगते पायेंगे। ये बहुत कम डरते हैं। जगह-जगह मार्ग में तीतर के जोड़े इधर-से-उधर तेजी से भागते दिखाई देते हैं, और रेल के डब्बों की तरह एक पाँत में दौड़ लगाते हुए बटेर भी। आप आगे बढ़िये, परन्तु किसी करौंदी की झाड़ी में से चार-छह छोटी-छोटी आंखें आपको देखती रहेंगी। जगह-जगह मोर, रंग-बिरंगी चिड़ियाँ तथा सुनसान रात में कभी-कभी सरसराते उल्लू भी आपका ध्यान आकृष्ट करेंगे।

दशार्ण के किनारे से कुछ दूरी पर छोटे-बड़े तालाबों का क्रम चला जाता है। शीतऋतु में यहाँ पक्षियों के डेरे रहते हैं। साइबेरिया और ध्रुव-देश की चिड़ियाँ व्यूह रचती हुई पाँतों में आ-आकर ठहरती और कुछ दिनों बाद चली जाती हैं। इनमें हमारे स्थानिक चकवों के जोड़े घूमते-फिरते हैं। चकवी ज़रा पीछे रह जाय तो चकवा मुड़कर देखता जाता है और यदि कारण-वशात् चकवी रुक जाय तो चकवा वापस लौट आता है। चकवा की उस चितवन में जो प्रेम झलकता है, उसका संसार के सभी प्रेम-काव्य भी वर्णन नहीं कर सकते। और देखिये कुछ दूर एक सारस का जोड़ा खड़ा है। इसे संस्कृत में 'क्रौंच' कहते हैं। लम्बी-लम्बी पतली टाँगें, सुडौल पतली ग्रीवा और बहुत शान्त तथा प्रेम-मदभरी चाल इनकी अपनी खास बात है।

इस प्रकार दशार्ण निरन्तर सजीव है और उसके कूलों पर की प्राकृतिक सुषमा यात्री को पग-पग पर आनन्दित करती रहती है। इस महा-प्राण सरिता के अंचलों में जातियाँ उठीं और गिरीं; स्वार्थों के संघर्ष चले और कुछ अपने चिन्ह छोड़ गये, कुछ का पता नहीं कहाँ गये।

परन्तु दशार्यां आज भी वैसी ही उछलती-कूदती, पहाड़ियों, चट्टानों और वृक्षों में अपना मार्ग बनाती बह रही है। जीवन इसे ही कहते हैं।
टीकमगढ़, (सी० आई०)]

सन् २००० ईस्वी का बुन्देलखण्ड

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

आइये, हम लोग स्वप्न देखें। कल्पना तो कीजिए, सन् दो हज़ार में—यानी आज से सत्तावन वर्ष आगे चलकर—हमारे प्रान्त बुन्देलखण्ड की क्या दशा होगी।

संसार में स्वप्नों की बड़ी ज़बरदस्त शक्ति है और जगत् के निर्माण में स्वप्नदर्शियों का भारी हाथ है। दुनियवी आदमी अपने संकुचित दृष्टि-कोण से वर्तमान की ओर अपने स्वार्थ की ही बात सोचते हैं, और यदि कभी वे भविष्य की चिन्ता करते हैं तो अधिक-से-अधिक अपने कुटुम्ब की। उनके जाने दुनिया भाड़ में जाय, उन्हें इससे क्या गरज़? ऐसे आदमी चींटी और मक्खियों की तरह पैदा होते और मर जाते हैं, पर स्वप्नदर्शियों की बात निराली है। वटवृक्ष के बीज की तरह वे अपने विचारों के बीज छोड़ जाते हैं, जो समय पाकर अंकुरित होते और महान वृक्ष का रूप धारण कर लेते हैं। संसार से आप स्वप्नदर्शियों को निकाल दीजिये तो फिर बाकी क्या रह जायगा? भाँग के फोक की तरह एक निरर्थक चीज़।

विमान का स्वप्न

पुष्पक विमान की कल्पना तो बहुत पहले की है, तीन हज़ार वर्ष हुए एक व्यक्ति ने यह स्वप्न देखा था कि मनुष्य आकाश में विचरण करेगा, और उसने अपने लिये पर भी बनवाये थे! उसके लड़के ने इन परों को लगा कर उड़ने की कोशिश की और वह समुद्र में गिर पड़ा। तीस पीढ़ियों बाद लियोनार्डो विन्ची ने विमानों के चित्र बनाए और उनके साथ एक टिप्पणी लिखी—There shall be wings "अर्थात् कभी-न-कभी मनुष्य परों का आविष्कार कर ही लेगा।"

लियोनार्डो अपने प्रयत्न में असफल हुआ और उसकी मृत्यु हो गई; पर जगत् के जीवन ने उसके स्वप्न को जीवित रक्खा। पीढ़ियाँ गुजरती गईं, लोगों के मन में यह आशङ्का होने लगी कि विमानों का स्वप्न बिल्कुल झूठा है। अगर ईश्वर को यह मंजूर होता कि आदमी उड़े तो उसे पर क्यों न दिये होते! और फिर एक दिन ऐसा भी आया कि मनुष्य आकाश में निर्भयता-पूर्वक विचरण करने लगा। तीन सहस्र वर्ष बाद स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ। व्यक्तियों की मृत्यु होती है, पर स्वप्न जीवित रहते हैं। कोई महान् साधक आकर उनकी सूखी हड्डियों में जान डाल देता है। भगीरथ की इक्कीस पीढ़ी पहले उनके लकड़-दादा ने गंगाजी के लाने का स्वप्न देखा था, तब कहीं भगीरथ आगे चल कर अपनी इंजी-नियरी में सफल हुए। आज तो गंगा माता करोड़ों ही प्राणियों को जीवन दे रही हैं। तब से 'भगीरथ' शब्द ही विशेषण बन गया है—यथा 'भगीरथ' प्रयत्न।

हमारे देश को—देश को ही नहीं प्रत्येक प्रान्त, जनपद और नगर को—स्वप्न-दर्शियों की आवश्यकता है। कल्पना के आकाश में विचरण करना और फिर भी अपने पैर ज़मीन पर रखना—यानी वास्तविकता को न भूलना—यह अत्यन्त ही कठिन कार्य है। यह पूर्व जन्म के पुण्यों का परिणाम है—कठोर साधनाओं का फल। वैसे हवाई महल बनाने में क्या लगता

है। जिस कल्पना के पीछे दृढ़ इच्छा-शक्ति नहीं, वह निरर्थक ही नहीं, हानिकारक भी है।

हमें प्रत्येक ग्राम के लिए ऐसे युवक चाहियें, जो कल्पनाशील हों। आगे की सोच सकें और साथ ही अपनी कल्पनाओं को साकार रूप में देखने के लिये तन, मन, धन से प्रयत्न भी कर सकें। जब हम कोई कल्पना करते हैं तो सूक्ष्म रूप से वह आकाश में व्याप्त हो जाती है। उसे आकाश से उतार कर शरीर धारण कराना, यही कठिन कार्य है।

तो आइये, हम लोग कल्पना के आकाश में कुछ देर के लिये विचरण करलें।

यात्री दल

वसन्त ऋतु का प्रारम्भ है, सन् दो हज़ार ईस्वी का फ़रवरी महीना है। सामने विशाल वक्षस्थल और वृषभ स्कंध वाले पच्चीस युवकों की वह टोली वेत्रवती-तट की यात्रा के लिये निकल पड़ी है। दो-तीन प्रौढ़ व्यक्ति भी उनके साथ हैं। दस-बारह मील रोज़ चलने का इनका नियम है। बेतवा के उद्गमस्थान से लेकर ओरछा तक यात्रा करने का इनका प्रोग्राम है। बेतवा माता का जीवन-चरित इनके पास है, जिसमें बेतवा-तट के तमाम सुन्दर स्थलों की फ़ोटो भी हैं। उन स्थलों पर विश्राम-स्थल तथा धर्मशालाओं का निर्माण होगया है। रामनौमी के दिन इन लोगों को ओरछा पहुँचना है।

दूसरी टोली दशार्ण (धसान), तीसरी केन और चौथी जामनेर के तट पर भ्रमण करेगी। हमारे विद्यालयों ने अपना पुराना अहमकपन (अर्थात् वसन्त ऋतु में छात्रों को जेलखाने यानी स्कूल की चहार दीवारी में बन्द करना) कभी का छोड़ दिया है। वसन्त ऋतु में पांच सप्ताह की छुट्टियाँ हुआ करती हैं। इसी ऋतु में वसन्त-व्याख्यान-माला का प्रबन्ध होता है, इस लिये जितना उपयोगी व्यावहारिक ज्ञान वे स्कूल में साल भर में नहीं प्राप्त कर पाते, उससे कहीं अधिक डेढ़ महीने के भ्रमण में प्राप्त कर लेते हैं। प्रायः इन छात्रों की यात्रा ग्रामों में होकर होती है, इसलिये ग्रामवासियों के जीवन में भी रस का सञ्चार होता चलता है। ग्राम-गीत और ग्राम-नृत्य कभी के पुनर्जीवित हो चुके हैं, और इन विद्यार्थियों में तो कितने ही ग्राम-गीतों के प्रेमी हैं।

कृषि महाविद्यालय

ये विद्यार्थी ओरछे के कृषि महाविद्यालय के छात्रालय में जाकर निवास करेंगे। जिस समय अन्य प्रान्तों से ढेर-के-ढेर बी० ए० और एम० ए० निकल रहे थे—सब एक दूसरे के समान, टकसाल से निकले हुए रुपयों की तरह—तब बुन्देलखण्ड के बुद्धिमान शिक्षा-विशेषज्ञों ने अपनी परिस्थिति के अनुकूल और चारों ओर की जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले कृषि-विद्यालय की स्थापना की थी। (Workers Training School) ग्रामीण कार्यकर्ताओं का ट्रेनिङ्ग स्कूल भी यहाँ पर है और तुङ्गारण्य में—जहाँ पहले तुङ्ग ऋषि तपस्या करते थे—अब प्रान्त की सबसे बड़ी गोशाला है।

जामनेर-बेतवा-संगम

जामनेर-बेतवा-संगम इसी वन में हुआ है और वहाँ स्वास्थ्यागार या सेनीटोरियम बना दिया गया है। देश-विदेश के सैकड़ों यात्री वहाँ आकर ठहरते हैं। आज से चालीस वर्ष पहले ही राज्य ने यह निश्चय कर लिया था कि अनावश्यक वृक्षों को छोड़ कर एक डाली भी इस वन में से न कटने पावेगी। प्राकृतिक और कृत्रिम सौन्दर्य का यहाँ अद्भुत मेल पाया जाता है, और तुङ्गारण्य को लोग जर्मनी के ब्लैकफ़ोरेस्ट का एक सूक्ष्म संस्करण मानने लगे हैं।

और देखिये, गोधूलि वेला के समय में यह वन कितना सुन्दर प्रतीत होता है। जिन्होंने पचास वर्ष पहले के बुन्देलखण्डी पशु देखे थे, उनकी आँखें सामने के गाय-बैलों को देखकर चौंधिया जावेंगी। तुलना के लिये आप उनके चित्र संग्रहालय में देख सकते हैं। कहाँ छटांक भर दूध देने वाली, सूखे थन और रूखे बदन वाली चित्र-लिखित गाय और कहाँ ये सामने

खड़ी हुई गंगा, जमुना, बेतवा और जामनेर नामक गो-माताएँ और उनके घड़ा भर दूध देने वाले स्तन! घी अब ढाई सेर का बिकता है और दूध बीस सेर का।

भारतवर्ष का उपवन

इस नाम को अब बुन्देलखण्ड ने सार्थक कर दिया है। इस प्रान्त में सरोवरों तथा उपवनों की भरमार है और यहाँ से फल भारत के भिन्न-भिन्न भागों को भेजे जाते हैं। यहाँ के आमों, अमरूदों, अङ्गूरों और नारंगियों तथा पपीतों ने आस-पास के ज़िलों के बाज़ार पाट दिये हैं।

ग्राम-विद्यालय

यहाँ के ग्राम-विद्यालय उपवनों में अथवा नदियों या सरोवरों के तट पर स्थित हैं। डेनमार्क के ग्रामीण विद्यालयों की तरह की शिक्षा-संस्थाएँ कायम करने का सौभाग्य पहले पहल इसी प्रान्त को प्राप्त हुआ था, और इसी कारण इस विषय में यह प्रान्त आज सबसे आगे है। यहाँ आप ग्राम-गीत सुन सकते हैं और ग्राम-नृत्य भी देख सकते हैं। यहाँ विद्यार्थियों को ऐसी व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है, जिसका ग्राम-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ये कुंजें—वृक्षों की सघन पंक्तियाँ-जो सामने आपको दीख पड़ रही हैं, यहाँ के भूतपूर्व विद्यार्थियों की ही लगाई हुई हैं। मीलों तक चले जाइये, आपको सड़क के दोनों ओर मौलिश्री के सुगंधमय वृक्ष ही नज़र आवेंगे! और कई सड़कें तो ऐसी हैं जिनके दोनों ओर गुलाब के खेत के खेत चले गये हैं। बरुआ सागर, जतारा और नंदनवाड़ा ने आज भारतभर में कीर्ति प्राप्त करली है। वसन्त ऋतु में भ्रमण करने के लिये दूसरे प्रान्तों के सहस्रों मनुष्य इस प्रान्त को आया करते हैं।

महापुरुषों के स्मारक

महापुरुषों के स्मारक स्वरूप यहाँ उपवनों का निर्माण किया है। जिन डाक्टर महोदय ने इस प्रान्त को मलेरिया से लगभग मुक्त ही कर दिया, उनकी स्मृति में एक बगीचा डाला गया था, वह अब खूब फूलने-फलने लगा है। हैज़े का इस प्रान्त में अब नामोनिशान नहीं। पाँच वर्ष पहले कॉलरे के दस-बीस केस किसी ज़िले में होगये थे। नतीजा यह हुआ कि वहाँ के डिस्ट्रिक्ट मैडीकल अफसर बर्खास्त कर दिये गये, सारे का सारा स्टाफ़ बदल दिया गया और प्रान्त के स्वास्थ्य-विभाग में तहलका मच गया।

साहित्य-संघ

यदि आपकी रुचि साहित्य की ओर है तो यहाँ के प्रान्तीय साहित्य-संघ का कार्यालय देख लीजिये। संग्रहालय भी उसी के साथ है और चित्रशाला (Portrait Gallary) भी साहित्य-सेवियों की चित्रशाला के भी दर्शन कर लीजिये। यह स्वर्गीय कृष्ण बल्देव वर्मा का चित्र है, जो उन दिनों बुन्देलखण्ड के पीछे पागल थे, जब अन्य लोग इस प्रान्त की बिल्कुल उपेक्षा कर रहे थे। ये मुंशी अजमेरीजी हैं, जिन्हें पाकर यह भूमि धन्य हुई थी और ये बुन्देल भूमि-कोकिल घासीरामजी 'व्यास' हैं, जिनका अल्पायु में ही स्वर्गवास होगया था। और भी बीसियों चित्र हैं।

इतिहास-परिषद्

इतिहास-परिषद् का कार्यालय भी इसी संस्था से संबद्ध है! ऐतिहासिक चित्रशाला अलग ही है और मूर्तियों का संग्रहालय अलग है। महाराज वीरसिंह देव (प्रथम), महाराज छत्रशाल इत्यादि के चित्र यहाँ आप देख सकते हैं। सबके जीवन-चरित भी प्रकाशित हो चुके हैं।

ऋतुओं के उत्सव

प्रत्येक ऋतु के उत्सव यहाँ मनाये जाते हैं। वर्षोत्सव ने तो इस प्रान्त के जीवन का पुनर्निमाण करने में बड़ी भारी सहायता पहुँचाई है। आज से पैंतालीस वर्ष पहले वर्षोत्सव का श्रीगणेश किया गया था और प्रत्येक बालक, युवा और वृद्ध पुरुष ने अपने-अपने नाम के पेड़ लगाना प्रारम्भ किया था। प्रवेशिका परीक्षा में तो यह नियम कर दिया गया था कि जो विद्यार्थी अपने द्वारा लगाये हुए दस वृक्ष न दिखला सके तो उसे प्रमाण-पत्र ही नहीं मिलता

था ! बेलों और कुंजों तथा पुष्पों के लगाने का कार्य कन्याओं और महिलाओं के सुपुर्द कर दिया गया था। सघन छाया वाले अथवा फलप्रद वृक्षों का काटना भयंकर जुर्म करार दे दिया गया। पैंतालीस वर्ष की इस साधना का परिणाम आज हमें दीख पड़ रहा है। यहाँ पानी वक्त पर बरसता है, अन्य ऋतुएँ समय-समय पर आकर अपना प्रभाव दिखलाती हैं और लोग 'अकाल' शब्द को ही भूल गये है ! यहाँ के किसी युवक ने दुर्भिक्ष देखा ही नहीं, हाँ बूढ़े बाबा जब उनका ज़िक्र करते हैं तो युवक इस बात पर विश्वास ही नहीं कर पाते कि कभी यहाँ पाँच-छह सेर के गेहूँ बिकते थे !

बाबा से बातचीत

देखिये, सामने एक वृद्ध महोदय चले आ रहे हैं। इनसे बातचीत कर लीजिये। ये पिचहत्तर वर्ष के तो होंगे।

प्रश्न—कहा कक्काजू, कहाँ घूम रहे हो ?

उत्तर—यों ही इस कुंज की सैर करने निकल आया हूँ। श्यामा गाय भी साथ में है। वह यहीं-कहीं चर रही है। दस-बारह सेर दूध दे देती है। घर का काम चल जाता है।

प्रश्न—बब्बा, आप तो पचास-साठ वर्ष पहले की बात कह सकते हैं। कुछ सुनाइये तोसही।

बाबा मानो एक पुराने कष्टप्रद स्वप्न की याद करने लगे और फिर दुखित होकर बोले—

"उन दिनों की बात मत पूछो भय्या ! यह प्रान्त उन दिनों अत्यन्त दीन अवस्था में था। आज तो श्यामा गाय की तरह की गोमाताएँ घर-घर में पाई जाती हैं, पर उन दिनों तो इनके दर्शन दुर्लभ थे। राजा-महाराजाओं की गोशालाओं में भी उनका नामोनिशान मिट चुका था। बच्चों को दूध तो क्या, मठा या छाछ भी नहीं मिलते थे ! हमारे घर पर एक बार ऐसे अतिथि आये जो गोघृत खाने की प्रतिज्ञा लिये हुए थे। सच कहता हूँ, आसपास के दस-बीस ग्रामों में तलाश करने पर भी पाँच-सात सेर गोघृत नहीं मिला ! मिलता कहाँ से, गायें तो आध-आध पाव दूध देने वाली थीं।

प्रश्न—और उन दिनों के स्कूल ?

उत्तर—स्कूल क्या थे, अस्तबल थे। कहीं पर हरियाली दीख नहीं पड़ती थी ! उपवन नष्ट हो रहे थे और विद्यार्थी ईंट-पत्थर के जेलखानों में ऊँघते हुए मास्टरों से पढ़ा करते थे। स्कूलों का वक्त था दस बजे से चार बजे तक का, जो भारतीय गुलामी का सूचक था ! स्कूलों में सैकड़ों विद्यार्थी ऐसे थे, जो नदी के निकट रहते हुए भी तैरने के शौकीन नहीं थे ! सौन्दर्य की भावना का उनमें उदय ही नहीं हुआ था ! और अध्यापक लोग माशे अल्लाह थे। किसी के तोंद निकल आई थी तो किसी के गाल पिचके हुए थे, और तेज तो किसी के चहरे पर था ही नहीं। आज तो इस प्रान्त में अध्यापकों को सबसे अधिक वेतन मिलता है, पर उन दिनों ग्राम स्कूल के अध्यापक आठ-दस रुपये ही पाते थे ! सवेरे से ट्यूशन करते थे। और क्लास में आकर सोते थे।

प्रश्न—सोने वाले अध्यापक ?

उत्तर—और क्या आठ रुपये में आपको जीते-जागते अध्यापक मिल सकते थे ? आज की-सी हालत थोड़े ही थी। आज तो सर्वोत्तम व्यक्ति ही शिक्षा-विभाग में लिये जाते हैं। उन दिनों जिसे और कोई काम नहीं मिलता था, वह या तो अध्यापक बन जाता था, या फिर कोई अखबार निकाल देता था ! उन दिनों की याद ताज़ा न कराइये, कष्ट होता है। मेरे देखते-देखते कितने ही ग्राम हैज़े और मलेरिया के शिकार होगये थे। आज तो आप गर्दन टेढ़ी करके अभिमान-पूर्वक स्वाधीन बुन्देलखण्ड में विचरण कर रहे हैं, आप उन दिनों की दासता और क्षुद्रता का अनुमान भी नहीं कर सकते।

बस कक्काजू को अधिक कष्ट देने की ज़रूरत नहीं। इनकी श्यामा गौ का आधा-आधा सेर दूध पीकर हम लोग आगे बढ़े। अभी तो हमें चार मील दूर चल के कुण्डेश्वर पहुँचना है। वहाँ

के कुंड में स्नान करेंगे तथा पास के 'मधुवन' में सैर। संगम पर चलकर दाल-बाटी बनेगी। अपने प्रान्त की पचास वर्ष पहले की दुर्दशा का वृत्तान्त सुनकर चित्त को जो ग्लानि हुई है उसे जामनेर-तट के 'उषा-बिहार' में नौका-बिहार करके मिटावेंगे। धन्यवाद है, माता वेत्रवती और धसान को, केन को और जामनेर को जिनके आशीर्वाद से हमारे प्रान्त को पुनर्जीवन मिला।

कुण्डेश्वर (टीकमगढ़)]

सांस्कृतिक उदासीनता का दंड

डा० रामकुमार वर्मा

बुन्देलखण्ड-प्रान्त का निर्माण न केवल जन-समुदाय की सुविधाओं की दृष्टि से हितकर है, वरन् भाषा और संस्कृति के अनुशीलन की दृष्टि से भी वांछनीय है। भाषा के सार्वभौमिक रूप के निर्माण के लिये यह बहुत आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत जितनी भी बोलियाँ हैं, उनका सम्यक् अध्ययन हो और उस अध्ययन के फलस्वरूप यह निर्णय किया जाय की किस संपदा से भाषा के विचार और भावकोष में श्री और सौन्दर्य की वृद्धि की जा सकती है। आज भी हमारे गाँवों में भावों की वह मनोवैज्ञानिक विभूति है जो हमारी भाषा की अच्छी-से-अच्छी कविता में भी नहीं झलक सकी है। आज भी हमारे जनपदों की बोलियों में ऐसे-ऐसे मुहावरे और शब्दरूप हैं, जो हिन्दी-भाषा के विचार-विन्यास में सौन्दर्य उत्पन्न कर सकते हैं। बहुत-सी लोकोक्तियाँ जीवन के सत्यों का जिस सूक्ष्मता से अभिव्यंजन कर सकती हैं, बड़ी-बड़ी वाक्यावलियाँ उसके समीप तक नहीं पहुँचती। ग्रामगीतों में हमारे युगों की निष्ठा और साधना का जो तरल इतिहास है, वह हमारे अध्ययन-कक्ष तक अभी नहीं पहुँचा।

हमारे साहित्य ने नागरिकता का जामा पहन लिया है। वह केवल असत्य कल्पनाओं द्वारा ही ग्राम तक पहुँच पाता है, क्योंकि उसके पास ग्राम की अनुभूतियां कम हैं। क्या साहित्य के लिये यह लज्जा की बात नहीं है। हमारा प्राचीन साहित्य जीवन की भी और संपत्ति लेकर अरण्यों में लिखा गया। भारतवर्ष ने प्रकृति की उपासना में जिस स्वच्छन्द जीवन को अपनाया वह प्राचीन कवियों की लेखनियों में अगाध रूप से प्रवाहित हुआ। भारतवर्ष में ग्राम अधिक हैं, नगर कम। इस प्रकार ग्रामों की साधना का सौन्दर्य अनुपात में अधिक होना चाहिये। वह अव्यक्त रहा हो, यह बात दूसरी है। जब साहित्य ने नागरिकता के क्रोड़ में अपना पोषण किया तो उसने ग्रामों को भुला दिया और देश के नैसर्गिक मनोविज्ञान की ओर से अपनी आँखें फेर लीं। जब कि सच्चे भारत की अवस्था का स्पंदन ग्रामों में हो रहा है तब उसकी ओर से विमुख होकर हम कहाँ तक सच्चे साहित्य का निर्माण कर रहे हैं, यह हमारे लिये विचारणीय है।

अतः यदि हमें अपने देश की वास्तविक परिस्थितियों से प्रेरित होकर साहित्य-निर्माण करना है तो ग्रामों और जनपदों के मनोविज्ञान को हम नहीं भुला सकते। हमें उन बोलियों का अध्ययन करना है, जिनमें हमारे देश के जीवन का हास और उच्छ्वास बिखरा हुआ है। उसकी उपेक्षा हमारे जीवन की वास्तविकता की उपेक्षा है।

बुन्देलखण्ड कवियों और लेखकों का बहुत बड़ा निर्माता है। उसकी बोली सरस और मधुर है। उसमें जनता की मानसिक विभूति अत्यन्त

स्वाभाविक रूप में संचित है और जब इतिहास के अनेक पृष्ठ बुन्देलखण्ड ने रक्त और आंसुओं के शब्दों से लिखे हैं, तब बुन्देलखण्ड की राजनीति और वीर-पूजा की भावना देश के इतिवृत्ति में विशेष महत्त्व की है। बुन्देलखण्ड का जातीय इतिहास भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना राजनीतिक। इस प्रकार देश की सभ्यता के विकास में बुन्देलखण्ड का बहुत बड़ा हाथ है।

आज बुन्देलखण्ड विभक्त है। उसमें कोई संगठन नहीं, कोई बल नहीं। साहित्य के निर्माताओं में कोई पारस्परिक सहानुभूति नहीं। ऐसी परिस्थिति में बुन्देलखण्ड की साधना का मूल्य किस प्रकार आंका जा सकता है? बुन्देलखण्ड की साहित्य-साधना और उनके ऐतिहासिक एवं राजनैतिक इतिवृत्तों के समझने के लिये यह परम आवश्यक है कि बुन्देलखण्ड-प्रान्त का निर्माण हो। उसकी श्री और संपदा पाने के लिये संगठित प्रयत्न हो। बुन्देलखण्ड-प्रान्त के निर्माण से हम न केवल अपने इतिहास की वास्तविकता को प्राप्त कर सकेंगे, वरन् अपने साहित्य को भी अधिक व्यापकता प्रदान कर सकेंगे। श्री केशवदास-रचित वीरसिंह देव-चरित का मूल्य इतिहासकारों ने कभी आंकने का प्रयत्न नहीं किया। इतिहासकारों ने श्री वीरसिंह देव के चरित्र के सम्बन्ध में भी अपनी विकृत बुद्धि का परिचय दिया है।

हमारे वीर पुरुषों के चरित्रों की यह विकृति उस दण्ड का पहला आघात है, जो हमें साहित्यिक और सांस्कृतिक उदासीनता के फलस्वरूप मिला है।

प्रयाग]

केन

स्व० श्री घासीरामजी 'व्यास'

१

याद है गौरव-गाथा हमें वह
याद है आपकी आन यशस्वी,
वंदन विश्व में होता रहा
अभिनन्दन हे प्रिय नेही निजस्वी,
कौन-सा सोच सँकोच है आज
कहो-कहो, क्यों हुए मौन मनस्वी?
कैसे खड़े किस साधना में अरे!
विंध्य महागिरि-राज तपस्वी!

२

यह मौन किया किसके लिये भंग?
किसे कल-गान सुना रही हो?
किसके पगों में जल-विन्दु भला—
मुक्ताहल से बिखरा रही हो।
गिरिगह्वरों में गिरती कभी हो,
कभी पर्वतों से टकरा रही हो।

कहो, केन, कहो, कहाँ ? आज यों-
आकुल-सी किसे खोजने जा रही हो ?

३

"वंदित विश्व में खंड बुन्देल है,
और नहीं जिसका कहीं सानी।
हो गया धन्य धरा में वही,
जिसने कभी जो यहाँ का पिया पानी।
खेली सदा शुचि आंगन में जहाँ-
वीरता-संग स्वतन्त्रता रानी।
आज भी शान से ऊँचा किये सर,
गारहे हैं गिरि-शृंग कहानी।"

४

"केन कलिन्दजा-सी गिरि-भूमि पै,
पावन प्रेम पसारती आई।
रोका जहाँ जिसने पथ को,
उसके वहीं पैर उखारती आई।
वीर-व्रता करतव्य-रता बन,
भैरव-नाद हुँकारती आई।
टारती आई विपत्तियों को,
महा पर्वतों का उर फारती आई।"

५

"विंध्य उपत्यकाओं में समोद-
उषा अनुराग सकेल रही हो।
मान मयी सुमनाधरों में-
मुसकान मनोहर मेल रही हो।
भव्य विभावरी पावन प्रेम से
पुण्य पियूष उड़ेल रही हो।
भासित होता अभी-अभी तो यहाँ
जैसे स्वतन्त्रता खेल रही हो"।

६

"विश्व विभूतियाँ पावन भावन-
भाव से भांवरियाँ भरती हैं,
वीर बुन्देल वसुन्धरा की वह
रातें भली हिय को हरती हैं।
तारिकाएँ अवगुंठन टारके
देखने को उछली परती हैं,
केन में केलि कलाधर की-
किरणें-कल-किभरियाँ करती हैं"।

७

"नाथ उठी वन-श्री हरी हो नव-
पल्लवों ने शुभ साज सँवारा।
है सुमनों ने कहा—'जय हो'
विहगों ने समागत गान उचारा।
चेतनता जड़ में हुई जाग्रत
जीवन-जीवन को मिला प्यारा,
धन्य धरा हुई केन को धार के,
धन्य हुई यहाँ केन की धारा।"

८

पर्वत-प्राण पसीज उठे पलको-
उसने जहाँ जो स्वर साधा।
कूंज उठे वन, गूंज उठे मन,
फूल उठे सर कंज अबाधा!
केन के कूल के कुंजन में वह
आज भी देखो आनन्द अगाधा।
प्रेम-प्रमत्त पिया पिया पुयय
पुकारती चातकिनी बनी राधा।"

बे त वा

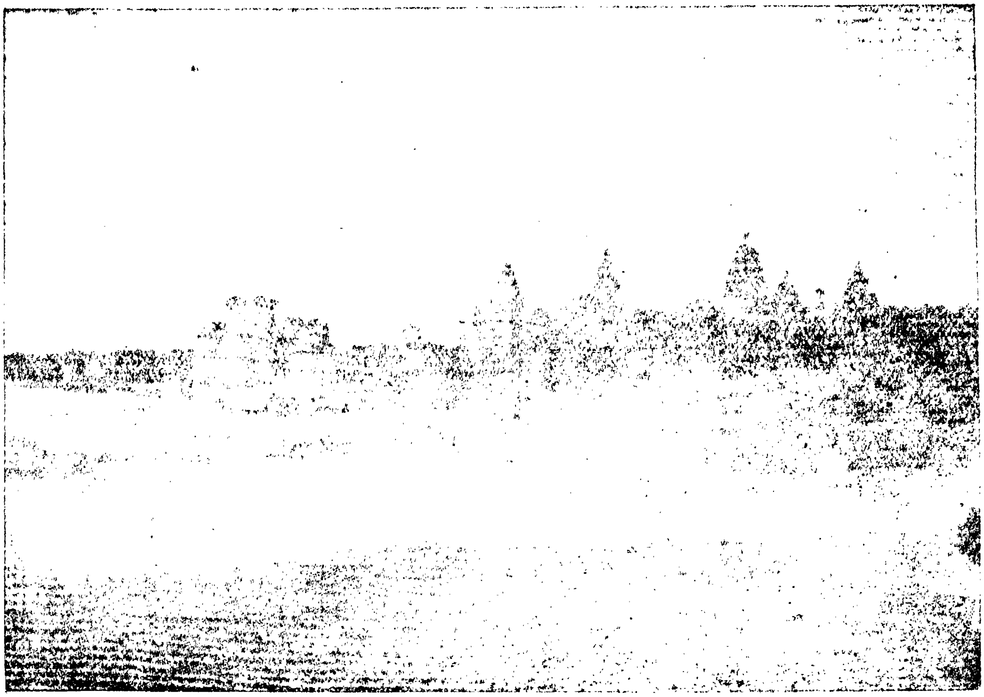
श्री रामचरणलाल हयारण 'मित्र'

मात बेतवे! बीहड़ वन में,
करती हो तुम किसका ध्यान,
किसे सुनातीं कल-कल स्वर में,
मीठी सरस सुरीली तान?

गिरिसे गिर-गिर कर अचला पर,
बहती हो किस लिये हमेश,
किस कारण वन-वन के निज तन,
कल-कल करती परम सुवेश?

किसके लिये गूँथती हो यह,
मंजुल मुक्ताओं की माल,
बहनाओगी कर कमलों से,
किसका होगा हृदय निहाल?

सुनके वचन विहँस-हँस बोली,
"ओली निज मतकी दह बात,



बेतवा (ओरछा का दृश्य)

बेतवा

एक गिरती है उठती है धार बेतवा की,
प्रकृति प्रिया का एक सदन सजाती है।
"मित्र" किरणों से एक करती कलोल प्रिय,
साध स्वर सरस सुरीला राग गाती है।
एक चन्द्रचूण की भुजाओं में भुजायें डाल,
लोल लहराके मुख चूम-चूम जाती है।
एक मोतियों का मंजु हार पहनाती एक-
चन्दन चढ़ाती एक चँवर डुलाती है।

देश-भक्त वीरों की सेवा,
करने की है मेरी बान।

यह बुन्देलखण्ड भूमी है,
कर्मवीर वीरों की खान,
जीवन दे दे सींचा करती,
बन-बन वीरों का उद्यान।

प्रबल-वीरवर "वीरसिंह" का
सादर करती हूँ सम्मान,
जिन की उज्ज्वल-अमर-कीर्तिका
है बुन्देलों को अभिमान।

मेरे आँगन में चमकी थी,
छत्रसाल की तीव्र-कृपाण,
जननी के बंधन तोड़े थे,
कर निज प्राणों का बलिदान।

लक्ष्मीबाई की सुस्मृति का,
गाती हूँ अनुपम आख्यान,
खोजा करती हूँ दुर्गा की,
पद - रज - पावन - पुण्य महान।

जिन पर शशि निज रजत राशि को
न्योछावर करता कर प्यार,
जिनका रवि शुचि-सहस्र करों से
करता समुदित स्वर्ण-शृंगार।

जिन पर नित-प्रति उषा-सुन्दरी
सादर आती है बलिहार,
उन चरणों पर अर्पण करने
आती यह आँसू दो-चार।"

झाँसी]

बुन्देलखण्ड

स्वर्गीय मुन्शी अजमेरीजी

चंदेलोंका राज्य रहा चिरकाल जहाँपर।
हुए वीर नृप गण्ड, मदन परमाल जहाँ पर॥
बढ़ा विपुल बल विभव बने गढ़ दुर्गम दुर्जय।
मंदिर महल मनोज्ञ मनोहर अनुपम अक्षय॥
वही शौर्य सम्पत्तिमयी कमनीय भूमि है।
यह भारतका हृदय रुचिर रमणीय भूमि है॥

आल्हा ऊदल सदृश वीर जिसने उपजाये।
जिनके साके देश विदेशोंने भी गाये॥
वही जुझौती जिसे बुँदेलोंने अपनाया।
इससे नाम बुँदेलखण्ड फिर जिसने पाया॥
पुरावृत्तसे पूर्ण परम प्रख्यात भूमि है।
यह इतिहास-प्रसिद्ध शौर्य्य-संघात भूमि है॥

यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अञ्चल ।
पूर्व ओर हैं टोंस पश्चिमाञ्चलमें चम्बल ॥
उरपर केन धसान बेतवा सिंध बही हैं ।
विकट विन्ध्यकी शैल-श्रेणियाँ फैल रही हैं ॥
विविध सुदृश्यावली अटल आनन्द-भूमि है ।
प्रकृतिच्छटा बुँदेलखण्ड स्वच्छन्द भूमि है ॥

खड़े उच्च गिरि और सघन वन लहराते हैं ।
खड़े खेत निज छटा छबीली छहराते हैं ॥
बारख, तेंदुए, रीछ, बाघ स्वच्छन्द विचरते ।
शूकर, साँवर, रोझ, हिरन, चीतल हैं चरते ॥
आखेटक के लिए सदा जो भेट भूमि है ।
अति उदण्ड बुन्देलखण्ड आखेट भूमि है ॥

गढ़ गवालियर सुदृढ़ कोट नामी कालिंजर ।
दुर्गम दुर्ग कुढ़ार कठिन कनहागढ़ नरवर ॥
छोटे मोटे और सैकड़ों दुर्ग खड़े हैं ।
मानों उस प्राचीन कीर्ति के स्तम्भ गढ़े हैं ॥
दुर्ग मालिकामयी दीर्घ दृढ़ अङ्ग-भूमि है ।
अरि-दर्पघ्न बुँदेलखण्ड रण रङ्ग-भूमि है ॥

हुए यहाँ पर भूप भारतीयचन्द बुन्देला ।
शेरशाह को समर सुलाया कर रण-खेला ॥
मधुकरशाह महीप जिन्होंने तिलक न छोड़ा ।
अकबरशाह समक्ष हुक्म शाही को तोड़ा ॥
यह वीरों की रही अनोखी आन भूमि है ।
वीर-प्रसू बुन्देलखण्ड वर बान भूमि है ॥

दानवीर वीरसिंहदेव ने तुला दान में ।
इक्यासी मन स्वर्ण दे दिया एक आन में ॥
जिसकी वह मधुपुरी साक्ष्य अब भी देती है ।
नहीं अन्य नृप नाम तुल्यता में लेती है ॥
ऐसे दानी बने यही वह दान-भूमि है ।
सत्त्वमयी बुन्देलखण्ड सम्मान भूमि है ॥

कवि ने कहा "नरेन्द्र, गौड़वाने की गायें ।
दुख में जुतकर विकल बिलपती हैं अबलायें ॥"
पार्थिव प्रबल पहाड़सिंह सज सुन्दर वारण ।
चढ़ दौड़े ले चमू किया गौ-कष्ट निवारण ॥
गौ-द्विज-पालक रही सदा जो धर्म भूमि है ।
सत्यमूर्ति बुन्देलखंड सत्कर्म भूमि है ॥

हुए यहीं हिंदुवान पूज्य हरदौल बुन्देला ।
पिया हलाहल न की भ्रातृ-इच्छा-अवहेला ॥
पुजते हैं वे देवरूप प्रत्येक ग्राम में ।
है लोगों की भक्ति भाव हरदौल नाम में ॥
यही हमारी हरी भरी हर देव भूमि है ।
वंदनीय बुन्देलखण्ड नर देव भूमि है ॥

थे चम्पत विख्यात हुए सुत छत्रसाल से ।
शत्रु जनों के लिये सिद्ध जो हुए काल से ॥
जिन्हें देखकर वीर उपासक कविवर भूषण ।
भूल गये थे शिवाबावनी के आभूषण ॥
यह स्वतंत्रता-सिद्ध-हेतु कटिबद्ध भूमि है ।
सङ्गरार्थ बुन्देलखण्ड सन्नद्ध भूमि है ॥

यहाँ वीर महाराज देव से अङ्ग जोड़ना ।
काल सर्प की पूँछ पकड़ कर था मरोड़ना ॥
मानी प्रान अमान बान पर बिगड़ पड़े थे ।
बना राछरा सूर सुभट जिस भाँति लड़े थे ॥
रजपूती में रँगी सदा जो सुभट भूमि है ।
वीरमयी बुँदेलखण्ड यह विकट भूमि है ॥

लक्ष्मीबाई हुई यहाँ झांसी की रानी ।
जिनकी वह विख्यात वीरता सबने मानी ॥
महाराष्ट्र का रक्त यहाँ का था वह पानी ।
छोड़ गया संसार मध्य जो कीर्ति-कहानी ॥
अबला सबला बने, यही वह नीर-भूमि है ।
वीराङ्गना बुन्देलखण्ड वर वीर-भूमि है ॥

तुलसी, केशव, लाल, बिहारी, श्रीपति, गिरिधर ।
रसनिधि, रायप्रवीन, भजन, ठाकुर, पद्माकर ॥
कविता-मंदिर-कलश सुकवि कितने उपजाये ।
कौन गिनावे नाम जाँय किससे गुण गाये ॥
यह कमनीया काव्य-कला की नित्य भूमि है ।
सदा सरस बुन्देलखंड साहित्य-भूमि है ॥

ग्राम-गीत, ग्रामीण यहाँ मिलकर गाते हैं ।
सावन, सैरों, फाग, भजन उनको भाते हैं ॥
ठाकुरद्वारे यहाँ अधिकता से छवि छाजें ।
मंदिर के अनुरूप जहाँ सङ्गीत समाजें ॥
यह हरिकीर्तनमयी प्रसिद्ध पुनीत भूमि है ।
स्वर-सङ्कलित बुन्देलखंड सङ्गीत-भूमि है ॥

चित्रकूट गिरि यहाँ जहाँ प्रकृतिप्रभुताद्भुत।
बनबासी श्रीराम रहे सीता लक्ष्मण-युत॥
हुआ जनकजा-स्नान-नीर से जो अति पावन।
जिसे लक्ष्य कर रचा गया धाराधर-धावन॥
यह प्रभु-पद-रजमयी पुनीत प्रणम्य भूमि है।
रमे राम बुन्देलखण्ड वह रम्य भूमि है॥

यहाँ ओरछा राम अयोध्या से चल आये।
और उनाव प्रसिद्ध जहाँ बालाजी छाये॥
वह खजुराहे तथा देवगढ़ अति विचित्र है।
त्यों सोनागिरि तीर्थ जैनियों का पवित्र है॥
तीर्थमयी जो सकल साधना-साध्य-भूमि है।
अति आस्तिक बुन्देलखण्ड आराध्य भूमि है॥

यहाँ समय अनुसार सभी रस हम पाते हैं।
बन, उपवन, बूटियाँ, फूल,फल उपजाते हैं॥
गिरि-वन-भूमि-प्रदत्त द्रव्य मिलते मनमाने।
गुप्त प्रकट हैं यहाँ हेम हीरों की खानें॥
यह स्वतंत्र महिपाल-वृन्दमय मान्य-भूमि है।
वसुन्धरा बुन्देलखंड धन-धान्य भूमि है॥

यहां सेहुड़ा सिंध मध्य सनकुआ जहां है।
वह विस्तृत ह्रद स्वतः सुनिर्मित हुआ यहां है॥
इधर दुर्ग उत्तुङ्ग उधर विन्ध्याचल ऊपर।
वर्षा में वह दृश्य विलक्षण है इस भूपर॥
सनकादिक की तीव्र तपस्या-स्थली भूमि है।
भव्य दृश्य बुन्देलखण्ड वह भली भूमि है॥

बुन्देलखण्ड]

वर वन्दनीय बुन्देलखण्ड

स्व० श्री घासीरामजी व्यास

१

जाके शीश जमुन डुलावै चौंर मोद मान,
नर्मदा पखारै पाद-पद्म पुण्य पेखी है।
कटि कल केन किंकिणी-सी कलधौत कांति,
बेतवा विशाल मुक्त-माल सम लेखी है॥
'व्यास' कहै सोहै सीस-फूल सम पुष्पावति,
पायजेब पावन पयस्विनी परेखी है।
ए हो शशि! साँची कहौ, साँची कहौ, साँची कहौ,
दिव्य भूमि ऐसी दुनी और कहूँ देखी है॥

२

चित्रकूट, ओरछौ, कलिंजर, उनाव, तीर्थ,
पन्ना, खजुराहौ जहाँ कीर्ति झुकि झूमी है।
जमुन, पहूज, सिंधु, बेतवा, धसान, केन,
मंदाकिनि पयस्विनी प्रेम पाय घूमी है॥
पंचम नृसिंह, राव चंपतरा, छत्रशाल,
लाला हरदौल भाव चाव चित चूमी है।
अमर अनन्दनीय असुर निकन्दनीय
वन्दनीय विश्व में बुन्देल-खंड भूमी है॥

३

लखन, विदेहजा समेत वनवासी राम,
वास कियो ह्यांई सोच शांति सरसाय लेहु।
पाई सुख शरण अज्ञात-वास कीन्हो यहाँ,
पांडवन प्रेम सौं प्रभाव उर छाय लेहु॥
पाँय ना पिराने होंहि भ्रम-भ्रम लोक-लोक,
पलक बिसार श्रम, चित्त विरमाय लेहु।
ह हो शशि! परम पुनीत पुण्य-भूमि यह,
नैनन निहार नैकु हिय सियराय लेहु॥

४

नैसुक खनत निकसत पुंज हीरन के,
जग-मग होत ज्योति जागत विभावरी।
हिम है न आतप न पंकिल प्रदेश जाहि,
विरचि विरंचि करे सुरुचि बराबरी॥
आँधी को न ऊधम न उल्का-पात घात भूमि-
कंप की भराभरी न बाढ़ की तराभरी।
कीरति अखंड धन्य धन्य श्री बुन्देलखण्ड,
ऐसौ कौन देश करै रावरी बराबरी॥

५

बाँकुरे बुन्देलन के खंगन के खेल देख,
ससक सकाय शत्रु होत रन बौना से।
धन्य भूमि जहाँ वीर आनत न शंक मन,
तंत्र से न मंत्र से न जादू से न टौना से॥
छीने छत्र म्लेच्छन मलीने कर लीने यश
कीने काम कठिन अनेक अनहौना से।
जाके सुत हौना सुठि लौना मृग-राजन कौं,
हँस-हँस बाँध लेत मंजु मृग छौना से॥

६

सुख-भूमि यहै, बहैं नित्य जहाँ,
नदियाँ नव नेह के नीरन की।
उपमा नहिं आवत है लखिकैं
सुखमा कल केन के तीरन की॥
हरसावै हियो हरवारन कौ
सरसावै सुगंध समीरन की।
वर वैभव का कहैं हीरन सौं-
जहाँ छोहरीं खेलैं अहीरन की॥

बुन्देलखण्ड]

बुन्देलखण्ड की पावन भूमि

स्वर्गीय श्री 'रसिकेन्द्र' जी

अंबरा भस्म भरा है यहाँ की,
छिपे पड़े रत्न यहाँ अलबेले;
मुण्ड चढ़े यहीं चण्डिका पै,
उठ रुण्ड लड़े हैं यहीं असि ले के।
खण्ड बुन्देल की कीर्ति अखण्ड,
बना गये वीर प्रचण्ड बुन्देले;
झेल के संकट खेल के जान पै,
खेल यहीं तलवार से खेले। १।

आज भी टीका मिटा न सके,
हुई ऐसे नृपाल के भाल की झांकी;
युद्ध के पंडितों के बल-मंडित—
की भुजदण्ड विशाल की झांकी।
पाई यहीं पर धर्म-धुरीण—
प्रवीण गुणी प्रणपाल की झांकी;
है जगती जगती में कला,
करके कमला-करवाल की झांकी। २।

आते रहे भगवान समीप ही,
ध्यानियों का यहाँ ध्यान प्रसिद्ध है;
पुत्र भी दण्ड से त्राण न पा सका,
शासकों का नय-ज्ञान प्रसिद्ध है।
हीरक-सी मिसरी है जहाँ,
वहाँ व्यास के जन्म का स्थान प्रसिद्ध है;
वंश चंदेल की आन प्रसिद्ध है,
ऊदल का घमासान प्रसिद्ध है। ३।

स्वर्ण-तुला चढ़ श्री वीरसिंहजू,
देव ने दान की आन लचा दी;
कंध पै पालकी ले छत्रसाल ने,
सत्कवि-मान की धूम मचा दी।
राग में माधुरी आ गई, 'ईसरी'—
ने अनुराग की फाग रचा दी;
काव्य-कलाधर केशव ने,
कविता की कला को स-ओज जचा दी। ४।

स्वर्ग में आदर पा रहा आज भी,
भावुक मानसों का अभिनन्दन;
दर्शन देते रहे जिसको तन—
भार प्रसन्न हो मारुति-नन्दन।
पावन-प्रेम का पाठ पढ़ा दिया,
प्राण-प्रिया ने किया पद-वन्दन;
प्राप्त हुई तुलसी को रसायन,
राम-कथा का यहीं घिस चंदन। ५।

पाये गये हरदौल यहीं, विष—
टक्कर से नहीं डोलने वाले;
सन्त, प्रधान, महान यहीं हुए,
ज्ञान-कपाट के खोलने वाले।
मृत्यु से जो डर खाते न थे, मिले,
सत्य ही सत्य के बोलने वाले;
भाव-विहारी बिहारी यहीं हुए,
स्वर्ण से दोहरे तोलने वाले। ६।

अंचल में हरिताभ लिये, तने,
वेत्रवती के वितान को देखा,
गूँज पहूज की कान में गूँजती,
पंचनदी के मिलान को देखा।
कृत्रिम-रत्न-प्रदायिनी केन की,
शान को देखा, धसान को देखा;
द्वार में भानुजा के सजे निर्मल,
नीलिम-वेश-विधान को देखा। ७।

राम रमे वनवास में आकर,
है गिरि की गुरुता को बढ़ाया;
पादप-पुंज ने दे फल-फूल,
किया शुभ स्वागत है मनभाया।
राम लला की कला ने यहीं,
अचला बनके है प्रताप दिखाया;
जीवन धन्य हुआ 'रसिकेन्द्र' का,
पावन-भूमि में जन्म है पाया। ८।

बुन्देलखण्ड]

प्रान्त-निर्माण के आन्दोलन

(आन्ध्र और बुन्देलखण्ड)

श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी बी० ए०, एल-एल० बी०

जब लार्ड कर्जन ने बंग-भंग कर बंगाल के दो टुकड़े कर दिये तो सारा बंगाल तिलमिला गया। उस समय जो आन्दोलन उठा, आज वह राष्ट्रीय गौरव की अमर कहानी है। भारत की स्वतन्त्रता की दृष्टि से उस आन्दोलन का महत्त्व इसलिये ही था कि जब एक बाहरी सत्ता ने एक भाषा, एक-सी संस्कृति, रहन-सहन व एक प्रान्त के निवासियों को दो कृत्रिम भागों में बाँटना चाहा तो उन्होंने अपनी शक्ति भर इस अकृत्रिम व्यापार का विरोध किया। यद्यपि यह घोषित किया गया था कि यह प्रान्तीय विभाजन सर्वथा शासन की सुविधा के लिये ही किया गया है, पर इसमें देश ने राष्ट्र-विरोधी भावना देखी। सारे राष्ट्र का समर्थन बंग-भंग के आन्दोलन को प्राप्त हो गया और इस प्रकार ब्रिटिश सरकार की अधीनता में प्रान्त-विभाजन का महत्त्वहीन-सा लगने वाला प्रश्न राष्ट्रीय बन गया।

१६११ में लार्ड हार्डिंग्ज़ ने बंग-प्रान्त के पुनरेकीकरण के सम्बन्ध में जो डिस्पैच भेजा, उससे उन अन्य प्रान्तों में भी, जिनका बँटवारा इस प्रकार के पिछले शासकों ने कर रक्खा था, एक आशा की किरण दीख पड़ी।

बंगाल प्रान्त के दो टुकड़े करने का कारण यह बताया था कि इतने बड़े प्रान्त का, जिसमें आजकल के बंगाल, बिहार, उड़ीसा व आसाम शामिल थे, प्रान्तीय शासन कठिनाई उपस्थित करता था। लार्ड हार्डिंग्ज़ ने बंगला-भाषा-भाषी निवासियों को एक बंगाल प्रान्त में वितरित कर बिहारियों तथा उड़ियों के लिये एक स्वतन्त्र प्रान्त देने का प्रस्ताव किया था, जो स्वीकृत भी हुआ। डिस्पैच में लिखा गया था :—

"हम सन्तुष्ट हैं कि यह सबसे अच्छी बात होगी कि आजकल बंगाल में सम्मिलित हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों को एक स्वतन्त्र प्रान्त दे दिया जाय। यह लोग अभी तक बंगालियों के साथ असमान रूप से जुते रहे हैं और इन्हें कभी भी विकास का मौका नहीं मिला है। नौकरियां देते समय 'बिहार बिहारियों के लिये' यह आवाज़ अक्सर उठाई जाती रही है, क्योंकि बिहार के अधिकांश पदों पर बंगाली ही हैं। बिहारी बहुत दिनों से बंगाल से विच्छेद मांगते आ रहे हैं। साथ-ही-साथ हाल ही में बिहार में एक विशेष जागृति हुई है और बिहारियों में यह पक्का विश्वास जम गया है कि बिहार की उन्नति तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि वह बंगाल से अलग न हो। यह विश्वास, यदि कोई उपचार न पाया गया, तो भविष्य में एक आन्दोलन को जन्म देगा और वर्तमान मौका एक स्वर्ण अवसर है जब हम अपनी तरफ से इस योजना को सुचारु और दृढ़ रूप से चला सकेंगे।"

इस प्रकार सर्व प्रथम भारत सरकार ने भाषाओं के आधार पर प्रान्त-विभाजन की योजना को स्वीकार किया। बंगाल का यह बटवारा कुछ तत्कालीन बंगालियों को बुरा भी लगा और उन्होंने यहां तक कहा कि यह तो एक प्रकार से बंग-भंग की दूसरी आवृत्ति है; पर उसमें भाषा का आधार लेकर जो बात कही गई थी, वह सभी विचारशील व्यक्तियों को मान्य हुई। बंगाल-प्रान्त तथा बंगीय आन्दोलनों के प्रमुख प्रेमी श्री रामानन्द चटर्जी ने स्वीकार किया:—"हमें सीमा-परिवर्तन के बारे में कोई नई बात नहीं कहनी है। यदि इनमें से किसी स्थान में बंगला प्रचलित भाषा हो या अदालत की भाषा हो तो इन्हें बंगाल में शामिल कर लेना चाहिये, अन्यथा इन्हें अपने

निवासियों की इच्छा के विरुद्ध शामिल न करना चाहिये।"

इस घोषणा के बाद बिहार ने जो प्रगति की है वह छिपी नहीं है। बिहार में यूनिवर्सिटी स्थापित हुई, शिक्षा का प्रचार बढ़ा और आज तो बिहार अनेक बातों में, नव-जागरण के सन्देश ग्रहण करने में, कई अन्य प्रान्तों से बाज़ी ले गया है।

अभी तक प्रान्तीय सीमाओं का निर्धारण वारेन हेस्टिंग्स व क्लाइव की विजय-नीति द्वारा ही संचालित होता आया था। एक समय काशी और प्रयाग तक बंगाल में सम्मिलित थे। जैसे-जैसे राज्य बढ़ता गया, वह किसी-न-किसी मौजूदा प्रान्त में मिला दिया गया। बर्मा यदि विजित हुआ तो वह भी भारत का एक अङ्ग हो गया। अन्डमन-नीकोबार भारत का सूबा बना और अदन तथा अफ्रीका का जंजीबार तक बम्बई प्रान्त बन गया। बिहार तथा उड़ीसा की मांग को स्वीकृत होते देख ऐसे अन्य प्रान्त, जिनका गठबन्धन बिहार की तरह अन्य प्रगतिशील प्रान्तों के साथ कर दिया गया था, अपने पृथक् प्रान्त-निर्माण की मांग करने लगे।

आंध्र देश ऐसा ही एक प्रान्त है। आज मद्रास प्रान्त की भी वस्तुतः वही दशा है जो कभी बंगाल की थी। जो हिस्सा मद्रास शाखा की सेना ने जीता, वह मद्रास-प्रान्त में मिला दिया गया। जिस प्रकार सारे बंगाल की शक्ति तथा सत्ता धीरे-धीरे कलकत्ते नगर में केन्द्रित होती गई, वैसे ही सारे दक्षिण भारत का केन्द्र मद्रास बन बैठा। मद्रास में चार भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी लोग—तामिल, तैलगू, कनड़, और मलयालम बोलने वाले एक प्रान्त में एकत्रित हैं। तामिल देश का केन्द्र मद्रास है, इससे तामिल को प्रान्त होने के सभी लाभ प्राप्त हैं। भाषा की दृष्टि से आंध्र देश मद्रास का बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग है। वहां की भाषा तैलगू है। वहाँ का इतिहास गौरवपूर्ण रहा है। एक समय आंध्रों का राज्य उत्तरी भारत तक रहा है, पर स्वतन्त्र प्रान्त होने के कारण, और सारी शक्ति तथा सत्ता के मद्रास में केन्द्रित होने के कारण, तैलगू भाषा-भाषी संप्रदाय को पूरी-पूरी उन्नति करने का अवसर नहीं मिला। उनमें यथोचित शिक्षा का प्रसार न हो सका। उनकी मातृभाषा शिक्षा का माध्यम न बन सकी। पास-पड़ौस में कालेज-स्कूलों का अभाव भी उनकी शिक्षा की प्रगति में रोड़ा रहा। बिहार में प्रान्त बनने के बाद बिहार-विश्व-विद्यालय की चर्चा चलने लगी थी। इसी समय आंध्र प्रान्त के आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ।

गुन्तूर के 'देशाभिमानी' ने १९१२ में ही लिखा:—

"एक विख्यात पत्रकार ने हमें लिखा है कि 'आंध्रों की पृथक् प्रान्त' की मांग अनुपयोगी और हमारे हितों के विरुद्ध है। साथ-ही-साथ भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में यह एक प्रति-क्रियावादी कदम है। हम नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहते हैं कि यह आन्दोलन लार्ड हार्डिञ्ज के चिरस्मरणीय डिस्पैच में प्रदर्शित विचारों के अनुकूल है। भावी भारतीय राष्ट्र में विभिन्न जातियाँ होंगी जो भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलती होंगी। और भिन्न-भिन्न परम्पराओं के साथ एक ही लक्ष्य की ओर प्रगति करेंगी। एक दृढ़ भारतीय राष्ट्र में दृढ़ और कार्य कुशल अंग होने चाहिये। जब तक कि भारतीय राष्ट्र बनाने वाली भिन्न-भिन्न जातियाँ स्वयं स्वावलम्बी तथा योग्य न होंगी, तब तक समूचा भारतीय राष्ट्र भी एक योग्य राष्ट्र नहीं बन सकता। एक राष्ट्र के भिन्न-भिन्न भागों में यदि विकास की असमान श्रेणियां हों तो वह राष्ट्र एक निर्बल राष्ट्र बनेगा जो कि समान रूप से उन्नति न कर सकेगा। हम भारतीय राष्ट्र-निर्माण के ऊँचे आदर्श की पूरी कल्पना करते हैं, पर पूर्व इसके कि वह निर्माण होता, अलग-अलग जातियों को दृढ़ और योग्य हो जाना चाहिये, ताकि वह भारतीय राष्ट्रीयता में एक खासा योग देने में समर्थ हो

सकें। यह आन्दोलन हमारा अनोखा नहीं है, वरन् भारत की भिन्न-भिन्न जातियों के सर्वोत्तम प्रतिनिधियों द्वारा समर्थित है। एक भाषा संगठन की सबसे बड़ी शक्ति है और इस प्रकार बिहारी, बंगाली, मराठे और उड़िया सभी एक स्वतन्त्र प्रान्त चाहते हैं, जहां पर वह अपने दृढ़ व्यक्तित्व के साथ उन्नति कर सकें। इस प्रकार प्रत्येक प्रान्त स्वावलम्बी होगा और केन्द्रीय शक्ति के नियंत्रण में होगा। सरकार ने इस सिद्धान्त को पूर्ण रीति से मान लिया है और हमारा यह पक्का विश्वास है कि आन्ध्रों की तब तक न कोई उन्नति हो सकती है, न वे काफी परिमाण में भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में योग दे सकते हैं, जब तक कि उनका स्वतन्त्र प्रान्त न बना दिया जाय। आनरेबिल मि० एस० सिनहा ने छठी युक्त प्रान्तीय कान्फ्रेन्स सभापति की हैसियत से कहा था:—"प्रान्तीय स्वतन्त्रता की योजना के लिये, जिसका मैं अभी जिक्र करूंगा, यह नितान्त आवश्यक है कि जहां तक हो सके, हर एक प्रान्त, कम-बद्ध, एक-सी जनता से निर्मित हो, जो एक भाषा बोलती हो तो अच्छा है' हमारी भी यही धारणा है और यह देखना है कि आन्ध्र देश इस योजना को किस रूप में लेता है।"

आज से तीस वर्ष पहले आन्ध्र प्रान्त का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था। यद्यपि अभी तक आन्ध्र प्रान्त बन नहीं सका है, पर आज वह स्थिति आ गई है जब कि प्रान्त बनने में थोड़ी-सी देर ही होगी। कांग्रेस मंत्रिमंडल ने आन्ध्र प्रान्त बनने का समर्थन किया था। कांग्रेस-संगठन में 'आन्ध्र' नाम से एक प्रान्त स्वीकृत है। इसके अतिरिक्त आन्ध्र आन्दोलन के फल-स्वरूप वहां की बहुत-सी कठिनाइयाँ, जो १९१३ की प्रथम आन्ध्र कांफ्रेन्स में बताई गईं, दूर हो चुकी हैं। केन्द्रीय सत्ता की स्वीकृति आज बाकी है। आन्ध्र जनता आज इस सम्बन्ध में एकमत है।

बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण का आन्दोलन भी उसी भाषा की समस्या को लेकर खड़ा हुआ है जिस पर आन्ध्र हुआ था। अपने प्रान्त को शिक्षित और उन्नत कर राष्ट्र को योग्य अंग बनाने वाली भावना जिस प्रकार आन्ध्र प्रदेश में काम कर रही थी, उसी प्रकार बुन्देलखण्ड प्रान्त को बलशाली बनाने की कल्पना इसी उद्देश्य को सामने रख रही है। और बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि आज भी ठीक वे ही आक्षेप इस प्रान्त-निर्माण-आन्दोलन पर उठाये जा रहे हैं जो आन्ध्र आन्दोलन पर उठाये गये थे।

१८८८ के कांग्रेस-सभापति जार्ज यूल महोदय ने अपने भाषण में एक महत्त्वपूर्ण बात कही थी:—इस प्रकार के सभी आन्दोलनों को, जिनसे हमारा सम्बन्ध है, अपने गन्तव्य मार्ग तक कई स्थितियों में होकर गुज़रना पड़ता है। पहली अवस्था उपहास की है उसके बाद आन्दोलन की गति के साथ निन्दा की स्थिति आती है। इसके बाद अक्सर आंशिक स्वीकृति तथा उद्देश्यों के प्रति गलतफ़हमी की स्थिति आती है। इसके साथ-साथ चेतावनियां रहतीं हैं कि अन्धकार में लम्बी-लम्बी कुदानें न मारी जायँ। अन्तिम अवस्था अधिकांश रूपेण स्वीकृति की है और तब कुछ आश्चर्य का भाव प्रकट किया जाता है कि यह आन्दोलन पहले क्यों नहीं स्वीकार किया गया? यह भिन्न-भिन्न स्थितियाँ एक दूसरे से सटी-सटी चलती हैं, पर प्रथम और अन्तिम में अन्तर पूर्ण है।"

आन्ध्र-आन्दोलन को इन सब स्थितियों में होकर गुज़रना पड़ा है और अब वह अन्तिम अवस्था में है। बुन्देलखण्ड प्रान्त का आन्दोलन अभी प्रारम्भिक दशा में ही है। अतएव उसके ऊपर वही आक्षेप हो रहे हैं, जो प्रारम्भ में आन्ध्र आन्दोलन के ऊपर हुए थे।

प्रथम आन्ध्र कान्फ्रेंस के स्वागताध्यक्ष ने आज से ३० वर्ष पहले कहा था—"एक बात हमको ध्यान में रखनी चाहिये कि हम आन्ध्र ही नहीं है, वरन् भारतीय भी हैं।" भारत की

सेवा-योग्य आन्ध्र प्रान्त को बनाने के लिये उन्होंने आन्ध्र प्रान्त की माँग की थी। बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण के समर्थक श्रीमान् ओरछा-नरेश ने भी प्रथम 'ओरछा-सेवा-संघ'-शिविर के अवसर पर ऐसे ही भावों को व्यक्त किया था—"इसी तरह भारतवर्ष एक बहुत बड़ी चीज़ है। एक घट के समान समझिये। वह घट के समान तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक उसमें बूंदों का समूह न हो उस बूंदों के समूह में से हम एक बूंद हैं। हम भारतीय हैं, भारत हमारा है किन्तु हम बुन्देलखंडी अवश्य हैं।"

बुन्देलखण्ड में शिक्षा का प्रचार बहुत कम है, शिक्षण-संस्थाएँ इनीगिनी हैं। इसका कारण यहाँ की भाषा का माध्यम न होना है। इसलिये बुन्देलखण्डी के संरक्षण के लिए बुन्देलखण्ड प्रान्त की माँग की जाती है। प्रथम आन्ध्र सम्मेलन के सभापति आनरेबिल मि० शर्मा ने मद्रास विश्वविद्यालय की आलोचना की थी कि उन्होंने प्रान्तीय भाषाओं के अध्ययन की उपेक्षा की, जिसके कारण जनता में शिक्षा-प्रचार संभव नहीं था। उन्होंने तैलगू प्रान्त के लिये एक विश्व-विद्यालय, कई कालेज, मैडीकल कालेज, इन्जीनिरिंग कालेज व औद्योगिक केन्द्रों की माँग की थी और शिक्षा के माध्यम के तौर पर तैलगू की माँग पेश की थी। अंग्रेजी दूसरी भाषा रह सकती थी। कान्फ्रेन्स ने भी अपने प्रस्तावों द्वारा इस माँग का समर्थन किया था। मातृभाषा के साहित्य के अध्ययन के प्रोत्साहन व संबर्द्धन की मांग की थी और आन्ध्र जैसे पिछड़े प्रान्त में शिक्षा-प्रसार की आवश्यकता पर ध्यान आकृष्ट किया था। सम्मेलन की माँगों में तैलगू साहित्य परिषद् आन्ध्र-भाषा-अभिवृद्धि-संघ तथा राज महेन्द्री, मसलीपटम् और बेटापलम के राष्ट्रीय विद्यालयों की सब प्रकार सहायता करने का प्रस्ताव था। आज उनमें से बहुत से प्रस्तावों पर अमल हो चुका। आन्ध्र विश्व-विद्यालय स्थापित हो चुका है, तैलगू को संबर्द्धन मिला है। प्रान्त-निर्माण पर सरकारी स्वीकृति होना बाकी है। पर प्रान्त-निर्माण के प्रश्नों पर उस समय वैसा ही मतभेद था। जैसा बुन्देलखण्ड के प्रश्न पर आज हो रहा है। प्रथम सम्मेलन में इस प्रस्ताव का बड़ा विरोध हुआ और दोनों दलों में समझौता कराने के लिये एक कमेटी बना दी गई, जो इस प्रश्न पर विचार कर अपना मत प्रान्त-निर्माण के समर्थन या विरोध में दे। यह गलतफ़हमी कई वर्ष तक रही।

आन्ध्र प्रान्त आन्दोलन पर आक्षेप किया गया था कि यदि भाषाओं के आधार पर प्रान्त बनने लगे तो देश चालीस या पचास भागों में बट जायगा, जिसमें न केवल बहुत व्यय होगा वरन् ऐसी-ऐसी व्यावहारिक कठिनाइयां आवेंगी, जिनका कोई हल नहीं मिलेगा। यह भी आक्षेप किया गया था कि चूंकि यह प्रश्न राष्ट्रीय महत्व का है, इसलिए इसको राष्ट्रीय महासभा के सम्मुख पेश करना चाहिये। आन्ध्र महासभा जैसी छोटी संस्था को यह राष्ट्रीय प्रश्न हल करने का अधिकार नहीं है। तीसरा आक्षेप था कि इस प्रकार के आन्दोलन से देश में विघटन-कार्य प्रारम्भ हो जायगा, जबकि इस समय संगठन की आवश्यकता है। चौथा आक्षेप था कि इस आन्दोलन में पड़ने से राष्ट्रीय शक्ति का विनाश होता है और जिन कार्यों में प्रथम हाथ बँटाना चाहिये, उनकी ओर से ध्यान हटकर दूसरी ओर लगता है। पांचवाँ आक्षेप था कि यद्यपि आन्दोलन अच्छा है पर इस समय असामयिक है और इसे अभी स्थगित रखना चाहिये। छटा आक्षेप देशी रियासतों के बारे में था कि जब तक हैदराबाद राज्य में आधे नागरिक आन्ध्र हैं, और हैदराबाद राज्य नष्ट हो नहीं सकता, तो आन्ध्र प्रान्त कैसे बन सकता है? सातवाँ आक्षेप था कि इस प्रकार के प्रान्तीय आन्दोलनों से राष्ट्रीय आन्दोलन को धक्का पहुँचेगा। यह भी आक्षेप था कि आन्दोलन को सारे आंध्रों का समर्थन प्राप्त नहीं है। और यह प्रान्तीयता, विद्वेष, अविश्वास तथा फूट फैलाने वाला आन्दोलन है तथा कुछ

बेकार आदर्शवादी युवकों की कल्पना का फल• है।

आन्ध्र-प्रान्त-आन्दोलनकर्ताओं को अपने शब्दों तथा व्यवहार से यह दिखलाना पड़ा और इन ३० वर्षों में उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि यह आक्षेप निराधार थे। आज आन्ध्र प्रान्त के आन्दोलन से किसी देशवासी को कोई शिकायत नहीं है।

ठीक यही आक्षेप बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण पर किये जा रहे हैं। श्री मदनलालजी चतुर्वेदी कहते हैं कि इससे ३०-४० प्रान्त बटेंगे, 'जागृति' का कथन है कि यह पाकिस्तान की माँग है, श्री सियारामशरण जी गुप्त इसे राष्ट्रीय कार्यों से दूर हटाने वाला और लंका काण्ड को छोड़ उत्तर कांड का पारायण समझते हैं, पन्नालालजी शर्मा इसे प्रान्त निर्माण से दूर ले जाने वाला और असामयिक मानते हैं, 'लोकमान्य' को शंका है कि इन राज्यों के रहते प्रान्त-निर्माण कैसे होगा? घुमा-फिराकर आक्षेप वे ही हैं, जो आन्ध्र पर किये गये थे। बुन्देलखण्ड का भी उत्तर वही है जो आन्ध्र ने दिया था।

पाकिस्तान की योजना नई है, पर भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम से कुछ सम्प्रदायवादी मुसलमानों का असहयोग पुराना है। आन्ध्र-आन्दोलन की तुलना भी मुसलमानों के पृथक् होने के आन्दोलन से की गई थी। इसका उत्तर उन्होंने दिया कि यह आन्दोलन राष्ट्रीय समस्याओं का वैज्ञानिक व व्यावहारिक दृष्टिकोण से समझाने का प्रथम प्रयत्न है। एक समय था, १९वीं शताब्दी में, जब राष्ट्रीयता के मानी एक भाषा, एक धर्म, एक से हित और इतिहास व संस्कृति माने जाते थे। अंग्रेजों ने भारत को एक राष्ट्र मानने से इसलिये इन्कार कर दिया कि यहाँ पर ऐसा नहीं था। पर आजकल जमाना संघ-शासन का है, जब कि विभिन्न भाषा-भाषी, विभिन्न धर्मावलम्बी, विभिन्न रीति-रिवाज और रहन-सहन वाले व्यक्ति भी संघ-सूत्र में बँध कर एक सुदृढ़ राज्य बन सकते हैं। यदि इस प्रकार के २२ राज्यों का संघ स्विटजरलैण्ड, २८ राज्यों का आस्ट्रिया-हंगरी, संयुक्त-राष्ट्र, अमेरिका तथा जर्मनी एक संघ-शासन में बँध अपनी राष्ट्रीयता अक्षुण्ण रख सकते हैं, तो भारत क्यों नहीं रख सकता? भारतीय राष्ट्र को संगठित करने के तीन ही रास्ते हैं—(१) एक बार सारे देश के भिन्न-भिन्न धर्मों, रीति-रिवाजों, भाषाओं को नष्ट कर एक भाषा, एक जाति, एक संस्कृति की रचना करना। (२) जातीय तथा भाषा सम्बन्धी आधार पर देश के भिन्न-भिन्न भागों का संगठन कर उन्हें एक संघ-सूत्र में पिरोना। (३) जैसी-की-तैसी स्थिति रख कर क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स के प्रबन्ध को, 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा' वाली स्थिति बदस्तूर रखना। यह अन्तिम स्थिति तो राष्ट्रीय एकता में बाधक ही हो रही है। प्रथम योजना कि सब भाषाओं आदि को नष्ट कर सारे भारत में एक-से नागरिक पैदा करना, संभव नहीं है, और उपयोगी भी नहीं है, तब दूसरी योजना को ही मानना पड़ेगा।

इस आक्षेप के बारे में कि आन्दोलन अव्यावहारिक है उत्तर मिला कि यदि बंग-भंग का विरोध व्यावहारिक आन्दोलन हो सकता है तो आन्ध्र की मांग क्यों व्यावहारिक नहीं हो सकती? यूरोप में पोलेंड का विच्छेद या आयरलैण्ड के इङ्गलैंड के साथ सम्मेलन को इङ्गलैंड की लिबरल पार्टी ने अनुचित समझा, पर बंग-विच्छेद के विरोध में जो भावना थी, उसको यह समझ न सकी, यद्यपि दोनों का आधारभूत सिद्धान्त एक था। इसी प्रकार भारतवासी तामिल जब बंग-भंग को जान कर तिलमिला उठे, उन्हें अपने पड़ौसी आन्ध्रों की वैसी ही माँग ग्राह्य नहीं हुई, पर आन्दोलन की व्यावहारिकता अथवा अव्यावहारिकता उसके कार्यकर्ताओं के कार्य-कलापों पर अवलम्बित होती है। आज यह प्रान्त-निर्माण का आन्दोलन सर्वथा व्यावहारिक सिद्ध हुआ है।

रियासतों के बारे में जो आन्ध्र पर आक्षेप हुआ था, वही बुन्देलखण्ड के बारे में होता है। आन्ध्रों ने कहा था कि हम तो स्वागत करेंगे जब

हमारे हैदराबाद निवासी आन्ध्रों को साथ मिलाने की योजना राज्य तथा केन्द्रीय सरकार को प्राप्त हो सकेगी। पर इसके मानी नहीं कि प्रान्त का प्रश्न ही न उठाया जाय। इस सम्बन्ध में बुन्देलखण्ड अधिक सौभाग्यशाली है। आज रियासतों की स्थिति उतनी स्थायी नहीं समझी जाती, जितनी तीस वर्ष पहले समझी जाती थी। दूसरे स्वयं बुन्देलखण्ड राज्यों की प्रजा इस प्रकार की मांग कर रही है। हैदराबाद तो पूरा प्रान्त है, पर यहाँ के राज्यों के लिए तो बिना प्रान्त-निर्माण के दूसरा चारा ही नहीं है।

प्रान्तीय आन्दोलनों से राष्ट्रीय आन्दोलनों को धक्का नहीं पहुँचता, वरन् बल ही मिलता है। अफ्रीका, कनाडा, आयर्लैण्ड तथा अमेरिका के इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि प्रान्तीय आन्दोलनों से राष्ट्रीय आन्दोलनों को बल मिलता है। बंगाल का आन्दोलन तो राष्ट्रीय समझा ही जाता है। लायड जार्ज वेल्स प्रान्त की संस्कृति तथा प्राचीनता के बड़े हिमायती हैं, पर इसके यह मानी नहीं कि इङ्गलैंड के राष्ट्रीय जीवन में उनका कोई हाथ नहीं रहा।

यदि आन्ध्र-आन्दोलन के बारे में जनता में मतभेद की शिकायत की गई तो उत्तर मिला कि अभी तक आन्दोलन की प्रारम्भिक अवस्था है। उसके उद्देश्यों की स्पष्ट परिभाषा या व्याख्या की स्थिति नहीं पहुँची है। इस कारण उसके भिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं। प्रान्त के राजनीतिज्ञों ने भी इस आन्दोलन पर गंभीरता-पूर्वक विचार नहीं किया है। और अपनी तत्कालीन नीति अथवा ऐसे ही किसी प्रकार के दृष्टिकोण के बारे में अपना कोई मत नहीं दिया है। ठीक यही स्थिति आज बुन्देलखण्ड के कार्य-कर्ताओं की है।

आन्ध्र-आन्दोलन तीस वर्षों में भी आन्दोलन ही है, तो यह आशा करना कि बुन्देलखण्ड को शीघ्र अपनी लक्ष्य-प्राप्ति हो जायगी, ठीक नहीं। पर उसका उदाहरण हमारे लिये उत्साह-वर्धक है। उसके बारे में भी कहा गया था कि यह आदर्शवादियों की कल्पना है। बुन्देलखण्ड प्रान्त के 'स्वप्न-दृष्टा आन्दोलन' कारियों की भी खबर ली है। राजनीतिज्ञता का तक़ाज़ा है कि हम कल की ही न सोच कर, परसों की भी सोचें। इस विषय में राष्ट्रीय महासभा के सभापति सर हेनरी काटन के शब्द पर्याप्त होंगे—

"भारतीय देशभक्त का उद्देश्य एक ऐसे संघ की स्थापना करना है, जिसमें स्वतन्त्र और अलग राज्य हों, भारत के संयुक्त राष्ट्र की स्थापना है, जो उपनिवेशों के साथ बराबर का दर्जा रखे।

"यह हमारा भारत के भविष्य का आदर्श है। पुनर्जीवन का तरीका सदा हमारे ध्यान में रहना चाहिए। परिवर्तन धीमे हो सकते हैं और होने चाहिए, पर चाहिए अवश्य और हमें उनकी प्राप्ति के लिए अपने को तैयार रखना चाहिए। राजनीति कुशलता आगे देखने में है और हम सब यह आगे सोचें तो उचित होगा।"

बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण का आन्दोलन दूरदर्शिता-पूर्ण है और उस पर दस-बीस बर्ष आगे की दृष्टि से सोचना चाहिये।

प्रान्त-निर्माण

(प्रान्त-वासियों के हित के लिये)

श्री गुरुदयालु श्रीवास्तव

किसी महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव के गुण दोषों पर विचार करना विद्वानों का काम है। अतः अपने ही गांव में बन्द हमारे जैसों के लिए एक ऐसी चीज़ में हाथ डालना, जिस पर अस्सी लाख जनता का भाग्य निर्भर करता है, निस्संदेह दुस्साहस मात्र है। फिर भी मैं बुन्देलखण्डी हूँ। बुन्देलखण्ड-प्रान्त के निर्माण में अन्ततः सर्वोपरि बुन्देलखण्डियों का हित ही सन्निहित है। इसलिए मुझे अपना 'वोट' देना ही चाहिये। बुन्देलखण्ड का एक नूतन प्रान्त बनना श्रेयस्कर है या नहीं—वास्तव में यह विवाद ही मेरी समझ में नहीं आता। जिनके आँखें हैं, वे साफ़ देख सकते हैं कि बुन्देलखण्ड प्रकृति का बनाया हुआ स्पष्टतः एक स्वतन्त्र प्रान्त है। भाषा, साहित्य, समाज, संस्कृति आदि के अनेक भेद रहते हुए भी यदि भारतवर्ष एशिया का एक ऐसा स्वतन्त्र देश है, जो एशिया के अन्य देशों से नहीं मिलाया जा सकता तो भारत के मध्य में और विन्ध्याचल की घाटियों में बुन्देलखण्ड भी एक ऐसा स्वतंत्र प्राकृतिक प्रान्त है, जिसे दूसरे प्रान्तों से नहीं मिलाया जा सकता, भले ही राजनैतिक सत्ता इसे माने या न माने। सच तो यह है कि ब्रिटिश सत्ता ने जानकर या अनजान में, स्वार्थवश या सुविधावश, बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग को यू० पी० में और दक्षिणी भाग को सी० पी० में तथा मध्य भाग को निरंकुश देशी नरेशों के हाथों में सौंपकर छिन्न-भिन्न न कर दिया होता तो आज इसकी अवस्था कुछ दूसरी ही होती। इसीलिए यदि भारतवर्ष के सहज विकास के लिए उसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्त होने की आवश्यकता है तो बुन्देलखंडियों के सहज विकास के लिये भी एक नूतन बुन्देलखंड प्रान्त की आवश्यकता है।

हमारा बुन्देलखंड अपने अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य के लिये तो चिर-प्रसिद्ध है ही और रहेगा, पर एक समय ऐसा भी था जब वह अपनी तपस्या और त्याग, शूरता और वीरता के लिये भी प्रसिद्ध था; और आज यदि एक शब्द में उसकी दशा का वर्णन किया जाय तो वह है दरिद्रता। और फिर दरिद्र में कौन से अवगुण नहीं देखे जाते—अविद्या, मूढ़ता और कायरता सभी तो यहाँ फैले हुए हैं। आज संसार ही लौट गया है। आज की सभ्यता का एकमात्र इष्ट और आराध्यदेव है रुपया। लक्ष्मी का विशेष कृपापात्र न होने के कारण यहाँ एक प्रकार का आत्म-अविश्वास उत्पन्न हो गया है, जिसे दूर करने के लिए बुन्देलखंड-प्रान्त-निर्माण सम्बन्धी प्रस्ताव अमोघ ओषधि सिद्ध हो सकता है।

स्यावरी]

हम बुन्देलखण्डी और हमारा प्रान्त बुन्देलखण्ड

श्री शिवसहाय चतुर्वेदी

जिस श्रद्धा-भक्ति के साथ एक बंगाली अपने प्रान्त को 'आमार बङ्ग' एक गुजराती गुजरात को "मारो गुजरात" तथा पंजाबी अपने प्रान्त को "पंजाब" कह कर पुकारता है, उसी तरह प्रत्येक बुन्देलखण्डी को भी यह कहने का जन्म सिद्ध अधिकार है कि हम बुन्देलखण्डी हैं और हमारा प्रांत बुन्देलखण्ड है। बुन्देलखण्ड को संगठित करना और ऐक्य-सूत्र में बाँधना

उसका मुख्य कर्तव्य है। इस विषय में अमुक पत्रिका क्या कहती है और फलाँ अखबार का क्या मत है, इसकी हमें परवा नहीं। अपने को बुन्देलखण्डी कहने में हमें आत्म गौरव की अनुभूति होती है और बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण का कार्य हमें पवित्र और अखण्ड भारत की उन्नति में सहायक प्रतीत होता है। यह भय कि बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण से भारत अनेक टुकड़ों में बँट जायगा और इससे पाकिस्तान को प्रोत्साहन मिलेगा, सर्वथा निराधार है। संगठित और समुन्नत प्रान्त मिलकर समूचे देश को शक्तिशाली ही बनाते हैं, न कि निर्बल। जिस प्रकार शरीर भिन्न-भिन्न अवयवों को स्वस्थ्य और बलिष्ठ रख कर ही सारे शरीर को निरोगी और शक्तिशाली बनाया जा सकता है, उसी प्रकार भारत के सभी प्रान्त अपनी-अपनी आन्तरिक उन्नति करके अखण्ड भारत की अधिक-से-अधिक सेवा कर सकते हैं। हम देश के नाते भारतीय हैं, परन्तु प्रान्त के नाते हमें बुन्देलखण्डी कहने से कोई रोक नहीं सकता। अतः बुन्देलखण्ड-प्रान्त-निर्माण करना हमारा परम कर्तव्य है और प्रत्येक बुन्देलखण्डी को अपनी शक्ति के अनुसार उसमें सहयोग देना चाहिए।

बुन्देलखण्ड इस समय संगठित नहीं है। अनेक भागों में विभक्त है; शिक्षा में पिछड़ा हुआ है; गरीबी भी उसकी बढ़ी-चढ़ी है। इतना होने पर भी वह अन्य बातों में दूसरे प्रान्तों की तुलना में अपना पर्याप्त महत्त्व रखता है। विस्तार भी इसका कम नहीं है। जमुना, चम्बल, नर्मदा और टौंस से परिवेष्टित इस भूभाग का क्षेत्रफल लगभग ७०-८० हज़ार वर्ग मील है। इसका प्राचीन इतिहास बहुत गौरव पूर्ण है। वह महान् वीरता, त्याग और बलिदानों से भरा पड़ा है। बुन्देलखण्डी प्राकृतिक शोभा अन्य प्रान्तों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है। काश्मीर को छोड़कर शायद ही कोई दूसरा प्रान्त उसके समकक्ष खड़े होने का दावा कर सके। एक ओर प्रकृति देवी ने जिस प्रकार अनेक सघन वनों; उत्तुंग गिरि-शिखरों; अनेक वनस्पति फल-फूल और उपयोगी वृक्षों; गाय, महिष, हरिण, चीतल, मयूर, बाराह, व्याघ्र आदि पशुओं; बड़े-बड़े सरोवरों एवं पुण्यसलिला सरिताओं द्वारा इस प्रान्त की शस्यश्यामला भूमि को सुसज्जित किया है तो दूसरी ओर यहाँ के गुणग्राही राजाओं तथा धनिकों ने अपार द्रव्य खर्च करके सुचतुर कारीगरों के द्वारा यत्र-तत्र प्रचुर प्रमाण में देव-मंदिर तथा पाषाण-मूर्तियाँ निर्माण करवा कर इस प्रान्त के सुन्दर भूभाग को और भी सुन्दर बना दिया है। पुरातत्त्व और कला की दृष्टि से देवगढ़ खजुराहो, अहार और ऐरन की मूर्तियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

बुन्देलखण्ड आज नया प्रान्त नहीं बनाया जा रहा है। उसका अस्तित्व बहुत प्राचीन ऐतिहासिक काल से है। हाँ, काल के प्रभाव से वह इस समय बिखर गया है, असंगठित है। उसे आज संगठित करके फिर एकता के सूत्र में बांधने की आवश्यकता है। बुन्देलखण्ड का इतिहास काफी पुराना है। इसका प्राचीन नाम 'जझौती' है, जो संस्कृत 'जेजाभुक्ति' का अपभ्रंश है। यह नाम चंदेले राजा जेजा या जयशक्ति के नाम पर रक्खा गया था। जयशक्ति सन् ८६० ई० के लगभग गद्दी पर बैठा था। जझौती का विस्तार चंदेलों ने बढ़ाया और वे ईसा की नवमी सदी से लेकर चौदहवीं सदी के प्रारम्भ तक उस पर जम कर राज्य करते रहे। दीवान प्रतिपालसिंह जी ने 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' में बुन्देलखण्ड की नीचे लिखी सीमाएँ बतलाई हैं—

उत्तर समथल भूमि गंग जमुना सुबहति हैं।
प्राची दिसि कैमूर सोन, काली सुलसति हैं।
दक्खिन रेवा विन्ध्याचल तल शीतल करनी।
पश्चिम में चंबल-चंचल सोहति मन हरनी।
तिनमधिं राजे गिरि, वन सरिता सहित मनोहर।
कीर्ति-स्थल बुन्देलन को बुन्देलखण्ड बर॥

तात्पर्य यह कि बुन्देलखण्ड एक प्राचीन विस्तृत जनपद है, जिसमें मधुकर शाह, वीरसिंह-देव और छत्रसाल सरीखे महाप्रतापी राजा हुए

हैं। जो लोग इस प्रान्त के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते हैं, उन्हें अवश्य ही बुद्धि-व्यायाम करना चाहिए।

बुन्देलखण्ड इस समय संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रदेश और छोटी-छोटी अनेक रियासतों में बिखरा पड़ा है। अब समय आ गया है कि इसके एकीकरण की आवाज बुलंद की जाय। जब तक यह प्रान्त एक पृथक् राजनैतिक प्रान्त के रूप में संगठित नहीं कर दिया जाता, तब तक उसकी पूर्ण एकता संभव नहीं। परन्तु प्रारम्भ में सांस्कृतिक और साहित्यिक तथ्यों पर ही इसके संगठन का काम अविलम्ब प्रारम्भ होना चाहिए। ज्यों-ज्यों हमारी एकता और शक्ति बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों हम अपने ध्येय के अधिक-से-अधिक समीप पहुँचते जाँयगे। और एक दिन ऐसा आएगा जब बुन्देलखण्ड भी अन्य प्रान्तों की तरह एक प्रान्त बन जायगा।

अब संघ शासन का समय आ गया है। वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए अब छोटे-छोटे राज्यों का टिकना कठिन प्रतीत होता है। इसलिए जिन छोटे-छोटे राज्यों या ज़िलों या भूखंडों में भाषा, सांस्कृतिक तथा हितों की एकता हो, उन्हें आपस में अवश्य मिल जाना चाहिए। इससे एक लाभ यह भी होगा कि जिन महत्वपूर्ण कार्यों को अर्थाभाव के कारण एक राज्य नहीं कर सकता, उसे अनेक छोटे राज्य मिल कर सहज में कर सकते हैं और सब उससे लाभ उठा सकते हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं कि अब संयुक्त शासन-प्रणाली का युग आ रहा है। सँसार के बड़े-बड़े प्रश्न इसी से हल होंगे। अन्त में हम बुन्देलखण्डी भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि वे प्रान्त-निर्माण के कार्य को हर जायज तरीके से अग्रसर करने में कटिबद्ध हो जाँय और दुनिया के सामने स्पष्ट और ज़ोरदार शब्दों में कहें कि हम बुन्देलखण्डी हैं, बुन्देलखण्ड को हम प्यार करते हैं और उसे हम एक सुसंगठित और स्वतंत्र प्रान्त बना कर ही छोड़ेंगे। देवरी (सागर)]

द्वापर युगी दृष्टिकोण

श्री पन्नालाल शर्मा 'कौशिक'

जो महानुभाव बुन्देलखण्डी को ब्रजभाषा का ही दूसरा रूप मानते हैं, वे वस्तुतः इस बीसवीं शताब्दी का गठबन्धन द्वापर युग से करना चाहते हैं। अगर ये लोग पृथ्वीराज के शासन काल में जीवित होते और तब यह बात कहते तो उनके कथन में शायद सत्य का कुछ अंश भी होता, पर इस बीच में शासन, रीति-रिवाज़ तथा भाषा और संस्कृति सम्बन्धी जो महत्त्वपूर्ण उलट-फेर हुए हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

भाषाएँ कोई स्थायी चीज़ थोड़े ही हैं, उनमें निरन्तर परिवर्तन और परिवर्द्धन होते रहते हैं। यदि दुर्भाग्य से बुन्देलखण्ड आज छोसियों भागों में विभाजित हो गया है तो इसके मानी यह थोड़े ही हैं कि बुन्देलखण्डी के अस्तित्व से ही इन्कार कर दिया जाय।

जो प्रान्त अपना अलग अस्तित्व, रखते हैं उनका कर्तव्य है कि वे इस अस्त-व्यस्त दुर्दशा ग्रस्त और विभाजित भूभाग का खण्डित स्थिति से उद्धार करें और उसे स्वास्थ्यप्रद एकता और सम्पूर्णता प्रदान करें। इसके बजाय उलटे कटाक्ष करना किसी को शोभा नहीं दे सकता।

बुन्देलखण्डी अखण्ड भारत के वैसे ही उपासक हैं, जैसे अन्य प्रान्तवासी, और अपनी एकता इसीलिए चाहते हैं कि मातृभूमि की सेवा और भी सुसंगठित ढङ्ग पर कर सकें। सहृदयता का यही तक़ाज़ा है कि इस प्राचीन किन्तु नवीन प्रान्त के निर्माण में भरपूर सहयोग

दिया जाय। इसी में बुन्देलखण्ड का, हम सब का और भारतवर्ष का कल्याण है।

वर्तमान युग में द्वापर युगी दृष्टि कोण सर्वथा असामयिक होगा।

टीकमगढ़]

न्याय की माँग

श्री सुधीन्द्रकुमार वर्मा एम० ए०, एल-एल० बी०

आज से वर्षों पहले की बात है। गरौठा तहसील में मुकद्दमे करने के लिए जाने का प्रस्ताव जब सामने आता, बुखार-सा चढ़ने लगता था। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सुन्दर सड़कें घिस-घिस कर ऐसी ऊबड़-खाबड़ हो गई थीं कि पेट का पित्ता हिल उठता था। देखते-देखते कई सड़कें प्राविंशियलाइज़ होकर पी० डब्लू० डी० को हस्तान्तरित होगईं और उनकी दशा बहुत-कुछ सुधर गई। बाद में उन पर जब-जब जाने का अवसर आया, बड़ा आनन्द अनुभव हुआ। इधर जब से लड़ाई शुरू हुई, सरकार ने झाँसी की मुख्य-मुख्य सड़कों पर पर्याप्त रुपया मिलिटरी-विभाग से खर्च करने की स्वीकृति इंपीरियल बजट से ली और शीघ्र ही सड़कों का रूपान्तर होरहा है। दचका लगना तो दूर, उन पर फिसलने का भय सामने आरहा है।

ग़रज़ बावली ने बुन्देलखण्ड के इस विस्मृत भू-भाग को चमन बना डालने के लिए सरकार को मजबूर कर दिया है और करोड़ों रुपये खर्च करके आज वह झाँसी के आसपास स्वर्ग का प्रतिरूप उपस्थित करने के लिए बावली हो उठी है। लड़ाई अगर न होती तो क्या बबीना की वनस्थली कभी बिजली से उद्भासित हो सकती थी! अपने हित की दृष्टि से सरकार ने इतना रुपया वहाँ मुक्त-हस्त होकर खर्च किया है, किन्तु जनता के हित के लिए कितना खर्च हुआ है, वह विचारणीय बात है।

ग्रामसुधार का प्रोग्राम कांग्रेस-सरकार ने बड़े ज़ोर-शोर से हमारे ज़िलों में प्रारम्भ किया था। बहुत-सा रुपया भी उसने इस कार्य के लिए दिया, किन्तु उतना बुन्देलखण्ड के ज़िलों के लिए कुछ भी न था। यहाँ की हज़ारों एकड़ अनुर्वर भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए लाखों बंधियों की ज़रूरत थी। निरक्षर ग्रामीणों में शिक्षा-प्रसार के लिए ग्रामसुधार के हमारे २३ केन्द्रों में से प्रत्येक केन्द्र के लिए कम-से-कम दो-दो पाठशालाओं की आवश्यकता थी। उद्योग-धन्धों को पुनर्जीवित करने के लिए पुष्कल साधन चाहिए थे। आदर्श गृह-निर्माण के लिए, पंचायत-घरों की स्थापना के लिए, ग्राम-पुस्तकालयों, ग्राम-व्यायाम-मंदिरों तथा मनोरंजन-मंडलियों, रामायण समाजों, चर्खा-सम्प्रदायों के लिए भी धन-राशि की ज़रूरत थी। किन्तु हमारे बार-बार लिखने पर भी हमें शिक्षा प्रसार के लिए ७००); बंधियों के लिए २०००); व्यायामशालाओं के लिए ६००); आदर्श गृह-निर्माण के लिए ८००); पुस्तकालयों के लिए २५००); भजनमण्डली के लिए १५०); पंचायत-घरों के लिए २५००) ही मिल सका। गोरखपुर और फैज़ाबाद, मेरठ और लखनऊ को जहाँ ६००००) मिला, बुन्देलखण्ड के ज़िलों को मिला ३५००) से लेकर ६०००) तक ही। कारण पूछने पर उत्तर मिला कि ये ज़िले अनुपजाऊ हैं। सरकार के हिसाब से इन ज़िलों की आय का अनुपात व्यय के अनुपात के अनुकूल नहीं है। इसका अर्थ था हमारे बुन्देलखण्डी ज़िलों के लिए सतत निराशा। कांग्रेस-सरकार के त्याग-पत्र दे देने पर तो इन ज़िलों की स्थिति और भी दयनीय हो उठी। मैंने जिन आठ-नौ गृह-उद्योग धन्धों का आयोजन झाँसी ग्रामसुधार-संघ की ओर से अपने ज़िले में किया था, वे शीघ्र

एक-एक करके बन्द कर दिये गये। यहाँ तक कि बरुआ सागर की महिला-शिल्पशाला भी, जो युक्त-प्रान्त भर में अपनी कोटि की एकमात्र संस्था थी, केवल इसलिये बन्द होगई कि वह झाँसी की बुन्देलखण्डी संस्था थी। सरकार उस पर होने वाले ३५०) प्रति वर्ष के व्यय को भी सहन न कर सकी। आज बुन्देलखण्डी ज़िलों के ग्रामसुधार-संघ, रक्तस्वल्पता, रक्तहीनता की बीमारी में पड़े हुए मौत की घड़ियाँ गिन रहे हैं।

हमारे ज़िलों के साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार क्यों होता है? केवल इसलिए कि बजट बनाने वाले लोग बुन्देलखण्डी नहीं हैं। उन्हें हमारी आवश्यकताओं का ज्ञान नहीं है। सरकार भी केवल उन्हीं ज़िलों में रुपया लगाने का ध्यान रखती है जहाँ उसे एक के सौ मिलने की आशा होती है।

बहादुराबाद का हाइड्रो इलेक्ट्रिक प्लाण्ट सहारनपुर, बिजनौर, मुरादाबाद, मेरठ, शाहजहाँपुर, बरेली और बदायूँ की उर्वरा भूमि से रुपया पैदा करने के लिए सरकार ने करोड़ों रुपया व्यय करके चालू कर दिया; किन्तु हमारे जिलों के अनन्त प्राकृतिक जलप्रपातों द्वारा होने वाली विद्युत्शक्ति के सम्वर्धन के लिये थोड़े से भी टके खर्च करने के लिए वह केवल इसलिये तैयार नहीं है कि इस प्रदेश की भूमि से उसे तुरन्त लाभ होने की आशा नहीं है, यद्यपि इस थोड़े से रुपये से हजारों एकड़ भूमि कृषि योग्य बनाई जा सकती है।

बेतवा के नोट घाट पर पुल बनाने की समस्या भी हमारे जिला बोर्ड के सामने बीस वर्ष से है। इस पुल के अभाव से समस्त बुन्देलखण्ड के यातायात में भारी असुविधा होती है। यदि यह बन जाता तो बुन्देलखण्ड के उत्तरी तथा दक्षिणी भूभागों का घनिष्ठ संपर्क तथा व्यापारिक आदन प्रदान होकर समृद्धि ही होती, किन्तु केवल चार लाख रुपया बीस वर्ष से मांगते रहने पर भी प्रान्त ने हमें नहीं दिया। दूसरे जिले के पुराने, किन्तु कारआमद पुल उखाड़कर नये बनाने में २० लाख से ज्यादा रुपया सरकार ने खर्च कर दिया।

कुछ दिन हुए मि० डुपोयट इञ्जिनीयर युक्त प्रान्त के सामने झाँसी तथा अन्य बुन्देलखण्डी ज़िलों में सिंचाई की उन्नति के लिए रुपया मंजूर करने के लिए प्रोजेक्टस रक्खे गये। इञ्जीनियर साहब ने तुरंत पूछा कि इस रुपये से रिटर्न (वसूली) कितना मिलेगा। जब उन्हें बताया गया कि उससे शीघ्र ही कुछ प्राप्त होने की आशा नहीं है तो उन्होंने तुरंत सब स्कीम उठाकर फेंक दी और आज तक हम सिंचाई की उस उपयोगी स्कीम से वंचित हैं, जब कि पिछले १० वर्ष में सरकार ने उत्तरीय ज़िलों में करोड़ों रुपया इसी मद में खर्च कर डाला।

हमारे खनिज पदार्थों के साथ भी यही सौतेला व्यवहार हुआ है। पठा की सोने की खानें, भोंडर का अनन्त भण्डार, बिजावर की लौहराशि अब भी हमारी रत्नगर्भा के पुरातन गर्भ में अछूती ही पड़ी है।

अपनी इस अनन्त ऋद्धि से यदि हमारा प्रान्त समृद्ध होना चाहता है तो उसे अपने भाग्य-निर्णय का न सही, कम-से-कम अपने लिये उचित सुविधाएँ जुटाने का जन्मसिद्ध अधिकार ही और वह हस्तान्तरित होकर हमारे ही प्रान्त को मिलना चाहिये। जब तक अपने आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक भविष्य की रूप रेखा निर्णय करने का अधिकार हमारे हाथों में नहीं दे दिया जाता तब तक हमारा प्रान्त झारखण्ड ही बना रहेगा। इसीलिये इसी आत्म-निर्भरता के लिये, मैं बुन्देलखण्ड के अलग प्रान्त बनाये जाने के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

भारत का भावी विधान आगामी २५ वर्ष के लिये शीघ्र ही बनेगा। उस समय तक हमें अपनी आवाज, अपनी मांग इतने ज़ोरदार शब्दों में उठा देनी चाहिये कि कोई भी शक्ति उसे दबा ही न सके और बिना किसी रुकावट के वह

कार्यान्वित हो जाय। देशी राज्य, जिनका भविष्य बुन्देलखण्डी ज़िलों के साथ ओतप्रोत है, इस मांग में हमारे साथ रहेंगे, क्योंकि तेज़ी से दौड़ने वाले समय के हल्ले में उनका कोई इकल्ला अस्तित्व नहीं रह सकता। उन्हें संस्कृति, भाषा तथा सार्वजनिक आवश्यकताओं की इकाई का अंग बनना ही पड़ेगा और यदि वे इस प्रवाह के विरुद्ध खड़े हुए तो तिनके के समान बह कर अस्तित्वहीन हो जावेंगे। अतएव यह प्रान्त-व्यापी आन्दोलन, जिसे श्रीमान् ओरछेश की प्रेरणा से प्रारम्भ किया गया है बड़े ज़ोर शोर से प्रान्त के एक छोर से दूसरे छोर तक चलना चाहिए और प्रत्येक बुन्देलखण्डी को उसका मन, वचन, कर्म से समर्थन करना चाहिये।

झाँसी]

बुन्देलखण्ड प्रान्त-निर्माण की योजना

एक नवयुवक

किसी भी बड़े देश के शासन करने में यह आवश्यक है कि शासन सुविधा के लिए उसको कई एक प्रान्तों में बाँटा जाय। भारतवर्ष भी अन्य देशों की भाँति इस समय ग्यारह प्रान्तों में बँटा है। वर्तमान प्रान्तों की सीमा अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में किस प्रकार नियत की गई यह प्रत्येक इतिहास जानने वाले को मालूम है। यह निःसन्देह है कि उस समय प्रजा-मत या बहु-मत का नाम भी न था। शासकों के हाथ में ज्यों-ज्यों नये-नये राज्य आते गये त्यों-त्यों अपनी सुविधा और समझ के अनुसार वे सीमाएँ कायम करते गये। भारतवर्ष में ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार हुआ और लोगों में राजनैतिक स्फूर्ति पैदा हुई त्यों-त्यों यह अनुभव होने लगा कि वर्तमान प्रान्तों की सीमा उन प्रान्तों के रहने वालों की सुविधा के दृष्टिकोण से नहीं बनी हैं। यही नहीं, अब यह मालूम हो गया है कि प्रान्तीय सीमाएँ भारतवर्ष के विभिन्न संस्कृति के लोगों के लिये असुविधा-जनक ही नहीं वरन् हानिकारक हैं। विचार करने से ज्ञात होगा कि प्रान्त की सीमा का बड़ा भारी प्रभाव उस प्रान्त के निवासियों की संस्कृति, सभ्यता तथा नैतिक और सामाजिक संगठन पर पड़ता है। यदि एक ही भाषा-भाषी, एक ही रहन-सहन, एक ही समाज के लोग दो या दो से अधिक प्रान्तों के शासन-सूत्र में बाँध दिये जाते हैं तो उनकी एकता का ह्रास होता है। उनको अपने समुदाय का बल नहीं रहता। छिन्न-भिन्न होने से लोक-मत संग्रहीत करने में कमजोरी आ जाती है। यही कारण है कि सन् १९०५ में जिस समय भारत के वायसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल को विभक्त करना चाहा था तो बंगालियों ने घोर विरोध किया था और फलतः उक्त विभाजन की योजना त्यागनी पड़ी। यद्यपि उस समय शासन-विधान में लोक-मत को स्थान नहीं मिला था, परन्तु फिर भी दूरदर्शी और शिक्षित बंग-वासियों ने इस हानिकारक प्रथा को आगे नहीं चलने दिया। अब प्रजातन्त्र-वाद और लोक-मत के वर्तमान युग में यह बात और भी स्पष्ट हो गई है कि प्रान्तीय सीमाओं द्वारा समाज के भिन्न-भिन्न अंगों की एकता को सुरक्षित रखना कितना आवश्यक है। यही कारण है कि कांग्रेस के विधान में प्रान्तीय प्रतिनिधियों का चुनाव अँगरेजी सूबों के आधार पर नहीं होता वरन् उन्होंने महाकोशल, आन्ध्र और सौराष्ट्र अलग-अलग भाग निर्माण कर उक्त भागों के निवासियों को पृथक्-पृथक् प्रतिनिधित्व दिया है।

बुन्देलखण्ड की ओर दृष्टि करने से हम देखते हैं कि भारत के इस खण्ड की एकता कितनी नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। आज जिस गर्व से एक बंगाली अथवा पंजाबी अपने प्रान्त पर मिट

सकता है, आज जिस एकता के बल से वह अपनी भाषा, साहित्य, संगीत और कला की उन्नति कर सकता है, आज जिस प्रकार बंगाल और पंजाब अपने राजनैतिक अधिकारों के लिये आन्दोलन कर सकते हैं, वैसा एक बुन्देलखण्डी के लिये असम्भव है। कारण स्पष्ट है। आज बुन्देलखण्ड का कुछ भाग यू० पी० में, कुछ भाग सी० पी० में और कुछ अन्य देशी रियासतों में बँटा है। बुन्देलखण्ड अब केवल नाम ही नाम है। एक समय था जब बुन्देलखण्ड-प्रान्त एक शासन-सूत्र में बंध कर जमुना से नरबदा तक और चम्बल से टोंस तक फैला हुआ था। आज भी देखा जाय तो कितने ही बुन्देलखण्डी इधर-उधर दूर तक फैले हुए हैं। परन्तु भिन्न-भिन्न शासन-सूत्र में बंधने के कारण उनको अपनी एकता का भास नहीं होता। बुन्देलखण्ड अपनी प्राकृतिक बनावट में, भाषा और साहित्य में, रहन-सहन में, और अपने इतिहास में एक ठोस और पृथक खण्ड है। फिर कोई कारण नहीं। कि बुन्देलखण्ड को अपने सांस्कृतिक विकास में तथा राजनैतिक उन्नति में वह अस्तित्व स्वाधीनता प्राप्त न हो जो अन्य प्रान्तों को है, अथवा जिनके लिए आज भारत-वर्ष में नाना प्रकार के आन्दोलन किये जा रहे हैं।

यह निश्चय है कि आगामी भविष्य में बड़ी राजनैतिक उथल-पुथलहोगी। वर्त्तमान विश्व-व्यापी युद्ध के बाद तो भारतवर्ष के नवीन विधान निर्माण की ओर सभी अग्रसर होंगे। सम्भव है यह प्रगति युद्ध के अन्त के लिये न रुकी रहे और परिवर्तन शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाय। यह परिवर्तन किस दिशा में होगा, इसके कुछ लक्षण हमारे सामने हैं। जो-जो वैधानिक योजनाएँ अब तक इस संबंध में देश के सामने आईं, उनसे कुछ बातें बिलकुल स्पष्ट हैं। प्रथम तो यह कि किसी-न-किसी रूप में भारतवर्ष का भावी-विधान संयुक्त-संघ-प्रणाली (Federal Constitution) के आधार पर बनाया जायगा। द्वितीय यह कि प्रान्तिक स्वाधीनता का सिद्धान्त और भी व्यापक रूप से प्रयोग में लाया जायगा। तृतीय छोटे-छोटे देशी राज्यों की शासन-प्रणाली में मूल परिवर्तन अनिवार्य हो जायगा। चतुर्थ प्रजा के मताधिकार को विशेष बाहुल्य मिलेगा और शासन-प्रणाली की नींव प्रजातंत्र-वाद के आश्रित रहेगी।

यह नहीं कहा जा सकता कि सब लक्षण युद्ध की ही उपज हैं। वास्तव में इनका जन्म बहुत दिनों पहिले हो चुका है और शनैः-शनैः इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार कार्यवाही भी होती रही है। प्रान्तीयता-वाद के ही आधार पर हम देखते हैं कि सन् १९३५ में बर्मा भारत से विलग किया गया, सिन्ध और उड़ीसा के नये प्रान्त बने और आँध्र प्रान्त बनाने के लिये आन्दोलन किया जा रहा है। प्रत्येक प्रान्त के अपने-अपने पृथक्-पृथक् व्यवस्थापक परिषद, पृथक् विश्व-विद्यालय और पृथक्-पृथक् सार्वजनिक संस्थाएँ हैं, जिनमें दिनों-दिन लोक-मत का विस्तार बढ़ता जाता है। यह निश्चय है कि विश्व-व्यापी युद्ध के समय में राजनैतिक विचारों को प्रोत्साह मिलने के कारण आगामी परिवर्तन बड़े तेजी के साथ होंगे। ऐसे प्रगतिशील युग में क्या बुन्देलखण्ड-वासियों का कर्तव्य नहीं है कि अपने भविष्य की चिन्ता करें? क्या वे यह चाहेंगे कि उनका प्रान्त छिन्न-भिन्न होकर अन्य प्रान्तों के सीमान्तर हो जाय? जब भारवर्ष का मान-चित्र बदल रहा है तो क्या बुन्देलखण्ड को समुचित स्थान नहीं मिलना चाहिये? हमारा विश्वास है कि कोई भी सच्चा बुन्देलखण्ड निवासी इस अवसर को हाथ से न जाने देगा। बुन्देलखण्ड के एकीकरण और राजनैतिक संगठन में बुन्देलखण्डियों की उन्नति, अवनति और भावी अस्तित्व का प्रश्न छिपा है। यदि आज बुन्देलखण्ड की प्रजा अपनी आँख नहीं खोलती है तो एक समय आ सकता है कि बुन्देलखण्ड का नाम भी केवल प्राचीन इतिहास के पृष्ठों पर ही रह जाय।

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बुन्देलखण्ड प्रान्तवादी भारतवर्ष की एकता के

कट्टर पक्षपाती हैं। भारत हमारा देश है और हमें भारतीय होने का गर्व है। अतः बुन्देलखण्ड-प्रान्त का निर्माण करने की योजना का सापेक्ष उन योजनाओं से नहीं किया जा सकता, जो भारतवर्ष को दो या दो से ज्यादा प्रदेशों में, हिन्दू-मुसलमानों की जनसंख्या के आधार पर बाँटना चाहते हैं। भारतवर्ष में अनेकानेक धर्म और उनकी शाखायें हैं। जातियों और उप-जातियों की तो कोई गिनती ही नहीं है। परन्तु जाति और धर्म के सिद्धान्त पर प्रान्तों का निर्माण करना देश तथा स्वयं उन जातियों के लिए अत्यन्त अहितकर है। साथ ही बुन्देलखण्ड प्रान्त के संयोजक यह नहीं चाहते कि बुन्देलखण्ड प्रान्त एक स्वाधीन देश बने, जिसे बाहर के राष्ट्रों से स्वतंत्र सम्पर्क स्थापित करने का अधिकार हो। भारत को टुकड़े-टुकड़े करके स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने वाली योजनाओं द्वारा भारत की एकता समूल नष्ट हो जायगी। इसमें कोई सन्देह नहीं और फलतः यह देश न तो स्वतंत्रता ही प्राप्त कर सकेगा और न स्वतन्त्रता मिलने पर उसे कायम रख सकेगा। हम केवल यही चाहते हैं कि एक ओर तो बुन्देलखण्ड को भारतवर्ष के केन्द्रीय विधान में अन्य प्रान्तों की भाँति समुचित स्थान प्राप्त हो, जिसके द्वारा बुन्देलखण्ड भी अखिल भारतीय राजनैतिक, व्यापारिक तथा अन्य सर्व-देशीय गति-विधियों में भाग ले सके, और दूसरी ओर बुन्देलखण्ड-निवासियों को अपनी सांस्कृतिक, साहित्यक तथा नैतिक धारणाओं को पूर्णतया विकसित करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो। भारतवर्ष की एकता, और संसार के अन्य राष्ट्रों के समक्ष उसकी शक्ति, तभी स्थापित हो सकती है जब इस महान देश के अंग सुदृढ़ होकर एक केन्द्रीय सूत्र में बँधे हों। और यह अंग उसी हालत में सुदृढ़ और शक्तिदायी हो सकते हैं जब उनका निर्माण उनके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, और भाषा परम्परा के आधार पर किया जावे। इस मूल सिद्धान्त की उपेक्षा करने का फल आज यूरुप के निवासियों के सामने है। सन् १९१४-१८ के युद्ध के बाद जिस प्रकार यूरुप के राज्यों का मिश्रण या विभाजन किया गया, उसमें भले ही उस समय सुविधा समझी गई हो, मगर २०,२५ वर्ष में ही वे निर्बल होकर बारी-बारी से अपनी स्वतन्त्रता खो बैठे और अब यूरुप के राजनीतिज्ञ अपनी भूल पर पश्चाताप कर यूरुप का नवीन संगठन करने की कल्पनायें कर रहे हैं। जिस प्रकार किसी बड़े देश को एक केन्द्रीय शासन के अधीन करना असफल अथवा अस्थायी सिद्ध हुआ है उसी प्रकार छोटी-छोटी जातियों और धर्म-समूहों को स्वतन्त्र राज्यों का रूप देना भी अनिष्टकारी साबित हुआ है। इसलिए बुन्देलखण्ड प्रान्त के संयोजक जितना ज़ोर भारत की एकता पर देते हैं उतना ही ज़ोर प्रान्तों के समुचित निर्माण पर देना चाहते हैं।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि किन सूरतों में देश के किसी अंग को प्रान्त का रूप दिया जा सकता है। संक्षेप में हम इसका उत्तर यों देंगे—

१—एक प्रान्त के निवासियों की भाषा जहाँ तक हो एक होनी चाहिए। यों तो हर १०० मील के बाद बोली में थोड़ा अन्तर पड़ जाता है, परन्तु फिर भी हम एक भाषा-भाषी लोगों को आसानी से दूसरे भाषा-भाषियों से अलग कर सकते हैं।

२—एक प्रान्त के निवासियों में ऐतिहासिक घनिष्टता होनी चाहिए। अर्थात् पूर्वकाल से वे एक समुदाय के अंग समझे गये हों और ऐतिहासिक घटनाओं और उत्थान पतन का सामना करने में उन्होंने एक साथ होकर लगभग एक सी नीति का अवलम्बन किया हो, अथवा एक शासन-सूत्र में बहुत दिनों से बंधे रहे हों।

३—जिसके निवासियों के नैतिक विचार, सामाजिक व्यवहार और रहन-सहन एक दूसरे से बहुत कुछ सामञ्जस्य रखते हों।

४—एक प्रान्त की जन-संख्या, विस्तार और आय इतनी होनी चाहिये कि जिससे वर्तमान युग की आवश्यकता के अनुसार शासन

के खर्च को चला सके। अर्थात् प्रान्त को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो अथवा थोड़े समय के बाद प्राप्त हो सके।

ऊपर लिखी सब सूरतें एक साथ उपस्थित होनी चाहिये।

बुन्देलखण्ड की ओर दृष्टि करने से यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कल्पित बुन्देलखण्ड प्रान्त की सीमा क्या होगी और क्या यह नया प्रान्त ऊपर लिखी शर्तों को पूरा करेगा।

हमने जिस बुन्देलखण्ड की कल्पना की है, उसकी सीमा के अन्तर्गत यू० पी० और सी० पी० के कुछ जिले या उनके भाग, तथा बुन्देलखंड के देशी राज्य भी शामिल हैं। देशी राज्यों के विषय में हम आगे लिखेंगे। यहाँ पर इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि किसी भी व्यक्ति को, जिसने बुन्देलखण्ड का इतिहास पढ़ा हो अथवा नियोजित सीमा के भिन्न-भिन्न भागों में भ्रमण किया हो, यह मान लेने में अधिक कठिनाई न होगी कि यह समस्त भू-भाग एक ही नाम से अर्थात् बुन्देलखण्ड के नाम से, और इसके निवासी एक मात्र बुन्देलखण्डी नाम से पुकारे जा सकते हैं। इस भाग की भूमि, उपज, प्राकृतिक बनावट, संस्कृति, साहित्य और भाषा इतनी समान है कि शायद ही भारतवर्ष के किसी वर्तमान प्रान्त को इतनी समता प्राप्त हो। जिन वीरों की गाथाएं एक कोने में गाई जाती हैं उन्हीं को दूसरे कोने में। जो ग्राम-गीत जिस स्वर में एक जगह की जनता के हृदयोल्लास के साधन हैं, वही ध्वनि दूसरी जगह भी है। जिन कवियों को अपना कहकर उनकी कृतियों के कारण एक स्थान में मान लिया जाता है, वैसे ही इस भू-भाग के अन्तर्गत किसी दूसरे स्थान पर भी पाया जायगा। हमारे त्यौहार एक हैं, हमारे मेले एक हैं, और हमारे देवी-देवताओं में अपूर्व सामञ्जस्य है। फिर किसे इस भू-भाग को एक प्रान्त कहने में आपत्ति हो सकती है!

इस सम्बन्ध में हम पाठकों के लाभार्थ अंक देकर बुन्देलखण्ड प्रान्त के क्षेत्रफल और जनसंख्या की कुछ ब्रिटिश प्रान्तों से तुलना करेंगे, जिससे हमारे विस्तार का अनुमान हो सके।

निम्न अङ्क १९३१ की गणना के अनुसार हैं

क्रमाङ्क	प्रान्त	क्षेत्रफल वर्गमील	जनसंख्या
१.	सिन्ध	४६,३७८	३८८७०००
२.	उड़ीसा	११,७०६	५३०६०००
३.	उत्तरी पश्चिमी सीमान्त	१३,५०८	२४२५०००
४.	बुन्देलखण्ड	४२,०१६	७७५४०७०

उपरोक्त अंकों से स्पष्ट है कि बुन्देलखण्ड प्रान्त ब्रिटिश सीमा-स्थित छोटे प्रान्तों में सब से बड़ा होगा। अब तक झाँसी डिवीजन यू० पी० का पिछड़ा हुआ डिवीज़न कहलाता है और सम्भवतः इसीलिए उस ओर ध्यान भी अधिक न दिया जाता होगा। परन्तु वास्तव में झाँसी डिवीजन की उन्नति की ओर समुचित साधन ही नहीं जुटाये गये। बुन्देलखण्ड की नदियों और झीलों से लाभ उठाने की ओर कितना कम ध्यान दिया गया है बुन्देलखण्ड खनिज पदार्थों के लिए विशेषता रखता है, परन्तु खनिज विभाग की ओर से इस ओर क्या चेष्टा की गई? इस प्रान्त की भूमि, फल और तम्बाकू की खेती के लिए विशेषज्ञों द्वारा बहुत अच्छी समझी गई है। जंगल भी बहुत हैं, परन्तु जैसी कुछ उन्नति अब तक हुई है उससे पता चलता है कि अभी कितनी गुञ्जाइश बाकी है। कहने का तात्पर्य यह है कि झाँसी डिवीजन या बुन्देलखण्ड का अन्य भाग प्रकृति की ओर से पिछड़ा नहीं है वरन् अभी तक प्रकृति की देन का लाभ उठाने में हम

असमर्थ रहे हैं। आर्थिक शक्ति सम्पादन करने में यह प्रान्त अन्य प्रान्तों से अपेक्षाकृत पीछे नहीं रह सकता।

ऊपर बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों का उल्लेख हुआ था। यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या देशी राज्य बुन्देलखण्ड प्रान्त के अंग बनने को तैयार होंगे? क्या उनका ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध हमारे प्रान्त-निर्माण में बाधक न होगा? और क्या उनकी वर्तमान शासन-प्रणाली हमारी प्रान्त-योजना के अनुकूल होगी?

इन गम्भीर प्रश्नों का सविवरण उत्तर इस स्थान पर नहीं दिया जा सकता, परन्तु संक्षेप में यह बताया जा सकता है कि बुन्देलखण्ड के नरेश समय के पीछे नहीं हैं। उन्होंने भी दूर-दर्शिता से काम लिया है और संयुक्त शासन की नींव डालना प्रारम्भ कर दिया है। इस समय बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों का एक बड़ा संगठन बना हुआ है, जिसके अनुसार भिन्न-भिन्न राज्यों के राजकीय विभागों का प्रबन्ध बहुमत से नियुक्त एक ही अधिकारी के हाथ में सौंपा जा रहा है। इस संगठन के द्वारा आशा की जाती है कि शनैः-शनैः सभी विभाग एक शासन-सूत्र में बँध जायँगे। साथ ही बहुत-से उन्नति-शील राज्यों ने अपने यहाँ प्रजा द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापक-सभाएँ चालू कर दी हैं और प्रजा को शासन के थोड़े-थोड़े अधिकार दे दिये हैं। देशी राज्य अच्छी तरह समझते हैं कि आगामी वैधानिक परिवर्तन के समय वे छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट कर नहीं रह सकेंगे। उन्हें या तो अपना एक वृहत् संगठन संयुक्त-शासन के आधार पर बनाना होगा अथवा किसी प्रान्त से संयुक्त होना पड़ेगा। बुन्देलखण्ड के देशी नरेशों को इस ओर एक बड़ी सुविधा प्राप्त है। इनके राज्यों की सीमा एक दूसरे से सटी हुई है और बहुत से नरेश एक ही वंश के सदस्य हैं। अतः भौगोलिक तथा पारिवारिक घनिष्टता के कारण उनका एकीकरण करना उतना कठिन नहीं है जितना दूर-दूर फैली हुई भिन्न-भिन्न वंश और जाति के नरेशों का। यह बात अब गुप्त नहीं है कि ब्रिटिश सरकार देशी नरेशों के उपरोक्त संगठन को न केवल अच्छी निगाह से देखती है वरन् उसको स्थापित करने में प्रोत्साहन देने को तैयार है। हमारी समझ में अगर बुन्देलखण्ड निवासी इस प्रान्त निर्माण की माँग को देशी नरेशों के सामने रक्खें तो कुछ परिश्रम और आन्दोलन के बाद उन्हें अवश्य स्वागत प्राप्त होगा; क्योंकि बुन्देलखण्ड के नरेश इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं कि बुन्देलखण्ड प्रान्त के अन्तर्गत रह कर उन्हें जो महत्त्व प्राप्त हो सकता है वह किसी बड़े ब्रिटिश प्रान्त के अंग बनने में कदापि न होगा। वे न केवल बुन्देलखंड के ऐकीकरण के श्रेय के भागी होंगे वरन् प्रजा के आदरणीय नेता बन कर अपनी वंश-परम्परा को सुरक्षित कर सकेंगे।

यह बात आगे चल कर तय हो सकती है कि प्रान्त के शासन में देशी नरेशों का प्रतिनिधित्व किस रूप में और किस मात्रा में होना चाहिए। तथा उनके वंश-परम्परागत अधिकारों का संरक्षण किस प्रकार किया जायगा। एक बार संकल्प हो जाने पर इस प्रकार के प्रश्न आसानी से हल किये जा सकते हैं।

बुन्देलखण्डियों को क्या करना चाहिये?

उपरोक्त पंक्तियों में बताया गया है कि किस प्रकार बुन्देलखण्ड अपनी भाषा, भूगोल, इतिहास और संस्कृति के आधार पर एक पृथक् और ठोस खण्ड है और राजनैतिक दृष्टि कोण से उसे एक प्रान्त बनाने की माँग कहाँ तक उचित है। इस प्रान्त-निर्माण में देशी राज्यों का सहयोग कहाँ तक मिल सकता है, इसका भी अनुमान ऊपर किया गया है।

अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि हमें इस महत् कार्य को सम्पादन करने के लिए क्या करना चाहिए? सब से पहले शिक्षित समाज में आन्दोलन करना आवश्यक है। इसलिये सर्व प्रथम बुन्देलखण्ड के प्रमुख नेताओं, राजनीतिज्ञों और समाज-सेवियों के

सम्मुख प्रान्त-योजना को रखना चाहिए। यह काम एक विशेष अधिवेशन अथवा भिन्न-भिन्न स्थानों पर छोटे छोटे अधिवेशनों द्वारा किया जा सकता है। साथ ही पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भी हम अपने विचार उन तक पहुँचा सकते हैं। पहले इस आन्दोलन को सुचारु रूप से चलाने के लिये हमें एक 'बुन्देलखण्ड-प्रान्त कमेटी' बनानी होगी, जो संयोजक का कार्य करेगी। ज्योंही आन्दोलन का रूप बढ़े त्योंही हमें इस कमेटी की शाखाएं भिन्न-भिन्न स्थानों पर खोलनी होंगी। यह कमेटियां आन्दोलन के उन सब साधनों को काम में लायेंगी, जिनसे बुन्देलखण्ड के एकीकरण की भावना जाग्रत हो। उदाहरण के लिए, कुछ साधनों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

१—स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों का संशोधन करना, ताकि उनमें बुन्देलखंड के वीरों, कवियों, नेताओं, सुधारकों और महान आत्माओं के जीवन का समावेश हो सके।

२—बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास तैयार करना, जिससे स्कूलों में ऐतिहासिक महत्ता का प्रचार हो सके।

३—ऐतिहासिक महापुरुषों की जयन्तीं अथवा जन्म-दिवस के अवसर पर समारोह करना।

४—बुन्देलखण्ड प्रदर्शिनी की आयोजना करना, जिसमें मुख्यतः इस प्रान्त की बनी हुई वस्तुओं को प्रमुखता दी जाय।

५—बुन्देलखण्ड-साहित्य-परिषद की शाखाएं खोलना तथा हिन्दी की भिन्न-भिन्न परीक्षाओं का प्रबन्ध करना।

६—सार्वजनिक संस्थाओं का संगठन लोक-मत के आधार पर करने के लिए आन्दोलन करना।

७—सामयिक अधिवेशनों द्वारा प्रान्त के प्रमुख निवासियों से सम्पर्क प्राप्त कर उन्हें अपनी योजना में सहायक बनाना।

८—बुन्देलखण्डी शब्द-कोष बनाना, ग्रामगीत संग्रह करना, तथा अन्य प्रकार से साहित्यिक पुनरुत्थान करना।

९—देशी राज्यों के नरेशों से सम्पर्क स्थापित करना।

१०—बुन्देलखण्ड-नवयुवक-दल या सेवा-संघ तैयार करना।

उपरोक्त साधन केवल उदाहरण स्वरूप हैं। अनेकानेक साधन कार्य प्रारम्भ करने पर स्वयं सामने आने लगेंगे।

जनता में आन्दोलन करने के साथ-साथ हमें एक सविवरण वैधानिक-योजना भी तैयार करनी होगी, जिसके आधार पर भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों से, ब्रिटिश सरकार से तथा देशी नरेशों से बातचीत प्रारम्भ कर सकें। परन्तु यह उसी समय हो सकेगा जब हम पर्याप्त रूप से अपने आन्दोलन द्वारा बुन्देलखण्ड प्रान्त बनाने की मनोवृति पैदा कर दें। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे सामने एक गुरुतर कार्य है, परन्तु सच्ची भावना, परिश्रम और अविरल आन्दोलन से क्या-क्या नहीं हो सकता? हमें अब समय नहीं खोना चाहिए और न युद्ध के अन्त तक चुप ही रहना चाहिए। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, युद्ध का समय हमारे लिए एक मौका है, जिसमें हम अपनी नींव दृढ़ कर लें। युद्ध के बाद जिस समय वैधानिक समस्याएँ पेश हों, बुन्देलखण्ड को पीछे नहीं हटना चाहिये।

इस लेख द्वारा हम प्रत्येक बुन्देलखण्डी, प्रत्येक देश-प्रेमी, सुधारक, और नेता व प्रत्येक बुन्देलखण्ड के देशी नरेश को आमंत्रित करते हैं कि वे इस महान कार्य में हमारा हाथ बँटावें और अपने सद्विचारों और मंत्रणा से हमारा पथ-प्रदर्शन करें।